पुस्तक का नाम — श्री सूर्य साहित्य भाग प्रथम

गर्भित ग्रन्थ — श्री सूर्य दृष्टांत शतक
एवं
श्री सूर्य उपदेश शतक

आशिर्वाद प्रदाता — मालव केसरी प्रसिद्ध वक्ता
श्री सौभाग्यमलजी म. सा.

ग्रन्थकार — कविवर्य प्रवर्तक प रत्न
श्री सूर्यमुनिजी महाराज

प्रेरक — पं. श्री रूपेन्द्रमुनिजी महाराज

सम्पादक — उमेशमुनि 'अणु'

आवृत्ति — प्रथम प्रवेश, प्रति १००१

वीर स २५०२, स. २०३३ (सन् १९७६)

(अर्थ मूल्य)
२ रुपये ५० पैसे ☎ ९३६

मुद्रक —सगनलाल हीरालालजी रूनवाल
(झाबुआ वाले)
रूनवाल प्रिंटिंग प्रेस
चौमुखीपुल, रतलाम

प्राप्ति स्थानः—

(१) श्रीमान् समरथमलजी जीतमलजी नाहर
बदनावर जिला धार (म प्र.)

(२) श्री धर्मदास जैन मित्र मण्डल
नौलाईपुरा, **रतलाम** (म प्र.)

प्रकाशकीय

मानव के जीवन विकास मे कथानुयोग का एक विशेप महत्वपूर्ण स्थान है उसके द्वारा धार्मिक सामाजिक राष्ट्रीय उच्च सस्कार प्राणी मे अकुरित होते है। अनेक उदाहरण ऐसे मिलते है जिनमे अनेक सत-ऋषि-मुनियो ने कथा-चरित्र के माध्यम से मानव मे योग्य संस्कार भरकर उसे जगत के नभ मे ज्वाजल्यमान नक्षत्र की तरह चमकाया। ऐसे ही एक प्रेरक ग्रन्थ को प्रस्तुत किया जा रहा है ।

हमारे असीम पूण्योदय से पूज्यपाद गुरुदेव कविवर्य प्रवर्तक प. र. श्री सूर्यमुनिजी म की सेवा का हमे अपूर्व लाभ मिला है। आप श्री अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण बदनावर मे विराजमान है। आपश्री ने पद्यो में विपुल साहित्य का निर्माण किया है। जिसमे कुछ साहित्य का प्रकाशन हुआ है और कुछ अप्रकाशित है। पिछले चातुर्मास (स. २०३२) मे हमारे मन मे ऐसा विचार हुआ कि स २०३३ की वैशाखी पूर्णिमा को गुरुदेव ७६ वें वर्ष मे और ज्येष्ठ शु ५ को चारित्र-पर्याय के ६६ वे वर्ष मे प्रवेश कर रहे हैं। इस स्वर्ण अवसर पर गुरुदेव का कुछ साहित्य प्रकाशित हो तो सुन्दर कार्य होगा। इसी हेतु हमारी विनम्र प्रार्थना से गुरुदेव के शिष्य आत्मार्थी सन्त रत्न श्री उमेश मुनिजी म सा "अणु" ने गुरुदेव के अप्रकाशित साहित्य मे से "श्री सूर्य दृष्टान्त शतक" के सम्पादन का कार्य हाथ मे लिया और मुनिजी ने योग्य समय मे "श्री सूर्य दृष्टान्त शतक" और 'उपदेश शतक' का सम्पादन कार्य पूरा करके "सूर्य साहित्य भाग प्रथम" के रूप मे प्रस्तुत किया। अत हम आपका अन्त करण पूर्वक आभार मानते हैं। किन्तु खेद है कि किन्ही कारणो से ग्रथ का उचित समय मे प्रकाशन न हो सका। खैर देर से ही सही, इस ग्रथ रत्न को पाठको के हस्तकमल मे समर्पित करते हुए प्रसन्नता हो रही है।

हम गुरुदेव के आभारी तो है ही। और द्रव्यदाता महानुभावो के भी आभारी है। रूनवाल प्रिटिग प्रेस के स्वामी को भी धन्यवाद देते है कि जिनके सहयोग से इस ग्रथ का सुन्दर रूप से प्रकाशन हो सका।

विनीत

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ,
बदनावर, जिला धार (म प्र)

पुस्तक प्रकाशन में द्रव्य सहायक

१०००) पूज्य नन्द जैन साहित्य समिति — रतलाम

१०००) श्रीमान् सेठ हस्तीमलजी समरथमलजी नाहर की मातेश्वरी श्री मैनाबाई नाहर — बदनावर

१०००)
- ५००) श्रीमती धनीबाई मुणत द्वारा स्व. सेठ श्री जुहारमलजी की स्मृति मे
- ५००) श्रीमान् सेठ शेतानमलजी सुजानमलजी श्रीमान् शांतिलालजा झमकलालजी मुणत

बदनावर

५०१) स्व. सेठश्री गुलाबचन्दजी पीतलिया की धर्मपत्नी श्रीमती नदीबाई ह सेठ श्री बाबूलालजी सुजानमलजी पीतलिया — सैलाना

५०१) एक श्राविका बहिन द्वारा गुप्तदान — झाबुआ

२५१) श्रीमान् सेठ गुलाबचन्दजी भडारो की धर्मपत्नी श्रीमती सुगनदेवी भडारी — इन्दौर

२५१) श्रीमान् चन्द्रकान्तजी लखमीचन्दजी पारख नाशिक वाले की ओर से भाई श्री मोहनसिहजी पारख की स्मृति मे — नाशिक

१०१) स्व. श्रीमान् सेठ माणकचन्दजी रूनवाल की धर्मपत्नी श्रीमती मैनाबाई रूनवाल — झाबुआ

सम्पादक की कलम से

कथा-साहित्य—मानव-जीवन विविध रगी है और मानव की जिज्ञासा उससे भी अधिक विविध रगी है। अत मानव के जीवन के विविध अगो, उसके भावो, कार्यो आदि को विविध दृष्टि से स्पर्श, आलेखन या विश्लेषण करने वाले और जिज्ञासा को तृप्त करनेवाले साहित्य के भी अनेक रूप होगे ही। उस साहित्य मे ललित साहित्य का बहुत महत्व है। ललित साहित्य मे भी कथा-साहित्य का प्रधान स्थान है। क्योकि कथा-साहित्य मनुष्यो के मन को बहुत जल्दी छूता है। कथा-साहित्य मे मन को अपने मे रमा लेने की बहुत बडी क्षमता होती है। यही कारण है कि विश्व मे कथा-साहित्य विपुल मात्रा मे उपलब्ध होता है। ऐसी भी कथाएँ हैं जो मौखिक रूप से पीढी दर पीढी परम्परा से चलती रहती है। अस्तु,

कथा-साहित्य के भी विविध रूप है। कथा की रचना दो रूपो मे होती हैं—(१) पद्य रूप मे और (२) गद्य रूप मे। पद्य कथाओ के भी विविध रूप हैं, जैसे—पाट्य, गेय और अभिनेय। इनमे भी महाकाव्य, खण्ड-काव्य, चरित काव्य, मुक्तक कथा-काव्य, मुक्तक कथा गीति, नाट्य गीति आदि अनेक भेद-प्रभेद होते हैं। गद्य कथा के प्रमुख तीन प्रकार हैं—(१) पाठ्य, (२) श्राव्य, और (३) दृश्य। पाठ्य कथा के उपन्यास, कहानी आदि, श्राव्य कथा के दृष्टान्त, उदाहरण, चुटकुले, घटना-प्रसग आदि और दृश्य कथा के नाटक, प्रहसन, रूपक, एकाकी आदि। गद्य और पद्य के मिश्रण से युक्त भी कथाएँ होती हैं, जैसे—चम्पू, नाटक, व्याख्यान आदि। इसप्रकार कथा विविध रूपो में मनुष्यो के मन को मोहित करती रहती है।

कथा के इस मनोरञ्जकता गुण से आकर्षित होकर ही धर्मोपदेशको ने भी इसे बहुत अपनाया। वस्तुत प्राचीन कथाएँ अधिका-

शत धर्मकथाओ के रूप मे ही उपलब्ध होती है। क्योकि कथाओ के माध्यम से प्रतिपाद्य विषय को श्रोताओ के चित्त मे अच्छी तरह से जमाया जा सकता है।

इसप्रकार हजारो वर्षो से कथा-साहित्य का निर्माण होता आ रहा है। अत प्रचीन देशो के पास कथाओं का विशाल भण्डार है। उन भाग्यशाली देशो मे भारतवर्ष भी एक है।

जैन-कथा-साहित्य—भारतवर्ष मे धर्म की दो प्रमुख धाराएँ चलती रही है—ब्राह्मण और श्रमण। ब्राह्मण धर्म के श्रद्धा के केन्द्र है—वेद। वेदो मे भी कहानियाँ बीज रूप मे पाई जाती है। ब्राह्मणों का वेदेतर साहित्य कथा-कहानियो से भरा पडा है। रामायण और महाभारत कथा-काव्य है। पुराणो मे अनेक कथाओ का सग्रह हैं। श्रमण धर्मधारा की भी अनेक उपधाराएँ थी। उनमे निर्ग्रन्थधर्म और बौद्धधर्म प्रधान हैं। बौद्धधर्म मे जातक कथा आदि रूपमै विपुल कथा-साहित्य है।

निर्ग्रन्थधर्म सम्प्रति जैन-धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। जैन-धर्म के शास्त्र चार अनुयोगो मे विभाजित हैं। अनुयोग अर्थात् सिद्धान्त की व्याख्या-पद्धति। अनुयोग चार है—(१) द्रव्यानुयोग, (२) गणितानुयोग, (३) चरण-करणानुयोग और (४) धर्म कथानुयोग। धर्म कथानुयोग मे तीर्थङ्करो के जीवन से लगाकर, छोटे-छोटे हेतु—उदाहरण तक आ जाते है। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है, भगवान महावीरदेव के उपदेशो से सकलित मात्र छट्ठे अग शास्त्र ज्ञातृ-धर्म-कथाङ्क मे ही साढ़े तीन करोड आख्यायिकाएँ, उपाख्ययिकाएँ आदि थी। सातवे अग मे श्रवक-श्राविकाओं और आठवे-नवे अगो आदि शास्त्रो मे साधु-साध्वियो आदि की जीवन-गाथाएँ दी गई है। अन्य शास्त्र मे भी रूपककथाएँ, हेतु, दृष्टान्त आदि है।

आगमो के सिवाय उनकी टीकाओ, चूर्णियो आदि मे भी कथाओ का प्राचुर्य है। आगमो के उत्तरवर्ती साहित्य मे भी विपुल

मात्रा मे कथा-साहित्य का निर्माण हुआ है। जैनाचार्य, साधु, साध्वियाँ, उपासक, उपासिकाएँ भी परम्पर चाव से कथाएँ कहते-सुनते हैं। अत लोक-कथाओ, अन्य धर्म की कथाओ, नीति कथाओ आदि का सग्रह होता रहा है, व नई कथाओं का निर्माण होता रहा है और प्राचीन कथाओं को युगानुरूप शैली मे ढाला भी जाता रहा है।

प्रस्तुत-ग्रन्थ—इस पुस्तक मे दो ग्रन्थ संग्रहित है—(१) सूर्य-दृष्टान्त-शतक और (२) उपदेश-शतक। प्रथम ग्रन्थ मे कथाओ का सग्रह है और दूसरे ग्रन्थ मै उपदेश की प्रधानता है प्रथम ग्रन्थ मे १०१ कथा-दृष्टान्तो का सग्रह है। इसमे कुल १०३ पद्य (कवित और सवैया) है। प्रथम पद्य मे मगलाचरण और अन्तिम पद्य मे प्रशस्ती है। वीच के १०१ पद्यो में कथाएँ आदि है। एक-एक पद्य मे एक-एक कथा या दृष्टान्त गुम्फित है। उनको एक-एक पद्य मे समाविष्ट करने के लिये, बहुत ही सक्षिप्त किया गया है।

ग्रन्थ का नाम—प्राचीन समय से पद्यो की संख्या के ऊपर से ग्रन्थो या रचनाओं के नाम रखने की पद्धति चली आई है। जैसे **सप्तशती** (सतसई)—दुर्गासप्तशती, विहारी सतसई, **शतक**—नीति शतक, वैराग्यशतक, **सप्ततिका** (सीतरी-वहोतरी) सम्यक्त्व-सप्ततिका, शुक्र-बहोतरी, **षट् पंचाशिका** (छपनी-बावनी) समकित छपनी, केशव बावनी, **पंचाशक** (पचासा, चालीसा), **द्वात्रिंशिका** (वत्तीसी-छत्तीसी), चतुर्विंशतिका, विंशिका, षोडशक, अष्टक आदि। इसी परस्परा के अनुसार इस ग्रन्थ का नाम है—**दृष्टान्त-शतक**। इस नाम के पूर्वर्षियो के द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ विद्यमान है। जैसे लोका-गच्छीय महर्षि श्रीतेजसिहजो के द्वारा सस्कृत भाषा मे रचित 'दृष्टान्त-शतक' और ऋषि सम्प्रदाय के कविवर श्री अमीऋषिजी म के द्वारा हिन्दी भाषा मे रचित 'दृष्टान्त-शतक'। अत उनसे भिन्नता दरसाने के लिये, मैंने इसके नाम के पहले गुरुदेव का सक्षिप्त नाम जोड़कर, इस ग्रन्थ का नाम 'सूर्य-दृष्टान्त-शतक' कर दिया है।

ग्रन्थ की भाषा—इस ग्रन्थ की भाषा शुद्ध हिन्दी नही है। प्राचीन स्थानकवासी जैन सन्तो की भाषा के विषय मे एक विशेषता रही है। वे सन्त जिस प्रदेश मे जन्मे हुए होते या जिस प्रदेश मे वे अधिकतर विचरण करते, उस प्रदेश की भाषा की प्रधानता से युक्त, अन्य प्रदेश की भाषाओ के शब्दो से मिश्रित लोक भाषा मे, वे रचना करते थे। उसी परम्परा के अनुसार इस ग्रन्थ की भाषा है। इसमे मालवी बोली के शब्दो का काफी प्रयोग हुआ है और ब्रजभाषा, गुर्जरगिरा और मारवाडी भाषा का भी यथेष्ट प्रभाव है।

ग्रन्थ की शैली—इस ग्रन्थ की रचना न तो काव्यात्मक दृष्टि से ही हुई है और न पाण्डित्य-प्रदर्शन की दृष्टि से ही। इसकी रचना वक्ताओ को कथाओ का स्मरण सहज मे हो सके—इस हेतु हुई है। अतः इस उद्देश्य के अनुरूप ही इसकी शैली है। थोडे शब्दो मे पूरी कथा को समेट लेना ही इसकी विशेषता है। कही-कही तो पूरी कथा पद्य मे न कहकर, कथा के प्रमुख प्रसंग को ही पद्यबद्ध कर दिया गया है। इस कार्य को पूर्ण करने को दो छद चुने गये है—कवित्त और सवैया। अधिकाश पद्यो मे कथा आदि के सग्रह के साथ ही, उनके उद्देश्य और शिक्षाओ की ओर भी सकेत कर दिया गया है।

ग्रन्थ का विषय—इस ग्रन्थ मे किसी एक विषय का प्रतिपादन नही है और हो भी नही सकता है। क्योकि गुरुदेव को अपनी रुचि की या पसद की कथा आदि का सग्रह करना ही अभिष्ट था। अत इसमे लोककथाएँ भी है तो नीति कथाएँ—धर्म-कथाएँ भी है। कोई रूपक कथा है तो कोई घटना-प्रसग भी है और कोई कथा छोटे चुट-कुले जैसी भी है।

ग्रन्थ-रचना के समय गुरुदेव का, इसके विषय को किसी क्रम मे सयोजित करने की ओर, ध्यान नही गया। क्रम बिठाने का प्रयत्न सम्पादक की ओर से हुआ है। अत क्रम मे शृखला-बद्धता और पूर्णता खोजना वृथा है।

ग्रन्थ का सम्पादन—दिवाकर देन भाग २ और ३ के सम्पादन काल मे ही इस ग्रन्थ के सम्पादन की इच्छा हुई। अत सवत् २०३२ के वदनावर चातुर्मास मे इस ग्रन्थ के सम्पादन का कार्य प्रारम्भ हुआ प्रारम्भ मे कथा का पद्य, फिर कथा का लेखन और अन्त मे कथा से प्राप्त शिक्षा का सार। इस क्रम से इस ग्रन्थ का सम्पादन हुआ है। कथा-लेखन मे आधुनिक-प्राचीन शैली का मिश्रण हुआ है। भाषा में सरलता रखने का प्रयत्न होने पर भी कही-कही क्लिष्टता आ गई है।

ग्रन्थ की रचना लगभग ४२ वर्ष पूर्व—स १९९१ के बम्बई चातुर्मास मे हुई थी। इसकी कथाएँ आदि स्वय गुरुदेव ने उस समय लिखी थी। इसे प्रकाशन के लिये प्रेस मे दिया जा चुका था। परन्तु प्रेस मे पाण्डुलिपि गुम हो गई। अत तब इसका प्रकाशन न हो सका। फिर गुरुदेव की इस प्रकाशन की इच्छा ही नही रही। परन्तु जब गुरुदेव ने इस ग्रन्थ के सम्पादन की मेरी रुचि देखी तो मुझे इस ग्रन्थ के सम्पादन की अनुमति दे दी।

उपदेश-शतक—इस पुस्तक का दूसरा ग्रन्थ है—'उपदेश-शतक' इसमे विभिन्न समय मे (स, १९७९ से स २०११।१२ तक) गुरुदेव के द्वारा रचे गये विभिन्न विषयो के पद्यो का का सग्रह है। इसमे उपदेश का स्वर प्रधान होने से 'उपदेश-शतक' इसका नाम दिया गया है।

अन्तिम बात—इन ग्रन्थो के सम्पादन का कार्य कभी का पूरा हो चुका था। क्योकि वदनावर सघ के कुछ प्रमुख व्यक्तियो का आग्रह था कि पूज्य गुरुदेव, स २०३३ की वैशाखी पूर्णिमा को पचहत्तर वर्ष पूर्ण करके छिहत्तरवे वर्ष मे और ज्येष्ठ शुक्ला पचमी को दीक्षा-पर्याय के पैंठस वर्ष पूर्ण करके, छाँसठवे वर्ष मे प्रवेश कर रहे हैं, उस कालावधि मे इस ग्रंथ का प्रकाशन हो। परन्तु किन्ही कारणो से उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। अस्तु, कुछ देर से ही सही, पर

यह ग्रन्थ इसी वर्ष आपके हाथो मे पहुँच रहा है। इन ग्रन्थों का कार्य जल्दी पूर्ण करने मे उनकी प्रेरणा ही प्रमुख रही है। साथ ही गुरुदेव और मेरे पूज्य गुरु भ्राता प. श्री रूपेन्द्र मुनिजी म का कृपानुभाव स्मरणीय है। श्री शान्तिमुनिजी म और श्री चैतन्यमुनिजी म. ने प्रूफ-सशोधन मे काफी सहयोग दिया। अत धन्यवाद और साथी मुनि श्री प्रमोदमुनिजी का दिनचर्या मे सहयोग भी भुलाने योग्य नही है तथा जो भी इस ज्ञान के इस साधन के प्रकाशन मे किसी भी रूप मे सहयोगी वन रहे है वे भी साधुवाद के पात्र है।

जैनधर्म स्थानक
बदनावर
ज्येष्ठ शुक्ला, पचमी, सं २०३३
(गुरुदेव की दीक्षातिथि)

उमेशमुनि 'अणु'

पूज्य गुरुदेव का संक्षिप्त परिचय

१. **पिता का नाम**—श्री वच्छराजजी पीपाडा,
२ माता का नाम—श्री फूलकुँवरबाई,
३ जन्म स्थान— आलोट (म प्र),
४. जन्म समय— वैशाख शुक्ला पूर्णिमा, वि सं १९५८,
५ जन्म नाम— भेरुलालजी,
६, दीक्षा समय— ज्येष्ठ शुक्ला पचमी, वि स १९६८,
७ दीक्षा स्थान— उज्जैन, पिताजी के संग दीक्षित,
८ दीक्षा गुरु— श्रीमद् धर्मदासजी म की सम्प्रदाय के आचार्य देव पुज्यपाद श्री नन्दलालजी म
९ गुरु भ्राता—प. श्रीकिसनलालजी म., श्रीवच्छराजजी म., आदि
१०. विशेपताएँ—स्व-पर सिद्धान्तो का विशिष्ट अध्ययन, थोकडो का ज्ञान, कविता बनाने की रुचि और प्रवृत्ति, प्रवचन-कुशलता, प्रश्नोत्तर के माध्यम से लोगो मे तत्वज्ञान के प्रसार की प्रवृत्ति, पुरातन ग्रन्थों के अन्वेषण और सरक्षण की प्रवृत्ति, यश· कीर्ति के प्रति औदासीन्य आदि,
११. पद—कविवर, सं. २०२० मे प्रवर्तक पद,
१२ शिष्य—स्व श्री मोहनमुनिजी म , स्व. श्री माणकमुनिजी म., स्व. श्री सुरेन्द्रमुनिजी म , सेवाशील प श्री रूपेन्द्रमुनिजी म , उमेशमुनि 'अणु'
१३ चातुर्मास—गुरुदेव के चतुर्मास के स्थान—

१. शाजापुर,	१९६८	२. जोधपुर,	१९६९
३. किशनगढ	१९७०	४ इन्दौर	१९७१
५ थादला	१९७२	६. उदयपुर	१९७३
७ जेतारण	१८७४	८ रतलाम	१९७५

९ धार १९७६
१० रतलाम १९७७
११ खाचरोद १९७८
१२ रतलाम १९७९
१३ दिल्ली १९८०
१४ जयपुर १९८१
१५ मोरवी १९८२
१६ पालनपुर १९८३
१७ चिच पोकली व. १९८४
१८ माटूँगा ववई १९८५
१९ खाचरोद १९८६
२० थादला १९८७
२१. रतलाम १९८८
२२ उज्जैन १९८९
२३ टोंक १९९०
२४. कादावाड़ी व १९९१
२५ जालना १९९२
२६. सिकदराबाद १९९३
२७ मद्रास १९९४
२८. वेगलोर १९९५
२९ हैदराबाद १९९६
३० लातूर १९९७
३१ इन्दौर १९९८
३२ पेटलावद १९९९
३३ रतलाम २०००
३४ इन्दौर २००१
३५ लीमड़ी २००२
३६ थादला २००३
३७ थादला २००४
३८ इन्दौर २००५
३९. इन्दौर २००६
४० " २००७
४१ " २००८
४२ " २००९
४३ थांदला २०१०
४४ सैलाना २०११
४५ माटूँगा (बं) २०१२
४६ कादावडी वं २०१३
४७ इन्दौर २०१४
४८ थादला २०१५
४९. सैलाना २०१६
५० उज्जैन २०१७
५१ कोटा २०१८
५२ जयपुर २०१९
५३. दिल्ली २०२०
५४ बूंदी २०२१
५५. थादला २०२२
५६ झाबुआ २०२३
५७ मेघनगर २०२४

५८ वदनावर २०२५ — ५९ सैलाना २०२६
६०. शुजालपुर २०२७ — ६१ रतलाम २०२८
६२. थांदला २०२९ — ६३. वदनावर २०३०
६४. रतलाम २०३१ — ६५ बदनावर २०३२
६६ वदनावर २०३३

गुरुदेव कृतियाँ—

भजन संग्रह—१. चतुर्विशति-जिन-स्तुति, २ भजन-प्रदीप,
३. भजन-भूषण, ४ भजन-भास्कर,
५. सगीत-सुधाकर, ६ सूर्य-स्तवन-सग्रह,
७. जैन चरित भजनावली, ८ भव्य भजन,

चरित्र (प्रकाशित)—

१. गुण सुन्दरी, २–८ सप्त चरित्र,
९ चरित्र चन्द्रिका, १० हरिकेशीबलमुनि चरित्र,
११. जैन रामायण, १२, मृगावती चरित्र,
१३. मुनिपति चरित्र,

(अप्रकाशित)—

१४. रत्नपाल चरित्र, १५. मानतु ग-मानवती,
१६. नल-दमयती, १७. धर्मपाल चरित्र,
१८ पुण्यलता चरित्र, १९ कनक श्री ,,
२० सुखानन्द-मनोरमा, २१ नागदत्त चरित्र,
२२ विप्र और कसाई, २३. अमर जड़ी,
२४ कामलता, २५ पुण्यशाली,
२६. सती कलावती, २७ शीलवती (वडी),
२८ शीलवती (छोटी), २९ उत्तम चरित्र,
३०. वीर कुमार, ३१ जिनदत्त चरित्र,
३२ चन्दा चरित्र, ३३ दमदतमुनि,

३४. अनन्त चरित्र, ३५ मन्त्री धर्मवीर,
३६. मानपिण्ड-निषेध, ३७ मुग्ध श्रावक,
३८. सुलस कसाई, ३९. सग्रामसिंह सोनी,
४०, देवज्ञान शकलवो, ४१. मांसाहार-निषेध,
४२. सिकंदर का दृष्टान्त, ४३. निहालसिंह,
४५. चम्पकमाला, ४६. सम्यक्त्व के दूषण,
४७. जैन महाभारत (अपूर्ण)

प्रबन्ध—

४८. भावना-प्रबोध (प्रकाशित),
४९. मातृ-पितृ-भक्ति (अप्रकाशित),
५० चार संज्ञा-चार धर्म, ,,
५१ राक्षस कौन ? ५२ उपदेश-शतक,

कथा ग्रन्थ—

५३. दृष्टान्त-शतक, ५४. दृष्टान्तमाला,

सम्पादित ग्रन्थ—संस्कृत श्लोक-संग्रह भा. १, भा. २,

कवित्त

वत्स आंख के आनंद, मात फूल-अक-चन्द ।
नन्द-शिष्य वीर-नन्द, सूर्य मुनिराज हैं ॥
कृश देह, गुण-गेह, भरपूर धर्म-स्नेह ।
भरा भव्य मन शूर, भक्त सिरताज है ॥
बाल-वृद्ध पर दृष्टि, करे सम कृपा वृष्टि ।
प्रफुल्लित धर्म-संघ, सजे ज्ञान-साज है ॥
प्रवर्तक गुरुराज ! करो दान कृपा प्यार ।
मन शांति हर्ष धार, नमस्कार आज है ॥

णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स वड्ढमाणस्स

श्री सूर्य-दृष्टान्त-शतक

मंगलाचरण (कवित्त)

शासन-सम्राट् वीर, वर्धमान जग-त्राता,
जिनके पसाये आज, धर्म-धन पावे है।
धन्य गुरुदेव ! जड़-चैतन्य बतायो भिन्न,
प्रगाढ़-अज्ञान उर—अंधेरो मिटावे हैं॥
अनुयोग चार जामे, सरल कथानुयोग
बाल-युवा-वृद्ध सबै, चित्त में सुहावे है।
प्रभु वंदी 'सूर्यमुनि' अणु-अणु कथा लही,
दृष्टान्त-शतक' करूं, भव्य बोध लावे हैं॥१॥

विवेचन

यह प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रथम पद्य है। इस पद्य मे छह विषय आये हैं। यथा—(१) मङ्गल, (२) विषय-निर्देश, (३) ग्रन्थ के अधिकारी, (४) ग्रन्थ का नाम, (५) ग्रंथ का उद्देश्य और (६) फल।

मंगल—ग्रन्थ के प्रारम्भ मे मगलाचरण की परिपाटी प्राचीन काल से चली आई है। जैन ग्रन्थकारो ने आदि, मध्य और अन्तिम इन तीन मंगलो का विचार किया है अर्थात् ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त मे मंगल करने का सामान्यत· विधान किया है। आद्य मङ्गल विघ्न की उपशान्ति के लिये, मध्य

मङ्गल ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये और अगम मङ्गल ग्रन्थ की चिर काल तक निर्विघ्न रूप से परम्परा चलने के लिये किया जाता है। इस ग्रन्थ में भी आद्य और अन्त्य मङ्गल किया गया है।

कवित्त के प्रथम दो-चरण में मङ्गल रूप है। प्रथम चरण में वर्तमान तीर्थ के अधिपति श्रमण भगवान महावीर देव की और दूसरे चरण में जिन धर्म में प्रेरित करने वाले अज्ञान अन्धेरे के विनाशक गुरुदेव की स्तुति की गई है।

विषय-निर्देश—शास्त्र-सिद्धान्त की व्याख्या को अनुयोग कहते हैं। अनुयोग चार हैं— (१) द्रव्यानुयोग-धर्मादिद्रव्यों की व्याख्या, (२) गणितानुयोग-गणित के माध्यम से सिद्धान्त की व्याख्या, (३) चरण करणानुयोग-आचरण की व्याख्या और (४) धर्म कथानुयोग कथाओं, रूपकों आदि के माध्यम से सिद्धान्त की व्याख्या। प्रस्तुत ग्रन्थ कथानुयोग का है। यह बात तीसरे आधे चरण में बताई गई है।

ग्रन्थ के अधिकारी—आधे तीसरे चरण में इस ग्रन्थ के अधिकारियों का निर्देश किया गया है। सामान्य रूप से बाल, युवा और वृद्ध-स्त्री या पुरुष सभी इस ग्रन्थ के अधिकारी हैं और विशेष रूप से, ऊपर के आधे चरण की अनुवृत्ति लेने पर, व्याख्याता, जिज्ञासु श्रोता और पाठक इस ग्रन्थ के अधिकारी हैं।

ग्रन्थ के नाम—इस ग्रन्थ का नाम '(सूर्य) दृष्टान्त शतक' है। क्योंकि इसमें छोटी-छोटी सौ (१०१) कथाएँ ली गई हैं। यह बात चौथे चरण के पौन भाग में कही गई है। इसमें ग्रन्थकर्ता का नाम भी आ गया है।

ग्रन्थ का उद्देश्य—भव्यात्माओं में हित-अहित का विवेक (बोध) उत्पन्न हो-इसलिये इस ग्रन्थ की रचना की गई है-यह बात चौथेचरण के चतुर्थांश में कही गई है।

-**फल**—'भव्य' शब्द ग्रन्थ के पारम्परिक फल की ओर इंगित करता है। भव्य-अर्थात् मोक्ष-गमन के योग्य जीव। जब भव्य जीव बोध पाकर, मन, वचन, काया के द्वारा हेय के त्याग और उपादेय के स्वीकार पूर्वक व्यवहार की शुद्धि करता है तब उसे उत्कृष्ट फल मोक्ष प्राप्त होता है।

अन्तर् वैभव [१ से ३०]

(क्रम की समझ—)

अदृष्ट विश्वास, (१ से ६)

(१) नियति, (२) कर्मफल, (३-४) पापोदय, (५) पुण्योदय, (६) कर्मफल-विश्वास,

भाव—चरण (७ से २३)

(७) **आत्म-विस्मृति, अज्ञान के तीन कारण**—(८) जडता, (९) पूर्व-व्युद्ग्राहिता, (१०) अन्य-मनस्कता, **दृष्टि के रूप** (११) सम्यग्-असम्यग् दृष्टि, (१२) दृष्टि भेद, (१३) इहलोक दृष्टि, (१४) परलोक दृष्टि, **वृत्तियों के रूप**—(१५) सदसद् वृत्तियाँ, (१६) श्वान वृत्ति, (१७) यशोलिप्सा, (१८) विकृत वृत्ति का प्रभाव, (१९) ठगवृत्ति, (२०) क्लीवता, (२१) क्षमावृत्ति (२२) नि स्पृहता, (२३) **आत्मजयी**

बुद्धिबल (२४ से ३०)

(२४) बुद्धि की प्रधानता, (२५) बुद्धि की जडता, (२६—२७) प्रत्युत्पन्नमति, (२८) सारान्वेषिणी बुद्धि, (२९) परोपकारिणी बुद्धि, (३०) आत्म-सरक्षिणी बुद्धि।

[शुद्ध श्रद्धा से भाव-विशुद्धि होती है और भाव-विशुद्धि से बुद्धि-बल का आविर्भाव होता है। शुद्ध-श्रद्धा, भावविशुद्धि और निश्चल प्रज्ञा-ये अन्तर् वैभव के तीन रत्न है।]

(१) होनहार बड़ो है (कवित्त)

पारेवी पति से कहे–'होवेगा विरह दुःख
ऊँचो बाज, नीचे सर सांधी व्याध खड़ो है' ।
'अरे प्राणप्रिये ! तुम काँहें को फिकर धरो ?
सोचे और, होत और, यांको नहीं घड़ो है' ।।
बिल से भुजंग तबै आय डस्यो व्याध मर्यो,
तासे तीर छुट्यो लागो नीचे बाज पड़ो है ।
निश्चित कपोत उड़े तबै, 'सूर्यमुनि' कहे–
'विचार्यो न काम आवे, होनहार बड़ो है' ।।२।।

एक वृक्ष की शाखा पर एक कपोत और एक कपोतिका बैठी थी । एक बाज उन्हें दबोचने के लिये चक्कर काट रहा था । एक बहेलिये ने भी उन्हे देखा । वह चिडियो का शिकार कर रहा था । उसे यह कपोत-युगल दिखाई दिया । उसने भी उन्हे मारने के लिये धनुष्य पर तीर चढ़ाया । यह दृश्य देखकर, कपोतिका कांप उठी । वह कपोत से बोली–'हे प्राणनाथ ! आज तो निश्चित अपनी मौत आ गई है । ऊपर बाज घूम रहा है और नीचे बहेलिया बाण साधकर खडा है ।'

कपोत हँसा । उसने कहा—'प्राणप्रिये ! इतनी भयभीत क्यो हो रही हो ! मरना तो है ही एक दिन ! परन्तु भविष्य में क्या होने वाला है–कौन जाने ? सोचते क्या है और होता क्या है ? काँपों मत । भगवत्स्मरण करो । जो होना है, वह तो होवेगा ही !'

व्याध का पॉव बिल पर रखा हुआ था । बिल से भयङ्कर साँप निकला और व्याध के पाँव पर डँस लिया । साँप के डँसते ही उसके प्राण

पँखेरू उड गये और वह गिर पडा। इधर उसके धनुष्य से बाण छूटा और वह जाकर बाज के लगा, जिससे वह धराशायी हो गया।

कपोत–कपोतिका निर्भय होकर, वहाँ से उड गये।

कान्तं वक्ति कपोतिकाऽऽकुलतया नाथान्त-कालोऽधुना,
व्याधोऽधो धृत-चाप-सज्जित-शरः श्येनः परिभ्राम्यति।
इत्थं सत्यहिना स दृष्ट इषुणा श्येनोऽपि तेनाऽऽहतः,
तूर्णं तौ तु यमालयं प्रतिगतौ दैवी विचित्रा गतिः॥

शिक्षा—'विचार्यो न काम आवे होनहार वड़ो है'। विपत्ति आने पर भयभीत नही होकर, होनहार पर विश्वास रखना चाहिये। होनहार पर विश्वास रखने से विपत्ति मे धैर्य प्रकट हो सकता है।

---

(२) जिन्ने जैसो कर्यो तैसो भर्यो है

माली कुंभकार मिल, ऊँट एक भाड़े लियो,
एक बाजू भाजी-पान, दूजे घट धर्यो है।
आगे माली, पीछे कुंभकार रखवाल रह्यो,
ऊँट भाजी खाय-खाय, बोझ खाली कर्यो है॥
वरजे कुलाल नाही–'कहा मेरी हानि यामें'
एक बाजू बोझ खाली हुवो, तासे पर्यो है।
फूटे सब घट, कुंभकार पछताय महा,
कहे 'सूर्य' जिने जैसो कियो तेसो भर्यो है॥२॥

गाँव से दूर मेला लग रहा था। मेले मे कई अपना माल बेचने जा रहे थे, कई कुछ खरीदने के लिये तो कई यो ही घूमने-फिरने के लिये जा रहे थे। एक माली भाजी, फल फूल आदि बेचने के लिये और कुम्हार मिट्टी के घडे आदि बर्तन बेचने के लिये जाना चाहता था। वे दोनों अपना बोझ ढोने के लिये साधन की तलाश मे थे। एक ऊँटवाला दोनो की पहचान का था। दोनो ने मिलकर उससे एक ऊँट किराये पर लिया। उस-

पर एक तरफ भाजी-पत्ते लादे गये और दूसरी तरफ मिट्टी के बर्तन। अब वे ऊँट को लेकर मेले की ओर रवाना हुए।

ऊँट के आगे-आगे माली चल रहा था और पीछे-पीछे कुम्हार। ऊँट ने चलते-चलते मुँह मोडा और भाजी की गठरी से कुछ भाजी खीचकर खाली। यह दृश्य देखकर कुम्हार को वडा आनन्द आया। थोड़ी देर बाद ऊँट ने थोडी भाजी और खाली। कुम्हार को बडा मजा आया। उसने सोचा—'खाने भी दो। मेरे घडो को तो यह ऊँट खा नही सकता है। यह माल तो माली का है। इसमें मेरी क्या हानि है? इस माली ने भी क्या माल लिया बेचने के लिये कि जिसे जिसपर लादा, उसे वही खाने लगा! यह ऊँट टेढा मुँह करता है तब कैसा दीखता है!' इस प्रकार कुम्हार ने ऊँट को भाजी खाते हुए नही रोका और वह ऊँट को भाजी खाते हुए देखकर खुश होता रहा।

जब ऊँट ने एक वार वहुत सारी भाजी मुँह मे भर ली, तब कुम्हार को जोर से हँसी आ गई। माली ने पीछे फिरकर देखा और वह सारी बात समझ गया। उसे बडा दुःख हुआ—'अरे! इस कुम्हार ने कैसी दुष्टता की है? इसे मेरा नुक्सान देखकर बडा मजा आ रहा है? पर मूर्ख है यह? इसे अपना नुक्सान नही दीख रहा है?' उसने कुम्हार से कहा—'हँस ले, अभी तेरी हँसने की बारी है। आगे चलकर क्या होता है, सो पता लगेगा!'

'हड-हड हँसे कुम्हारडी, माली केरा बूँट।
आगे चलकर देखिये, किन करवट बैठे ऊँट'॥

ऊँट पर लदे हुए बोझ मे, एक तरफ भार कम हो जाने के कारण सन्तुलन बिगड गया और कुछ कदम आगे जाने पर वह बोझ नीचे गिर पडा। कुम्हार के सभी बर्तन फूट गये। वह एकदम रोने लगा। तब माली बोला—'हँसा है तो रोना भी पड़ेगा। तूने मेरा बुरा सोचा था। मेरी हानि देखकर तू खुश हुआ था। उसका फल भुगत अब तेरा तो कुछ भी नही बचा है। परन्तु मेरी भाजी तो अब भी बहुत कुछ बच गई है।'

शिक्षा—(२) 'जिने जैसो कियो तैसो भर्यो है' अर्थात् जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है।

(२) किसी की हानि होते हुए देखकर खुश नही होना चाहिये।

(३) दूसरे की हानि को रोकने मे अपना ही लाभ है।

---

(३) भाग्य विना न पावे सुख

देव-देवी गमन करत है गगन-बीच
देख एक दुःखी जन दया दिल धारे है।
देवी की अरज सुन, पंथ में पारस धरे
आयो तिन थान दुःखी हृदय विचारे है ॥
चले कैसे अंध जन-दरिद्र विचारे मन
आँख बंद करी तब, आगे पग धारे है।
कहे 'सूर्य' भाग्य विना, दरिद्री न पावे सुख
कोटि हु प्रयास करो, कर्म के आधारे है ॥४॥

एक था जन्म-दरिद्री । पति-पत्नी दोनों गरीबी से दुखी थे। वे जंगल मे जाते और लकडी का बोझा लाकर, उसे बेच देते। उससे जो प्राप्त होता, उसीसे अपना जीवन-यापन करते।

एक दिन पति-पत्नी दोनो जगल से लकडी की भारियाँ लेकर आ रहे थे। उधर से एक देव और देवी गुजर रहे थे। देवी इस दुखी दम्पति को देखकर दयार्द्र हो उठी। वह देव से बोली—'इन्हे सुखी करो!'

देव—'प्रिये! इनके भाग्य मे सुख नही है। कैसे सुखी कर सकते है हम उन्हे?'

देवी—'आर्य! बात क्यो टाल रहे हो? हम शक्तिशाली देव हैं। इन्हे क्यो नहीं सुखी कर सकते है हम?'

देवी ने हठ ठान ली।

आखिर देव ने उस दरिद्र दम्पति को सुखी और समृद्ध बनाने के लिये, उनके मार्ग मे पारसमणि रख दी।

दोनो पति-पत्नी चले जा रहे थे। वे आपस मे बाते कर रहे थे। पति बोला—'हम कितने दु.खी है ?'

पत्नी—'दु.खी हैं, परन्तु धन से ही दु खी है। शरीर से तो सुखी है। देखो, बेचारे अन्धे कैसे रहते होगे ? कैसे चलते होगे ? कैसे अपने कार्य करते होगे ?'

पति—'बात तो तेरी जँचती है। पर हाँ ! अन्धे कैसे चलते होगे ? हम चलकर देखे तो सही !'

पत्नी—'हाँ ! देखे तो सही !'

दोनो आँखे बन्द करके चलने लगे। वे बीस-पच्चीस कदम चले। पारसमणि पीछे छूट गई। वे आँखे मीचकर चलने से अकुला गये। उन्होंने आँखे खोली और बोले 'आँख बिना सब ओर अन्धेरा है !'

देव ने देवी से कहा—'देख लिया ! इनके भाग्य मे सुख नही है। अत पारसमणि के क्षेत्र मे ये आँखे होते हुए भी अन्धे बन गये !'

शिक्षा—'सुख कर्म के आधारे है' वैभव आदि की प्राप्ति भाग्याधीन है। देव-देवी भी या उनकी पूजा भाग्य बिना सुख नही दे सकती है। अत देव-देवी या चमत्कारों के पीछे पागल नही बनना चाहिये।

---

(४) मेरे पास गधा है

'शिव को वाहन बैल. महिष पै यमराज
इन्द्र के है ऐरावण, कर जाके गदा है।
भवानी वाहन सिह, मूषक पै गजानन,
कृष्ण के गरुड़, हस शारदा के मुदा है ॥
मंगल-वाहन मेंढो, चन्द्र के हिरन जानो,
भैरव बिचारो जाय, कूकर पै लदा है।'

ठाकुर से शीतला यों कहे 'सूर्यमुनि' तबै–
'तुरंग है सूर्य पास, मेरे पास गधा है' ।।५।।

एक था रणबांका वीर योद्धा ठाकुर । उसने कई युद्धों में अपने शौर्य की यश पताका फहराई थी । उसका अश्व भी उच्च जाति का और सुशिक्षित था । उसे अपने अश्व पर बड़ा गौरव था । वह राजा के द्वारा सम्मानित योद्धा था ।

रणभेरी बजी । राजा के आदेश से चतुरंगिणी सेना युद्ध के लिये सज्ज हो गई । वह रणबांका योद्धा भी सेना के साथ रणभूमि की ओर रवाना हुआ है । वह अपने अश्व पर तन कर बैठा था ।

रणाङ्गण में घनघोर युद्ध होने लगा । वह योद्धा अपनी तलवार का चमत्कार दिखा रहा था कि अचानक कहीं से सनसनाता हुआ तीर आया । वह विषबुझा तीर अश्व के मर्मस्थल पर लगा । अश्व रणभूमि के किनारे आया और ढेर हो गया । योद्धा गिरते-गिरते बचा । उसने एक चौतरे का सहारा लिया ।

उसने देखा कि यह शीतलादेवी का चौतरा है । उसके हृदय में टीस थी कि वह रणभूमि से दूर हो गया और उसका अश्वरत्न धोखे से मारा गया । उसने शीतला को हाथ जोड़कर अन्तःकरण से प्रार्थना की–'हे मातेश्वरी ! मुझे अश्व दो तो मैं रणभूमि में अपना युद्ध कौशल दिखाऊँ ।'

उसकी प्रार्थना से आकर्षित होकर, खरवाहिनी प्रकट होकर बोली –हे ठाकुर ! तुम क्या मांग रहे हो ? देखो शिवजी का वाहन वृषभ है । बेचारे यमराज पाड़े पर ही बैठकर फिरते हैं । इन्द्र के पास एक ऐरावत हाथी ही है । भवानी को भला क्रूर सिंह ही वाहन के रूप में प्राप्त हुआ । गणेश का कितना भारी शरीर और वाहन कैसा–चूहा ! कृष्णजी का वाहन है गरुड़ ! वाह ! बहिन शारदा हंसपर बैठकर फूली नहीं समा रही है ? मंगल के हाथ मेढ़ा ही लगा है । चन्द्र अपने वाहन हिरण की कुलाँचों

से परेशान है और बेचारे भैरव की दशा तो देखो, उसे कुत्ते से ही सतोष करना पड रहा है। हाँ! सूर्य का वाहन अश्व है, पर वह तुम्हे क्या देगा? तुम मुझसे अश्वरत्न माग रहे हो। पर मेरे खुद के बैठने के लिये गधा ही मिला है तो तुम्हे घोडा कैसे दे सकती हूँ।'

ठाकुर अपनी याचना पर लज्जित हो जाता है।

शिक्षा—अयोग्य स्थान पर याचना नही करना चाहिये। देव-देवी भी भाग्य और पुरुषार्थ से अधिक कुछ नही दे सकते है।

---

(५) सुखी दुःख लेन गयो

सुखी दुःख लेन गयो, सिंहासन बैठ्यो राय
लात देय ताको डार्यो, तभी छत परे है।
पुनः सिर देय थाप, मुकुट पड्यो है तल
तामे विष नाग पायो, हलाहल झरे है॥
तब खुश होय नृप, प्रकट यो भेद लख
गज पै बिठा के पहुंचायो निज घरे है।
पुण्योदय होय तब, बुरा कियां भलो होय
कोटि यत्न करो 'सूर्य' सर्व होत सिरे है॥६॥

पुण्यशाली परम सुखी था। उसे कभी दुःखानुभव नही हुआ था। उसके किशोर-हृदय मे दुःख का स्वाद लेने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने अपनी माता से दुःख पाने का उपाय पूछा। माँ ने कहा—'बेटा! तू पुण्यशाली है। तुझे जीवन के अन्तिम क्षण तक दुःख आने का नही है।'

बेटे के बहुत आग्रह करने पर माता ने कहा—'दुःख तुझे मिलने का है नही! परन्तु तू नही मानता है तो एक उपाय बताती हूँ। आज राजसभा मे जाना और राजा के मुकुट को उनके मस्तक से नीचे पटक देना। फिर तुम्हे दुःख मिलने का होगा तो मिल जाएगा।'

पुण्यशाली दन दनता हुआ राजा के समीप पहुँच गया। उसने राजा के मस्तक से मुकुट को दूर फेक दिया। सभासदों मे सन्नाटा छा गया। कुछ सैनिक छोकरे को पकडने दौड़े तो कुछ मुकुट उठाने गये। लोगो ने सोचा—छोकरे की मौत आ गई है। पुण्यशाली को पकडने से पहले ही मुकुट उठा लिया गया। मुकुट से निकलकर जमीन पर रेगते हुए एक जहरीले छोटे सर्प को सबने आश्चर्य से देखा। राजा का क्रोध न जाने कहाँ चला गया। उसने पुण्यशाली को पुरस्कार दिया।

जब उसने माँ से पूछा—'क्या दु ख यही है ?' तब वह हँस पडी। पुन. उसके आग्रह पर माता ने कहा—'अब लात मार कर राजा को ही सिंहासन से नीचे गिरा देना।'

वह दौडता हुआ आया और उसने राजा को सिंहासन के नीचे गिरा दिया। राजा दूर जा पडा और वह भी गति की तीव्रता के कारण आगे निकल गया। सब ओर सन्नाटा छा गया। क्षण भर मे सिंहासन के ऊपर की छत गिर पडी।

इस वार भी पुण्यशाली की इच्छा पूरी नही हुई। उसे राजा ने हाथी पर बिठाकर, बडे पुरस्कार के साथ उसके घर पहुँचाया।

शिक्षा—पुण्योदय होने पर उलटे कार्य भी सीधे होते है। अत. पुण्यशाली से ईर्ष्या नही करना चाहिये और पुण्यवान को भी अभिमानी नही बनना चाहिये।

---

(६) सोवन्न भाग्य करे (सवैया)

पारफस भेंट कीर कियो, तब—
शाह तिन्हें जमना महिं डार्यो।
'क्यो कर शाह ! नदी मधि डाल
हमीं तुमसे कर खोय बिगार्यो' ।।

लेकर लोह घसे निज मस्तक
सोवन यों कर शाह उचार्यो—
'सोवन भाग्य करे, कहा पारस ?'
'सूर्य' लिख्यो सु टरें नहि टार्यो' ।।७।।

एक शाह यमुना के तट पर बैठा हुआ था वह बड़ा मस्त और बेफिक्र जीव था। वह यमुना की तरङ्गो को एकटक देख रहा था। उस समय उधर से एक फकीर निकला। वह शाह की उदारता से प्रभावित था। उसने विचार किया कि यदि शाह आर्थिक चिन्ताओ से मुक्त हो ज.य तो इसकी उदारता की अबाध गति हो जाय।

फकीर शाह के पास आया। शाह ने फकीर की ओर देखा और उसे आदर दिया। फकीर ने अपनी झोली मे हाथ डाला। उसमे से एक पत्थर निकाला और शाह के हाथ मे उसे देकर बोला—'शाह! लो यह अमूल्य निधि! इससे तुम सभी आर्थिक चिन्ताओ से मुक्त हो जाओगे!

शाह ने उस प्रस्तर-खण्ड को यमुना मे फेक दिया यह दृश्य देखकर फकीर आह कर उठा—'वाह शाह! तुम यह क्या कर बैठे ?'

'क्यो ? क्या हुआ ? पत्थर का टुकडा ही तो था!'

'यह सामान्य पत्थर का टुकडा नही था। यह पारस पत्थर था। लोहे को सोना बना देने की इसमे विशेषता थी। परन्तु ऐ शाह! तुमने ऐसा अमूल्य पदार्थ नदी मे फेक दिया! वह मुझसे भी गया और तुमसे भी गया ?'—फकीर ने पश्चाताप के स्वर मे कहा।

शाह ने कहा—'अरे! आप फकीर होकर, इतनी फिक्र कर रहे हो! वह गया तो क्या हमारी तकदीर भी लुट गई ? वह पारस लोहे को क्या सोना करेगा ? यदि हमारे भाग्य मे सोना होगा तो यो ही सोना बन जाएगा!'—शाह ने यो कहकर, पास मे पडे हुए लोहे को अपने मस्तक पर घसा। उस समय फकीर आश्चर्य मे पड गया, जब उसने लोहे के टुकड़े को सोने मे बदला हुआ देखा।

शिक्षा—(१) भाग्यशाली को आर्थिक चिन्ताएँ नहीं सताती है। क्योंकि उसका यह दृढ विश्वास होता है कि—'लिख्यो मु टरे नहि टार्यो' अपना लिखा हुआ सौभाग्य टलने वाला नहीं है।

(२) जिसे भाग्य पर विश्वास होता है, वह तृष्णा को जीत लेता है।

(३) त्यागी नाम धराकर, परिग्रह के लिये चिन्तित होना अनुचित है।

---

(७) 'अरे ! यह लेत भूल्यो' (कवित्त)

ब्याह की सामग्री-काज, गाडी ले मुंबई जावे
देख ताको भाई-बंध, कहे दरसाय के।
अलग-अलग वस्तु, मंगाई सो लाय झट
आयके सभी को देवे, वस्तु को गिनाय के॥
नारी कहे'—आपणो, सामान पेले देओ मुझे'
'अरे ! यह लेत भूल्यो, सुध विसराय के'।
कहें 'सूर्यमुनि' ऐसे, परके प्रपंच पड़
निज काज करवे को, भूलो मूढ जाय के॥८॥

बम्बई के समीप किसी ग्राम की बात है। उस ग्राम के एक भाई के यहाँ विवाह का अवसर आ रहा था। उसे विवाह में काम आने वाली सामग्री खरीद कर लाना था। उस समय बैलगाडियों का प्रचलन था। उसने बम्बई से सामग्री लाने के लिये एक बैलगाडी तैयार की। भाई-बन्धुओं को इस बात का पता लगा तो किसी ने कहा—'आप हमारे लिये अमुक आभूषण ले आना। भूलना मत।' किसी ने कहा—'आप बैलगाडी तो ले ही जा रहे है। हमारे लिये एक मन अमुक वस्तु ले आना।' इस प्रकार उसके पास कई फरमाइशे आ गई और सभी ने कहा—देखो, भूलना मत। यह जरूर ले आना' और उसने भी यही कहा—'अरे ! मुझे क्या भुलक्कड समझ रखा है। आपकी वस्तु हाथो हाथ आ जायेगी।'

वह बम्बई गया। गाडी वस्तुओ से भर गई-इतना सामान खरीदा। वह घर आया। भाई-बन्धु उसकी राह देख रहे थे। गाडी आते ही सब इकट्ठे हो गये। सभी अपनी-अपनी वस्तुएँ माँगने लगे। वह भी सभी की वस्तुओ को सम्हाल-सम्हाल कर देने लगा। इधर उसकी पत्नी भी घर से बाहर आई। वह प्रतीक्षा करने लगी कि स्वामी अपना सामान भी उतारे। गाडी खाली होती जा रही थी। लोग अपना-अपना सामान ले जा रहे थे। अब गृह-स्वामिनी के धैर्य का बाँध टूट गया। वह जोर से बोली–'पहले अपना सामान तो उतार दो!' वह एक दम 'हे–हे'–करता हुआ बोला–'क्या तुमने भी कुछ सामान मगाया था?' पत्नी तुनक-कर बोली–'उघड़े मेरे करम! तो किस लिये गये थे बम्बई?' वह खिसियाना होकर बोला–'अरे यह तो मैं भूल ही गया। इन लोगो का सामान लेने मे ही मैं रह गया! अपना सामान तो कुछ लाया ही नही।'

स्त्री ने अपना सिर पीट लिया और वह बोली–'वाहजी! अच्छा किया! क्या कहने आपके?'

शिक्षा—(१) मनुष्य ससार के प्रपच मे पडकर, अपने आत्म-कार्य को करना भूल जाता है–'ऐसे · · जाये के!'

(२) मनुष्य दूसरे से बडप्पन पाने के लिये गौण कार्यों को महत्त्व दे देता है और मुख्य कार्य को भुला देता है।

(३) पहले आत्महित करना चाहिये। आत्महित का साधक-या अविरोधी परहित करना योग्य है। परन्तु आत्मभान को विस्मृत कराने वाला या आत्महित को नष्ट करने वाला परहित अनुचित है।

---

(८) मत आवन देय अँधारो (सवैया)

सासु कहे–'सुनरी? वधू यो घर–
मे मत आवन देय अँधारो'।
सास समायिक धार लही, तब–
साँझ पड़ी तमकार पसारो॥

दीप कियो न, लई लट हाथ मे
फोड़त वासण, सर्व संहारो।
'सूर्य' कहे जड़ सीखन मानत
हारत है समझावनहारो ।।९।।

नई-नवेली वहू घर मे आई। सासू ने सोचा कि अब इसे घर का काम सम्हला दूँ और मैं अपना समय धर्म-आराधना मे अधिक लगाऊँ। अत. वह धीरे-धीरे घर के काम का वोझ वहू पर डालती जा रही थी। वहू की वुद्धि कुछ जड थी। वह किसी वात को जल्दी नही समझ पाती थी।

एक दिन सायङ्काल के समय सासू ने कहा—'वहू! मै सामायिक करने जा रही हूँ। साँझ हो रही है। घर मे अधेरे को मत आने देना।' यह कहकर सासू चली गई। वहू सोचने लगी कि सासूजी ने कहा है—अधेरे को मत आने देना। तो अधेरा सासूजी की वात मानता होगा। सूर्यास्त हुआ। घर मे अधेरा हुआ। वहू ने अन्धेरे से कहा—'देखो जी, तुम घर में मत आओ!' पर अधेरा वढ रहा था। उसने डाँट भरी आवाज मे कहा—'अरे अन्धेरे! तुम सुनते नही हो! मेरे सासूजी का हुक्म है—तुम घर मे मत घुसो।' जव उसने अपनी वात का कुछ प्रभाव होते हुए नही देखा, तव उसने अधेरे से हाथ जोडकर, नमस्कार किया और विविध भाँति प्रार्थना की, कि 'हे अधेरे देव! घर मे मत आओ।' पर अधेरे ने एक न सुनी। घर मे अन्धेरा छा गया था। तव वहू को वहुत क्रोध आया। उसने सोचा कि यह दुष्ट मार खाये बिना घर मे वाहर नही निकलेगा। उसने एक मजवूत लट्ठ लिया और वह अन्धेरे को मारने को पील पडी। लेकिन अन्धेरे का कुछ नही विगडा और घर मे तोड-फोड हो गई। वह पसीने मे तर होकर हारकर वैठ गई।

सासू घर आई। उसने घर मे अन्धेरा देखा तो वहू को पुकार कर कहा—'वहू! तुझे कहा था न, कि-घर मे अन्धेरे को मत घुसने देना।' वहू

ने कहा—'मैं क्या करूँ ? इसने मेरी एक न मानी।' और उसने सारा इतिहास सुना दिया। सासू को बात सुनकर हँसी भी आई और दुःख भी हुआ। उसने दियासलाई लेकर दिया जलाया और कहा—'देख ! अन्धेरे को ऐसे भगाया जाता है !'

बहू ने खिसियानी होकर कहा—'तो, आपने पहले से ही ऐसा क्यों नहीं कहा ?'

शिक्षा—(१) जड बुद्धिवाले मनुष्यो को समझाना बहुत ही कठिन है। उन्हे स्पष्ट ही समझाना पडता है।

(२) अज्ञान अन्धेरे को हृदय रूपी घर से भगाने के लिये सद्ज्ञान रूपी ज्योति जलाना चाहिये।

---

(१) ऐसे मनुष्य को हम नामर्द कहे (कवित्त)

उपदेश ब्रह्मचर्य का चला सभा के बीच,—
एक मूढ़ कहे—'यांको अर्थ दो बताय के'।
'सुन्दर-स्वरूप त्रिया देख बुरी दृष्टि न हो
वैरागी वही है सच्चा, इच्छा दे जलाय के'॥
मूर्ख कहे—'ठीक जाना, ऐसे मनुष्य को हम
हीजडा नामर्द कहे, भेद अब पाय के'।
कहे 'सूर्यमुनि' ऐसे शठ को सुनावे ज्ञान,
पण्डित करोर मिले अफल गिनाय के॥१०॥

धनदत्त को उसकी माँ सदैव कहा करती थी—'बेटा ! धर्म की ओर तेरा ध्यान ही नही है। कुछ न कुछ धर्म की ओर मन रख।' धनदत्त बचपन से कुसग मे रमता रहता था। उसकी वैषयिक वृत्तियाँ प्रबल थी।

वह ऐन्द्रियिक सुखों कों ही परम सुख मानता था। उसे धार्मिक लोगो का उपवास करना-वृथा भूखे मरना लगता था । वह संयम को मूढता, धर्म-आराधना को ढोग, परलोक को ठगों की कल्पना आदि मानता था। परन्तु वह माँ के सामने भूलकर भी इन विचारो को प्रकट नही करता था।

एक दिन माँ ने कहा—'कुछ धर्माचरण नही करते हो तो कम से कम शास्त्र तो सुना करो।' माँ के बार-बार कहने से प्रेरित होकर धनदत्त, अभी ही उसके नगर मे पधारे हुए मुनि महात्मा के प्रवचन मे पहुँच गया। जब वह धर्मसभा मे बैठा, तब अनेक लोगो की दृष्टि उसपर गई। इस स्थिति से वह मन ही मन कुढ गया। उसका मन प्रवचन मे नही लग रहा था। वह उकता रहा था। लेकिन अब एकदम उठकर जा भी नहीं सकता था।

मुनि महात्मा प्रवचन-पटु थे। लोक-रजन करना मात्र ही उनका ध्येय नही था। वे अपने प्रवचनो के माध्यम से लोक-चेतना मे उदात्त तत्त्वों को भरना चाहते थे। अत वे दया, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, सन्तोष, क्षमा, सरलता आदि शुभ भावो पर अत्यधिक जोर देते थे। आज वे ब्रह्मचर्य के विपय मे उपदेश दे रहे थे। थोड़ी देर तक धनदत्त सुनता रहा। फिर वह खडा हुआ और मुनि महात्मा से बोला—'मुझे एक प्रश्न पूछना है ?' सभी लोगो की दृष्टि उसपर जम गई। मुनि महात्मा ने सहजता से कहा—'देवानुप्रिय ! पूछ सकते हो।'

धनदत्त ने पूछा—'ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ?' मुनि—'वीर्य की रक्षा करना ब्रह्मचर्य है।' धनदत्त—'मै नही समझा।' मुनि-'मैथुन सेवन नही करना।' धनदत्त—'क्या मतलब ? जरा स्पष्ट समझाओ।' मुनि—'रूपवती स्त्री या सुरूपवान पुरुष को देखकर पुरुष या स्त्री की चित्त को चलित न होने देने वाली अवस्था।' धनदत्त तडाक से बोला—'अच्छा, अब समझा। इसे हम हीजड़ापन-नामर्दानिगी कहते है। ये शास्त्र हमें नपुंसकता सिखाते

है। नही सुनने हमे ऐसे शास्त्र।' वह पैर वजाता हुआ चला गया।

लोग अवाक् देखते रह गये ।

शिक्षा—(१) उपदेश पूर्वाग्रह से मुक्त होकर सुनने पर ही असर करता है। 'ऐसे शठ''' ''' गिनाय के' अर्थात् ऐसे पूर्व-व्युद्ग्राही को करोड़ों पण्डित भी मिलकर, ज्ञान सुनाये तो वह व्यर्थ ही होता है।

(२) नपुंसकता और ब्रह्मचर्य में अन्तर है। नपुंसकता शारीरिक असमर्थता है। इसमे चित्त के विकारो को क्षीण करने की वृत्ति नही रहती है, जबकि निर्विकार चित्त या चित्त की वैकारिक वृत्तियों को क्षीण करने की स्थिति का नाम ब्रह्मचर्य है।



(१०) यों थी मेरे बकरे की दाढ़ी

एक वक्ता श्रोताओं को सुनाता था उपदेश,
एक नर सुनकर रोने लगा जोर से।

वक्ता व लोग समझे—'पूरन वैराग्य छाया'
पूछे लोग सभी मिल—'रोते कैसे ढोर-से' ॥

'जैसी दाढ़ी वक्ता की है, यों थी मेरे बकरे की,
मरा हुआ याद आया, रोता तांकी ओर से'।

सुनके लज्जित हुए, कहै 'सूर्यमुनि' ऐसे—
कहा होवे काज ? श्रोता यो मिले करोर से ।।११।।

एक कथावाचक पण्डितजी एक गाँव में कथा करने आये। पण्डितजी का व्यक्तित्व बडा प्रभावशाली था। वे वडे लटके-झटके से कथा करते थे। जब वे जोश मे आकर कथा करते थे, तब उनके हाथो की मुद्राएँ, आँखो की पुतलियो के हाव-भाव और चमकती हुई लम्बी, कुछ भूरी कुछ काली

दाढी का हिलना-ये सब मिलकर एक रोचक दृश्य खड़ा कर देते थे। उनके श्रोताओं की संख्या प्रतिदिन बढ रही थी।

भक्ति का प्रभावशाली उपदेश चल रहा था। श्रोता भावविभोर हो रहे थे। एक श्रोता पण्डितजी के ठीक सामने बैठा हुआ था।

वह पंडितजी की ओर एकटक देख रहा था। मानो वह आंख और कान दोनों ही इन्द्रियों से पंडितजी का उपदेश सुन रहा था। वह अचानक ही रोने लगा। पहले धीमे-धीमे, फिर जोर-जोर से। पहले पास-पडोस के लोगो को पता लगा और फिर सभी लोगो को मालूम पड गया। उपदेश की अस्खलित धारा मे बाधा उपस्थित हो गई। पंडितजी और लोगों ने समझा कि यह कोई भावुक श्रोता है। भक्ति के भावावेग मे रुदन कर रहा है। उपदेश बंद हो गया, परन्तु उसका रोना बद नही हुआ। लोग उसके आस-पास इकट्ठे हो गये। लोग उसे शान्त करने का प्रयत्न करने लगे।

एक श्रोता ने उससे पूछा—'भाई! अब तो शान्त होओ। रोते क्यो हो?' वह रोता हुआ बोला—'क्या करूँ? पण्डितजी ने मेरा मर्म छू दिया।' लोगो ने समझा कि इस पर पण्डितजी के उपदेश का बहुत गहरा असर हुआ है। श्रोता ने कहा—'पण्डितजी का उपदेश ऐसा मर्मस्पर्शी ही है।' वह अपने आँसू पोछते हुए बोला—'नही जी, ऐसी बात नही है? मुझे पण्डितजी की दाढी को हिलती हुई देखकर एक बात याद आ गई?' लोग चौक गये। पण्डितजी की हिलती हुई दाढी और भक्ति-भावना में क्या सम्बन्ध है? पण्डितजी को भी अपनी दाढी की बात सुनकर, कुछ आश्चर्य हुआ। वह सबकी उत्सुकता का केन्द्र हो गया। वह कह रहा था—'मेरा एक बकरा था·······' लोगों का आश्चर्य और बढ गया। वे सुन रहे थे—'जैसी पण्डितजी की दाढी है वैसी ही मेरे बकरे की दाढी थी। उसकी दाढी भी वैसी ही हिला करती थी, जैसी उपदेश देते समय पण्डितजी की दाढी हिला करती है। कुछ दिन हुए वह मर गया। आज पण्डितजी की दाढी को हिलते हुए देखकर, मेरे उसी बकरे की मुझे याद आ गई। इसलिये रोना आ गया।'

पण्डितजी लज्जित हो गये। लोग भी मुसकाते हुए वहाँ से बिखर गये।

शिक्षा—(१) 'ऐसे……करोर से' अर्थात् अयोग्य श्रोता को उपदेश सुनाने से कुछ भी लाभ नही होता है ?

(२) उपदेश सुनते हुए मनको अन्यत्र नही भटकने देना चाहिये।

---

(११) भाव न्यारे-न्यारे हैं

आम देख दोय मित्र, पत्थर से फल पाड़े,
खावे तबै उर-भाव, प्रकट उचारे हैं।
'देखो यह वृक्ष गुणी, मारे यांको फल देत
बुराई पै उपकार सज्जन विचारे हैं' ॥
दूजो कहे—'अरे ! यह दुष्ट है निपट अति,
मारे तब फल देत, औगुन अपारे हैं'।
कहे 'सूर्यमुनि' एक काज के करण हारे,
सज्जन दुर्जन के यो भाव न्यारे-न्यारे है ॥१२॥

दो मित्र थे। वे घूमने के लिये गये। वे अपने जीवन के कडवे-मीठे अनुभव एक-दूसरे को सुना रहे थे।

घूमते हुए वे एक आम के वृक्ष के नीचे पहुँच गये। आमके फलने का मौसम था। अत. उस आम्रवृक्ष पर भी फल लग रहे थे। उस पर इतने फल लगे थे कि दृष्टि में फल ही फल आते थे—पत्ते नही। फलो के पकने का समय आ गया था। उन आम्रफलो से मोहक सुगन्ध निकल रही थी। उन दोनो का मन फल खाने का हो गया। लिये हाथ मे पत्थर और फेंके

उन्हे आम पर। आम्रफल टपा-टप भूमि पर गिर पडे। उन्होने आम्रफल बीने और वे फल खाने लगे। उन्हे फलों का स्वाद आनन्द दे रहा था।

एक बोला—'कितने स्वादिष्ट आम है! देखो, यह वृक्ष भी कितना गुणी है? कितना उपकार करता है! थके हुए और धूप से तपे हुए व्यक्तियो को शान्ति प्रदान करता है। इससे भी बडी है इसकी सज्जनता! हम इसे मारते है पत्थर और यह हमे देता है सुस्वादु फल। अहा! सज्जन के सिवाय कौन ऐसा कर सकता है? बुराई का वदला भलाई से कौन दे सकता है?'

दूसरा मुँह विचकाकर बोला—'ऊँह! क्या है इसमे वड़प्पन? क्या है सज्जनता? अरे! यह तो दुप्ट है! मारने पर ही फल देता है! इसकी प्रकृति ही ऐसी है! औगुन की खान है यह! तभी तो झूडे जाते हैं—ये वृक्ष! तुम इनके वड़े गुणगान कर रहे हो! गुणगान करने जैसा इनमे है ही क्या?'

पहला दूसरे के मुख की ओर ताकता ही रह गया।

सच है, जैसी दृष्टि होती है, वैसे ही भाव होते है एक ही कार्य के विषय मे भिन्न-भिन्न दृष्टि वालो के भाव भिन्न-भिन्न होते है।

शिक्षा—(१) दृष्टि के भेद को समझकर, असम्यग् दृष्टि का परित्याग करना चाहिये और सम्यग् दृष्टि को धारण करना चाहिये।

(२) 'एकही..........न्यारे है—'अर्थात् सज्जन और दुर्जन एक ही कार्य करते हो, परन्तु उनके भाव भिन्न-भिन्न होते है। एक गुणग्राही होता है तो दूसरा दुर्गुणग्राही।

---

(१२) एक तन देख⋯भाव न्यारे-न्यारे हैं

मृत वेश्या देख कामी, तब–'कैसी सुन्दरी ये ?
भोग योग्य हती'–'ऐसी हृदय विचारे है।
सियाल विचारे देख–'हृष्ट पुष्ट है ये महा,
भक्ष काज मिला तन स्वादिष्ट अपारे है' ॥
मुनि देख कहे–'याने, जप-तप कियो नाहीं
अफल गमायो सब, जनम अकारे हैं'।
कहे 'सूर्यमुनि' ऐसे, एक तन देखकर,
सब ही के भये उर-भाव न्यारे-न्यारे है ॥१३॥

एक अनुपम सुन्दर स्त्री कहीं जा रही थी। अकस्मात् ही उसकी हृदय गति रुक जाने के कारण वह रास्ते मे ही मर गई। उसका शव मार्ग पर पड़ा था। उधर से इक्के-दुक्के मनुष्य गुजर रहे थे।

एक व्यक्ति उस शव के समीप आया। वह था भोगीभ्रमर। उस मृत स्त्री के सौन्दर्य से वह आकर्षित हो गया और वह एकटक उस शव को देखने लगा। उसके हृदय मे काम-विकार जागृत हो गया। वह सोच रहा था—'कितनी कमनीय और मोहक है इस कामिनी की देह! विरली ही स्त्री इतनी सुन्दर होती है! इसका सौन्दर्य तो उपभोग के योग्य था। पर हा! यह तो मर गई है?' वह रस-लोलुप भ्रमर आगे बढ गया।

एक सियार मास की गन्ध का अनुसरण करता हुआ वहाँ आ गया। वह उस शव का भक्षण करने लगा। वह सोचने लगा—'अहा! कितनी पुष्ट है, यह देह? कितना मास भरा है इसमे! और मांस कितना स्वादिष्ट है? यह मेरे लिये ही भक्ष्य है। इस पर एक मात्र मेरा ही अधिकार है!'

उसी समय उधर से एक मुनि निकले। उनकी दृष्टि मे भी वह शव आया। वे सोचने लगे—'प्राण निकल जाने पर भी यह शरीर कितना सुन्दर दिखाई दे रहा है? किसी विशिष्ट पुण्य के उदय से यह सौन्दर्य

मिला ! परन्तु इस पुण्य के फल का कितना दुरुपयोग हुआ होगा ? इससे कितना पापार्जन हुआ होगा ? लगता है, इस शरीर के स्वामी जीव ने अपार पुण्य से इस मानव तन से कुछ भी जप-तप नही किया है ? राक्षस वनकर अन्य के बल-वीर्य को नष्ट किया है ! अकार्य मे ही जन्म विताया। यह नरभव निष्फल चला गया। रे जम्बुक ! इस अपवित्र शरीर को खाकर, क्यो पाप कमा रहा है ?'

इस प्रकार एक ही पदार्थ को, विभिन्न दृष्टि वाले जीव विभिन्न रूप मे देखते है।

एक एव पदार्थस्तु, त्रिधा भवति वीक्षितः।
कामिनी कुणपं मांसं, कामिभिः योगिभिः श्वभिः ॥

—एक ही पदार्थ दृष्टि-भेद से तीन प्रकार का हो जाता है। जैसे एक सुन्दरी का शरीर कामी की दृष्टि से कमनीय कामिनी रूप मे, योगी की दृष्टि मे राक्षस रूप मे और श्वापद-हिसक पशुओ की दृष्टि में मास रूप मे दिखाई दिया।

शिक्षा—(१) दृष्टि-भेद के अनुसार पदार्थ मे भेद हो जाता है। अत. किस दृष्टि से कौन-सी बात कही गई है—यह समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

(२) जिसके हृदय मे जैसा भाव होता है, उसे पदार्थ उसी रूपमें दिखाइ देते है। अत. सत्यदृष्टा वनने के लिये अपने भावो की विकृति को दूर करना चाहिये।

—.— —

(१३) परलोक तणो नहि खौफ (सवैया)

नर एक के बाल सफेद भए,
तब मित्र ने आय कहा हितकारी–
'सब बाल तुम्हारे सफेद बने,
कुछ कीजिये धर्म सुचित्त-विचारी'।
कहता-'इसकी परवाह नहीं'
दिल काला तो ऐसा बना हरबारी'
'मुनिसूर्य' कहे परलोक तणो
नहि खौफ जिसे कहा सीख उचारी ॥१४॥

एक सेठ के देह पर यौवन की विदाई के–वृद्धावस्था के आगमन के चिह्न प्रकट हो रहे थे। आँखो की ज्योति मन्द हो गई थी। कानो से कुछ कम सुनाई देने लगा था। सिर के बाल सफेद होते जा रहे थे। दुर्वलता घेरा डाल रही थी। परन्तु सेठ की तृष्णा दिन-दूनी और रात-चौगुनी होती जा रही थी। उनकी वृत्तियो से घर के लोग भी परेशान थे।

उनका एक बचपन का मित्र था। उसके शरीर पर भी बुढ़ापे ने हमला बोल दिया था। परन्तु उसने—'शक्ति रहते हुए धर्म-कार्य कर लेना चाहिये' यह सोचकर, अपनी वृत्तियो को धर्म की ओर मोड दिया था। उसे अपने मित्र की ससार से चिपटने की वृत्ति अच्छी नही लगती थी। अत वह उसे कभी-कभी धर्म की आराधना करने के लिये प्रेरणा देता रहता था।

एक दिन वह बालमित्र सेठ के यहाँ आया। वह सेठ के पास बैठा था और सेठ उसके सामने अपने घर के रोने रो रहा था। सेठ ने कहा—'क्या करूँ मित्र! मुझे जरा भी फुरसत नही है। इन छोकरो मे तो न जाने कब अक्कल आयेगी! मेरा जरा-सा ध्यान

चुका नही कि ये कुछ न कुछ नुक्सान कर बैठते है। देखो- रूई की गाँठे बँधवाई थी। उन्होने ध्यान नही रखा। उन्हे बेचा नही और कल भाव उतर गये। ये गेहू-चने की खरीदी मे भी ध्यान नही रखते है....' मित्र ये बाते सुनते-सुनते अकुला गया था। उससे नही रहा गया। वह बोला—'अब यह चिन्ता कहाँ तक करते रहोगे ?' सेठ बोले—'यह तो जहाँ तक जीना, वहाँ तक सीना।' मित्र ने कहा—'अब तो जरा आ रही है। कुछ तो समझो !' सेठ ने ढीठता से कहा—'जरा भी आयेगी और सब आयेगे। इससे क्या काम करना भी छोड दे !' मित्र करुणार्द्र स्वर मे बोला– सिर के बाल तो सब सफेद हो गये है। ये क्या कह रहे हैं, जरा सुनो तो सही ? अरे ! ये पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि इन नवयुवको की बातो मे टाँग अडाना छोडो और अपने चित्त को शुभ विचारो से उत्तम बनाकर, धर्म की आराधना करो।' सेठ ने चिढकर कहा—'भले हो गये सिर के बाल सफेद ! मुझे इसकी परवाह नही है। मैने तो दिल को ऐसा काला बना रखा है कि उसके सफेद होने की गुंजाइश ही नही है ...'मित्र उसके सामने देखता ही रह गया।

शिक्षा—(१) आत्मा को परलोक का भय होना ही चाहिये। क्योकि परलोक के बिगडने के भय से इहलोक का बिगाड रुकता है।

(२) जिससे परलोक का भय नही रहता है। उसका हृदय प्राय काला ही रहता है। ऐसे व्यक्ति पर धर्मोपदेश का कुछ भी प्रभाव नही होता है।

(३) मानव को अपने शारीरिक परिवर्तन के साथ ही अपनी वृत्तियों को मोड देना चाहिये। जैसे कि बचपन की वृत्तियाँ युवावस्था मे अनुचित होती है। वैसे ही युवावस्था की वृत्तियाँ वृद्धावस्था मे अनुचित होती है।



(१४) रोग होय सब साफ जो (कवित्त)

बादशाह हकीम से पूछे–'औषधि कौ एक
बताओ करके मया खता होय साफ जो।'
'फिकर की जड़ और आदर के पत्ते लेय,
गुप्त स्थान बैठ कीजे, बेड़ा ईश-जाप जो ।।
रहम की हरड़े मि ाई दूजी प्रीत, हृदै—
उखल, विचार दस्ता, हरें त्रय ताप जो।
सांझ सुबै दोनों टेम, साधन करेगा 'सूर्य'
खुदा चाहे तेरा रोग, होय सब साफ जो' ।।१५।।

एक था वहुत वडा बादशाह। अपनी वादशाहत को जमाने के लिये उसने अच्छे बुरे सभी प्रकार के कार्य किये। उसकी उम्र ढलने लगी। अब उसे एक-एक करके, अपने अत्याचार-दुराचार याद आने लगे। उसकी रूह कॉपने लगी।

उसका एक खास हकीम था। उसकी दवा अचूक थी। उसने हकीमजी को बुलाया और उससे एकान्त मे कहने लगे—'हकीमजी ! मैंने खुदा की वहुत खता की है। मुझे कोई ऐसी दवा वताओ कि जिसको खाने से मेरी सारी खता माफ हो जाय।'

हकीम—'ऐसी कोई दवा नही। दवा तो जिस्म के रोगो को मिटाती है, रूहानी रोगो को नही।'

वादशाह उदास होकर वोला—'अच्छा तो ऐसी कोई दवा नही है ! आह ! मैं अपनी वदी को साथ लेकर ही जाऊँगा !' वादशाह ने दीर्घ नि श्वास डाला।

हकीमजी वोले—'हजूर ! मुझे एक दवा ध्यान मे आई है। लेकिन वह दवा आपको ही वनानी होगी।'

बादशाह ने उतावल से कहा—'कहो न हकीमजी !'

हकीम—'आप फिक्र (पाप से बचने की चिन्ता) की जड लो। आदर (ईश्वर का बहुमान) के पत्ते डालो। खुदा की खिदमत–ईश्वर का जाप रूप बेहडे भी चाहिये। रहम (दया) की हरड़े और प्रीतिमिठास दुगनी मिलाओ। एकान्त मे बैठकर हृदय रूपी ऊखल मे विचार रूपी दस्ते से दवा को कूटो। फिर साझ और सुबह दोनो समय इस दवा का सेवन करो, तो खुदा चाहेगा तो तुम्हारे सभी रूहानी रोग नष्ट हो जाएगे।'

बादशाह खुश होकर बोला—'वाह ! हकीमजी ! वाह !

शिक्षा—'(१) आत्मिक रोग मिटाने के लिये बाहर की औपधिया काम मे नही आती हैं। उसके लिये तो आध्यात्मिक औषधि ही चाहिये।

(२) चिकित्सक को आध्यात्मिक ज्ञान भी होना चाहिये। क्योकि रोगो का मूल सिर्फ शरीर मे ही नही होता है, मन और आत्मा मे भी होता है।



(१५) सिंह किसो जजमान

विप्र चल्यो धन काज, बचावे सिंह से हस,
बणाइ गुरु, दक्षिणा दई, पहुंचायो है।
हंस गयो मानसर, काग भयो परधान,
नारी भेज्यो विप्र फेर जंगल में आयो है।
घणो भरमायो काग, सिंह पण पायो थाग
'सिंह किसो जजमान'–विप्र को सुनायो है।
द्विज शिक्षा सुन डर्यो, आयो है अपने गेह,
'सूर्य' भले भलो भाव, बुरे बुरो भायो है ॥१६॥

एक ब्राह्मण दरिद्रता से बहुत ही पीडित था। पुत्र-पुत्रियाँ भी थे। पुत्रियाँ बडी हो गई थी। अत ब्राह्मण पत्नी के बार-बार कहने के कारण धन कमाने के लिये चला। वह एक जगल से होकर गुजर रहा था।

उस जगल मे एक सिह रहता था। एक हस अपनी जाति के युवा हंसो के व्यंग्य-बाणो से नाराज होकर, मान सरोवर से उस जंगल में आ गया था। पक्षिराज हंस और मृगराज सिंह मे आपस मे मैत्री हो गई। हस और सिह दोनो परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। हस की दृष्टि जनेऊधारी ब्राह्मण पर पडी। हस ने सोचा—'यह ब्राह्मण इधर आ रहा है। बेचारा यो ही मारा जाएगा। यह बच जाय-ऐसा कुछ करना चाहिये।'

वह उडकर ब्राह्मण के समीप आया और बोला—'डरना मत। साहस रखना' फिर उसके इस प्रकार एकदम उडकर आने के कारण को जानने के लिये उधर आते हुए सिंह को सुनाई दे-इस प्रकार हस उस ब्राह्मण से बोला—'पधारो, गुरुदेव' मैं आपको प्रणाम करता हू !' फिर वह सिंह से बोला—'ये मेरे गुरुदेव हैं। आपने गुरु बनाये है कि नही ?' सिंह बोला—'नही ! पर मित्र ! अब बना लूँगा। तुम्हारे गुरु सो मेरे गुरु।'

हस के कहने पर ब्राह्मण ने सिह को गुरु-मत्र सुनाया फिर हस ने सिह से कहा—'अब गुरुजी को दक्षिणा देना है।' सिह ब्राह्मण को अपनी गुफा मे ले गया। वहाँ पहले मारे हुए मनुष्यो के ढेर सारे आभूषण पडे थे। ब्राह्मण मन ही मन मे घवरा रहा था। परन्तु सिंह के कहने से उससे रत्नजटित स्वर्णाभूषण जितने लिये जा सकते थे उतने लिये और फिर वह वहाँ से विदा हो गया। सिह और हस उसे कुछ दूर तक पहुँचाने गये।

कुछ दिन वाद मान-सरोवर से कुछ दूत आये और हंस को अपने निवास-स्थल पर चलने के लिये राजी कर लिया। सिह से

करे वाक्-युद्ध महा, आने दे न गाम मांहि
संख्या-बंद गांव-बार पहुंचाने आय के' ।।१७।।

तीर्थ यात्रियों की एक टोली तीर्थ-यात्रा करने के लिये जा रही थी।

एक कुत्ते ने सोचा मैं भी तीर्थ-यात्रा करने के लिये जाऊँ। वह अपने सगे-सनेहियो से मिलकर, तीर्थ यात्रा के लिये चल पडा।

जब वह तीर्थ यात्रा से लौटा, तब उसके सगे-सम्बन्धियों ने उसका बडा स्वागत किया और सब उसे घेर कर उसके पास बैठ गये और तीर्थ यात्रा के अनुभव पूछने लगे। वह भी आनन्द में मग्न होकर तीर्थयात्रा के संस्मरण सुनाने लगा।

एक ने पूछा—'आपने कहाँ-कहाँ की यात्रा की ?'
यात्री कुत्ता—'मैंने चारो धाम की यात्रा की ?'
दूसरे ने कहा—'कुछ हमे भी तो हाल सुनाओ ?'

यात्री कुत्ता—'देखो ! श्रीनाथजी के तो ठाठ ही निराले हैं। वहाँ जो भोग लगता है, वैसा भोग मैंने कही नही देखा। वहाँ का भोग मैंने छककर खाया। मथुरा के तो पैडे ही न्यारे है। वृन्दावन-गौकुल मे भी खूब आनन्द रहा। काशी तो शिवजी की नगरी ही ठहरी। वहाँ के आनन्द का तो पूछना ही क्या ? पुरी का दृश्य तो आँखो मे अभी तक रम रहा है और रामेश्वर, द्वारका आदि तीर्थों मे मैंने बहुत ही आनन्द पाया है। यो बहुत ही मौज उडाई है मैंने ! परन्तु....... क्या कहू !'

सभी बड़े उत्सुक थे। सभी का मन हो रहा था कि हम भी तीर्थयात्रा के लिये जाये। पर यात्री कुत्ते के 'परन्तु' शब्द पर वे चौंके और एक साथ बोल पडे—'परन्तु क्या ?'

यात्री कुत्ता खेद से बोला—'अरे भाई ! क्या कहू। अपने जाति-भाइयों की ओर से मैंने बहुत दु:ख पाया है !'

सब कुत्ते—'तो तीर्थवासी जाति-भाई इतने बुरे है !'

यात्री कुत्ता—'अरे ! कुछ मत पूछो ! गाँव-गाँव मे जाति भाई मुझसे लड़ते। बडा परेशान करते। काटते वाक्-युद्ध करते। मुझे देखकर, बहुत से इकट्ठे हो जाते और मुझे गाँव के बाहर तक ठेल देते.......' यह कहते-कहते उसके मुख पर पीडा के भाव तैरने लगे।

सब कुत्तों का यात्रा पर जाने का उत्साह मर गया।

शिक्षा—व्यक्ति का स्वभाव अच्छे स्थान पर रहते हुए भी बदलता नही है तो उसका अच्छे स्थान पर रहना वृथा है। दूसरे, अपने स्व-जातीय बन्धुओ को परेशान नही करना चाहिये।



(१७) यश सुन फोगट फुलावे

महा महिनत कर, काग एक रोटी पाई,
खुशी हो एकान्त जाय रोटी तब खावे है।
एक लोमड़ी यो देख, काग पास आय कहे—
'आपके समान और राग नहि गावे है' ॥
अपनी कीरत सुन, राग को आलाप कियो,
मुख से पड़ी है रोटी, लोमड़ी उठावे है।
कहे 'सूर्य' ऐसे मूढ, गाँठ को गमावे द्रव्य,
आप-यश सुन मन फोगट फुलावे है ॥१८॥

एक मकान के प्राङ्गण मे पुरुष वर्ग भोजन कर रहा था रसोई घर से एक बालक भोजन परोसने आता था।

एक कौआ कभी से इधर-उधर ताक रहा था। पर उसे अभी तक खाने के लिये कुछ भी नही मिला था। उसकी दृष्टि बालक पर

विदा होकर हंस अपने स्थान पर चला गया । सिंह उदास रहने लगा । हंस का स्थान कौए ने लिया । कौआ सिंह का मनोरञ्जन करता था ।

उधर ब्राह्मण धन लेकर घर गया । उसकी पत्नी धन देखकर बडी खुशी हुई । खुले हाथ से धन खर्च होने लगा । कुछ ही दिन मे धन खत्म हो गया ।

पत्नी अब बार-बार कहने लगी–'जाओ, पहले जिस जजमान के घर गये थे, वहाँ फिर जाओ ।' ब्राह्मण कहता—'ज्यादा लोभ मत करो । उस जजनाम के घर जाना कोई सरल काम नही है ।' आखिर पत्नी के हठाग्रह के कारण ब्राह्मण उस जगल की ओर रवाना हुआ ।

गोल-मटोल ब्राह्मण को आते हुए देखकर, कौए ने सिह से कहा-'वनराज ! बहुत बढिया शिकार आ रहा है ।' जब ब्राह्मण नजदीक आया, तब सिहने उसे पहचान लिया । वह बोला—'यह शिकार नही हैं । ये तो मेरे गुरुदेव है ।' काक बोला–'वाह ! कैसी बात कर रहे हैं आप ! हम तो है जगल के पशु-पक्षी ? हमारे कैसे गुरु ? यह ढोग तो मनुष्यो मे ही रहने दे । ऐसा अच्छा शिकार हाथ लग रहा है । इसे यो ही छोड देना अच्छा नही है ।' सिह ने दृढता से कहा—'नही, भाई ! नही । ऐसा नही होगा ।' कौए को सिह की यह बात अच्छी नही लगी । पर वह सिह से सम्मत होता हुआ बोला—'अच्छा तो फिर गुरुजी का स्वागत करना चाहिये !' सिह बोला—'हाँ ! भाई करना ही चाहिए !' काक कौतुक से बोला—'क्या-क्या करेगे आप स्वागत मे ?' सिह ने कहा—'प्रणाम करूँगा । चरणामृत लूँगा ओर दक्षिणा दूँगा !' कौआ—'चरणामृत लेने से क्या होता है ?' सिंह—'अपना शरीर पवित्र होता है !' कौआ मुस्काता हुआ बोला—'यह बात तो बहुत अच्छी है ! गुरुजी के चरण के स्पर्श मात्र से जल कितना पवित्र हो जाता है ? तो गुरुजी का शरीर कितना पवित्र होगा ?' सिंह—'हाँ ! भैया !' काक–'गुरुजी का चरणामृत पान करने से देह पवित्र होता है तो पूरे के पूरे गुरुजी को

ही पेट में रख लेने से शरीर कितना पवित्र हो जाएगा !' सिंह अनायास बोल उठा—'हाँ ! ऐसी बात है !' सिंह के मुँह मे लार आ गई और कौआ भी प्रसन्न हो गया। तबतक ब्राह्मण समीप आ गया था। उसने उनकी बात सुनी और उसके छक्के छूट गये। वह थर-थर काँपने लगा।

सिंह को दया आ गई। उसने ब्राह्मण से कहा—'ब्राह्मण देवता ! यहाँ क्यो आये हो ! हंसराज तो मान सरोवर चले गये हैं। अब हमारे मंत्री हैं—काकराज। यदि अपना क्षेमकुशल चाहते हो तो यहाँ से लौट जाओ। सिंह क्या किसी का जजमान हो सकता है ?—

हंसा तो सरवर गये, काक भये परधान।
विप्र ! घर जाओ आपणे, सिंह किसा जजमान' ॥

ब्राह्मण सिर पर पाँव रखकर वहाँ से भागा ! और काकराज मन ही मन मे नाराज हो गये।

शिक्षा—(१) सज्जन मनुष्य भली बात ही सोचता है और भली राय देता है तो दुर्जन मनुष्य बुरी बात सोचता है और बुरी राय देता है।

(२) अपनी सद्वृत्तियाँ अपने-पराये के लिये हितकर होती है तो दुर्वृत्तियाँ अहितकर।

(३) मनुष्य को सद्भाव ही धारण करना चाहिये।



(१६) तीर्थ कर आयो श्वान

तीर्थ कर आयो श्वान, पूछे सब संगे मिल—
'तीर्थ के हाल सब ही कहो दरसाय के।
'मथुरा-श्रीनाथ-काशी-वृन्दावन-गोकुल में
खूब माल खायो मन आनन्द मनाय के ॥
अरे भाई ! मौज मैं उड़ाई 'सूर्य' कहे किन्तु
जाति केरो दुःख देख्यो गाम-गाम जाय के।

करे वाक्–युद्ध महा, आने दे न गाम मांहि
संख्या-बंद गांव-वार पहुंचाने आय के' ।।१७।।

तीर्थ यात्रियों की एक टोली तीर्थ-यात्रा करने के लिये जा रही थी ।

एक कुत्ते ने सोचा मै भी तीर्थ-यात्रा करने के लिये जाऊँ । वह अपने सगे-सनेहियो से मिलकर, तीर्थ यात्रा के लिये चल पडा ।

जब वह तीर्थ यात्रा से लौटा, तव उसके सगे-सम्वन्धियो ने उसका वडा स्वागत किया और सब उसे घेर कर उसके पास बैठ गये और तीर्थ यात्रा के अनुभव पूछने लगे । वह भी आनन्द में मग्न होकर तीर्थयात्रा के सस्मरण सुनाने लगा ।

एक ने पूछा—'आपने कहाँ-कहाँ की यात्रा की ?'
यात्री कुत्ता–'मैंने चारो धाम की यात्रा की ?'
दूसरे ने कहा–'कुछ हमे भी तो हाल सुनाओ ?'

यात्री कुत्ता–'देखो ! श्रीनाथजी के तो ठाठ ही निराले है । वहाँ जो भोग लगता है, वैसा भोग मैंने कही नही देखा । वहाँ का भोग मैंने छककर खाया । मथुरा के तो पैडे ही न्यारे है । वृन्दावन-गोकुल मे भी खूब आनन्द रहा । काशी तो शिवजी की नगरी ही ठहरी । वहाँ के आनन्द का तो पूछना ही क्या ? पुरी का दृश्य तो आँखो मे अभी तक रम रहा है और रामेश्वर, द्वारका आदि तीर्थो मे मैंने वहुत ही आनन्द पाया है । यो वहुत ही मौज उडाई है मैने ! परन्तु...... क्या कहू !'

सभी वडे उत्सुक थे । सभी का मन हो रहा था कि हम भी तीर्थयात्रा के लिये जाये । पर यात्री कुत्ते के 'परन्तु' शव्द पर वे चौंके और एक साथ वोल पडे—'परन्तु क्या ?'

यात्री कुत्ता खेद से वोला—'अरे भाई ! क्या कहू । अपने जाति-भाइयो की ओर से मैंने वहुत दुःख पाया है !'

सव कुत्ते—'तो तीर्थवासी जाति-भाई इतने वुरे है !'

यात्री कुत्ता—'अरे ! कुछ मत पूछो ! गाँव-गाँव मे जाति भाई मुझसे लडते। वडा परेशान करते। काटते वाक्-युद्ध करते। मुझे देखकर, बहुत से इकट्ठे हो जाते और मुझे गाँव के बाहर तक ठेल देते.........' यह कहते-कहते उसके मुख पर पीडा के भाव तैरने लगे।

सब कुत्तों का यात्रा पर जाने का उत्साह मर गया।

शिक्षा—व्यक्ति का स्वभाव अच्छे स्थान पर रहते हुए भी बदलता नही है तो उसका अच्छे स्थान पर रहना वृथा है। दूसरे, अपने स्व-जातीय बन्धुओ को परेशान नही करना चाहिये।



(१७) यश सुन फोगट फुलावे

महा महिनत कर, काग एक रोटी पाई,
खुशी हो एकान्त जाय रोटी तब खावे है।
एक लोमड़ी यो देख, काग पास आय कहे—
'आपके समान और राग नहि गावे है' ।।
अपनी कीरत सुन, राग को आलाप कियो,
मुख से पड़ी है रोटी, लोमड़ी उठावे है।
कहे 'सूर्य' ऐसे मूढ, गाँठ को गमावे द्रव्य,
आप-यश सुन मन फोगट फुलावे है ।।१८।।

एक मकान के प्राङ्गण मे पुरुष वर्ग भोजन कर रहा था रसोई घर से एक बालक भोजन परोसने आता था।

एक कौआ कभी से इधर-उधर ताक रहा था। पर उसे अभी तक खाने के लिये कुछ भी नही मिला था। उसकी दृष्टि बालक पर

गई। वह रोटी का थाल लेकर प्राङ्गण की ओर जा रहा था। कौए का मन ललचा रहा था। परन्तु उसका दाव नही लग रहा था।

बालक को किसी ने रसोई घर से कुछ वस्तु देने के लिये पुकारा। वह रोटी की थाल चौक में ही रखकर पीछे लौटा। कौआ तो इसी ताक मे ही था। वह झपटा और एक रोटी चोंच मे उठा ली। बालक उसे भगाने आया, तब तक तो वह रोटी लेकर उड़ चुका था।

वह कौआ पास के जंगल मे एक वृक्ष पर बैठकर रोटी खाना चाहता था। इतने मे एक लोमडी वहाँ आई। उसका मन रोटी खाने का हुआ। परन्तु कौए से रोटी कैसे पाई जाय। उसने उपाय सोच लिया। वह कौए से बोली—'कौए भाई ! बहुत दिनों मे आपके दर्शन हुए!'

कौआ मौन था। क्योकि उत्तर देने में रोटी मुख से गिर जाने का भय था। लोमडी बोली—'वाह! आपके दर्शन पाये। मै धन्य हो गई!' कौआ लोमडी की ओर देखने लगा। लोमडी कह रही थी—'कौए भाई ! आपका स्वर बहुत ही मधुर है। आप जैसा राग यहाँ-वहाँ सुनने मे कहाँ आता है? मैं तो आपका राग सुनने के लिये तरस रही हू ! सुना दो न, एक बार मधुर आलाप!'

कौआ प्रसन्न हो गया। उसने राग आलापने के लिये मुंह खोला। रोटी नीचे गिर पडी। तब लोमडी हंसकर बोली—'कौआ भाई! राम-राम!' और वह रोटी लेकर भाग गई। कौआ बडा पछताया।

शिक्षा—'कहे 'सूर्य' ऐसे मूढ गाँठ को गमावे द्रव्य, आप यश सुन मन फोगट फुलावे है' जो मनुष्य अपने यश को सुनकर फूलकर कुप्पा हो जाता है तो वह धन गँवा देता है। अरे! अपने चारित्र से भी पतित हो जाता है।

(१८) आम्र अरे ! रस लुप्त हुओ किन कारण ?

(सवैया)

'निकसे नहि क्यों सुन आम्र अरे !
रस लुप्त हुओ किन कारण, जाना ?
इह जीवन में मुझ कंथ कभी
पर-दार विषे नहि भाव रखाना,
नहि स्वप्न विषे मम भाव डिगें,
मुनि 'सूर्य' कहे-'दृग दोष समाना ?'
परदार हुओ नहि रक्त कबै,
नृप भोज महा गुण-ज्ञान-निधाना' ।।१९।।

धाराधीश महाराजा भोज बडे प्रजा-वत्सल थे। वे वेश-परिवर्तन करके, गुप्त रूप से प्रजा के सुख-दुःख को जानने का प्रयत्न करते थे और उनकी समस्याओ को जानकर, उनका हल करते थे। एक बार राजा भोज योगी के वेश मे प्रजा-चर्या का निरीक्षण करने के लिये निकले। वे एक दम्पति के द्वार पर आ खडे हुए। उन्होने भिक्षा के लिये आवाज दी। उस समय युवा गृह-स्वामिनी अपने स्वामी के लिये आम्र रस निचोड़ने के लिये उद्यत थी। अतः, उसने वही से उत्तर देते हुए योगी से कहा—'योगिन् ! कुछ क्षण ठहरिये। मैं रस निचोडकर, अपने स्वामी को देकर, अभी भिक्षा लेकर आती हूँ।' योगी की दृष्टि युवा ललना पर गिर रही थी। योगी उसके सौंदर्य से आकृष्ट हो चुका था। वह सोच रहा था—'ऐसा नारी रत्न यहाँ रहने योग्य नही है। यह तो मेरे अन्तःपुर मे ही शोभित हो सकता है·····'इस प्रकार राजा भोज की दृष्टि विकृत हो गई।

इधर युवती आम्र को निचोड़ने के लिये जोर लगा रही थी। किन्तु आम्र मे रस होते हुए भी उससे रस निकल ही नही रहा था। मानो रस कही लुप्त हो गया हो। युवती को बडा आश्चर्य हुआ।

वह विचार में पड गई। उसने आम्रफल नीचे रख दिया और उसको सम्बोधित करके, कहने लगी—

रे रे रसाल फल ! मुञ्चसि किं रसं नो,
आबाल-पालित-विशुद्ध-प्रतिव्रताऽहम् ।
यन्मे मनो विचलितं न कदान्यपुंसि,
जानामि भोज-नृपतिः परदार-लुब्धः ॥

'हे रसाल ! हे आम्र ! तू रस से परिपूर्ण है ! फिर भी तू पत्थर जैसा क्यों हो गया है ? तू रस क्यो नही छोडता है ? क्या तेरा रस कही लुप्त हो गया है ? सुना है—वस्तुओ पर भावो का प्रभाव पडता है। तो, क्या तुझ पर मेरे भावों का प्रभाव पडा है ? परन्तु मेरे भाव तो बुरे नही हैं। मै विश्वास पूर्वक कहती हू कि मैं बचपन से पतिव्रत्य-धर्म का पालन कर रही हूं। अत मेरा मन पर पुरुप पर कभी चलित नही हो सकता है ! मेरे पति भी शील-वान हैं। उन्होंने इस जीवन मे पर स्त्री को कभी विकार दृष्टि से नही देखा है। तो फिर क्या कारण है—रस लुप्त होने का। अरे ! हाँ, राजा के विचारो का भी वस्तुओं पर प्रभाव पडता है। परन्तु हमारे महाराजा भोज तो महान् पवित्र आत्मा है। वे पर स्त्री में कैसे आसक्त हो सकते है ! क्योंकि वे गुण और ज्ञान के निधान है ! परन्तु तू रस नही छोड रहा है—यह सत्य है। तो फिर मुझे विवश होकर मानना पडेगा कि राजा भोज की दृष्टि मे कुछ न कुछ विकार आ गया है। राजा के भावो का ही इतना तीव्र प्रभाव हो सकता है कि रसयुक्त पदार्थ भी नीरस जैसा हो जाय………'

युवती ने ये बातें उच्चस्वर मे कही थी। राजा भोजने जब ये बातें सुनी, तब उसे बडा खेद हुआ और वह मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा—'अरे ! मैंने ये कैसे अनिष्ट विचार कर डाले ! ऐसे अधमता के विचार करके मै कितना पतित हो गया हूँ ! क्या मेरे

भावों का सचमुच ही इस आम्रफल पर प्रभाव पडा है ? क्या भाव के प्रभाव से वस्तु सरस-नीरस हो सकती है ? या यह बहिन अन्योक्ति से मुझे ही कह रही है ? सचमुच में, विकृत भावों से आत्मा का कृपारस-करुणारस सूख जाता है। मुझे ऐसे विकृत भाव नहीं करना चाहिये। मुझे प्रजा को पुत्रवत् पालन करना चाहिये-न कि उसका और उसके धर्म का शोषण। मैं प्रजा का सुख-दुःख जानने के लिये निकला हूं कि अपने आत्मा को विकृत करने के लिये ! छि.-छि. मैंने यह क्या किया ? हे आत्मन् ! अब अपने शुद्ध भावों मे स्थित हो जाओ ! हो सकता है—मेरे बुरे भावो का ही आम्रफल पर असर हुआ हो ·· ···· ···'

राजा ने युवती से कहा—'बेटी ! देखे, इस आम को फिर एक बार निचोडो तो !'

युवती ने आम उठाया और निचोडा। पात्र रस से भर गया। उसने रस का पात्र अपने पति के हाथ मे थमाते हुए कहा—'मालूम पडता है कि द्वार पर योगी के वेश मे खडे हुए महाराज भोज हैं ! अपने आगन मे गंगा आई है। चलो, उनकी सेवा कर ले।'

दम्पति योगी के समीप आये। उन्होने योगी को प्रणाम किया और बोले—'राजन् ! हमारी कुटिया को पवित्र कीजिये !'

योगी—'राजा कौन ? मैं तो योगी हूं ?' तब युवती ने कहा—'राजन् ! मैं आम्र के प्रसंग से अच्छी तरह पहचान गई हूँ कि आप हमारे यशस्वी महाराजा भोज ही है।'

राजा ने उस दम्पति का आतिथ्य स्वीकार किया और युवती को अपनी धर्म-पुत्री बनाई।

शिक्षा—(१) भावो का प्रभाव वाह्य पदार्थों पर भी पडता है। अत· भावो को पवित्र ही रखना चाहिये।

(२) अपने विकृत भावों का पता लगते ही, उनसे मन को उलटाना चाहिये।

(१९) सोनी सोनो चोर लियो (कवित्त)

सोनी से भूषण घड़ाने को एक सेठ दिया
दोनो ठग-ठग मिले, चोरी लेन-देन में।
सारे दिन सोनी घर, बैठा एक दृष्टि धर,
'कैसे सोनी हरे सोनो'-सेठ कहे सेन में ॥
राख को उड़ाय दीनी, सोनी फूँक देके झट,
पड़ी राख सेठ-आँख, हुआ सो बेचैन में।
झटपट सोनी सोनो चोर लियो, 'सूर्य' कहे-
ऐसे ठग दिन धोले, धूर डारे नैन में ॥२०॥

एक व्यापारी था। अपने धन्धे मे बडा ही होशियार। दूसरे को वह ठग लेता, परन्तु वह किसी से ठगाता नही था।

एक था सोनी। सुनारी-कला मे बडा दक्ष। वह ऐसे सुन्दर आभूषण घडता कि उसकी कला पर मन मुग्ध हो जाता परन्तु उसके लिये यह प्रसिद्धि थी कि उसे आभूषण घडने के लिये जितना सोना दिया जाता, वह तोल मे उतना-ही रखते हुए भी उसमें से कुछ न कुछ स्वर्ण चुरा ही लेता था। वणिक्, सोनी और दरजी-इन तीनों की ठगाई पुराने समय से प्रसिद्ध रही है।

एक वार व्यापारी को स्वर्ण के कुछ आभूषण घड़वाने थे। उसे घड़त उसी सोनी की पसन्द थी। पर उसे भय था कि वह स्वर्ण न चुरा ले। व्यापारी ने विचार किया-जब तक वह आभूषण घडता रहेगा, तब तक मैं वहाँ से टस से मस ही नही होऊँगा; तो फिर वह कैसे स्वर्ण चुरा लेगा?

व्यापारी ने सोनी को सोना दिया। वह सोनी के बिलकुल सामने ही बैठ गया। सोनी ने विचार किया-यदि मैं इस सोने मे से

कुछ सोना न लूँ तो फिर मैं सोनी ही क्या हुआ ! व्यापारी एकटक सोनी की ओर देख रहा था। सोनी मूस में सोना रखकर उसे गला रहा था। अग्नि कुछ मंद हो गई। उसने धौंकनी ली और फूँक देकर अग्नि को तेज करने लगा। सोना तरल हो चुका था। उसने धौंकनी इस प्रकार फूँकी कि आस पास की राख उड़ी और वह सामने बैठे हुए सेठजी की आँख मे गिरी। सेठजी आँख मसलने लगे। इतनी देर में तो सोनी ने अपना काम कर लिया। सेठजी को कुछ पता ही नहीं लगा।

सायङ्काल को सेठ आभूषण को तुलवाकर, प्रसन्न होता हुआ ले गया। सोनी भी उसकी प्रसन्नता पर किंचित् मुसका दिया।

शिक्षा—(१) 'ऐसे ठग··· नैन मे' अर्थात् ठग मनुष्य सावधान व्यक्ति को भी ठग लेते है। ठग एक-दूसरे को आपस-में ही ठग लेते हैं। परन्तु बुद्धि का जितना उपयोग ठगाई मे किया जाता है, उतना यदि सत्यादि के पालन मे किया जाय, तो दुनिया के बहुत से दु ख मिट जायँ।

(२) जैसे व्यवहार मे सावधान व्यक्ति भी जब ठगा जाता है, तब असावधान व्यक्ति ठगा जाय इसमे आश्चर्य ही क्या ? वैसे ही आत्म-साधना करने वाले अप्रमत्त साधक भी विकार रूपी ठगो से कभी-कभी छल लिये जाते है तो प्रमत्त साधको का तो उनके चंगुल मे फँस जाना सहज ही है।



(दोहा)

ऋण-व्रण-अगनी क्रोध का, मत कीजे विश्वास ।
थोड़ा भी अधिका हुवे, सब गुण करे विनाश ।।

(२०) मर्द होते खड़े, लेय हाथ तलवार

नपुंसक जंगल में जाते थे कितेक मिल,
ताको मिले चोर, लगे घेर कर मारने।
'हम लोग हींजड़े है, लूटोगे क्या हम ही को ?'
'यामें क्या है शक ?'—लगे चोर यों उचारने—
'नामर्द ही होते वे, जो आते हे हमारे हाथ,
मर्द होते खड़े, लेय हाथ तलवार ने।'
मन नपुंसक षट् रिपु तस्कर हैं जहाँ,
'सूर्य' आत्मधन रखे, सुज्ञ सुसंभार ने ।।२१।।

एक गहन जगल था। उसमें कुछ लुटेरे पथिकों को लूटने की ताक मे रहते थे। अतः इक्के-दुक्के पथिक चक्कर खाकर, अन्य रास्ते से जाना पसद करते थे; किन्तु उस जंगल के रास्ते से नही जाते थे। यदि कोई चला भी जाता तो वहाँ से क्षेम-कुशल निकलना वड़े भाग्य से ही होता था।

एक वार कुछ व्यक्ति उस जंगल से गुजर रहे थे। उनकी कमर में तलवारे वधी हुई थी। पीठ पर ढाले लगी हुई थी। वे वडी वहादुरी से कदम वढा रहे थे। परन्तु भय से उनका हृदय धडक रहा था। वे कुछ आगे वढ़े ही थे कि लुटेरो ने उन्हे घेर लिया। उन्हे तलवारें खीचने का ध्यान ही नही आया। तलवारे कमर मे लटकती रही। ढाले पीठ पर वधी रही और वे पीटे जाने लगे। वे तालियाँ पीटते हुए परस्पर वोलने लगे—'हे! हे! मीरजान! यह क्या हुआ ?' 'हे हें हीराजान! ये तो चोर है!' वे सव चोरो से कहने लगे—'हे जी! तुम हमे भी लूटोगे ?' चोरो ने उन्हे पीटते हुए कहा-'क्यो नही लूटे तुम्हे ? कौनसे लाट साहव हो तुम !' उन व्यक्तियो में स एक वोला—'ए—जी! तुम इतना भी नही समझते हो! हम

हीजडे है ? हम हीजडो को भी लूटोगे तुम ? क्या बहादुरी रहेगी तुम्हारी फिर !'

यह बात सुनकर लुटेरे हँस पड़े। वे बोले—'बेशक ! तुम्हे लूटेंगे ही ! क्योकि जो नामर्द होते हैं वे ही हमारे हाथ आते है। जो वीर पुरुष होते है, वे तो तलवार लेकर सामना करते है और जीते जी हमारे हाथ नही आते है !'

लुटेरो ने उनकी एक न सुनी। वे उनके पास से धन निकलवाने लगे। उनमे से एक ने धन नही दिया और तलवार लेकर उनसे लडने लगा। वह उन लुटेरो से तलवार के दॉव-पेच खेलता हुआ दूर निकल गया। उसने लुटेरो को अपने पास नही आने दिया। लुटेरो ने कहा—'यह तो कोई मर्द लगता है !'

उपनय—यह भव रूपी जगल है। इसमे आत्मा मन और इन्द्रियो के साथ निकल रहा है। मन नपु सक है और इन्द्रियाँ भी इस नपुंसक से प्रेरित होती है। आत्मा भी मन के वश मे है। इस भव-वन में काम, क्रोध, मद आदि षट् रिपु आत्म-वैभव को लूट रहे हैं। मन और इन्द्रियाँ इनकी पकड मे हैं। यदि आत्मा मन और इन्द्रियो के विषयो से ऊपर उठे तो इन षड्रिपुओ की पकड से बाहर हो सकता है।

शिक्षा—'सूर्य' आत्मधन रखे, सुज्ञ सुसभारने' अर्थात् जो उत्तम ज्ञानी होते हैं, वे अपने शील, सतोष, दया आदि आत्म-वैभव को भली-भाँति सुरक्षित रखते है। अत उत्तम ज्ञानाभ्यास करके, अपने आत्म-वैभव की रक्षा करना चाहिये।



(२१) गुन ये श्वान में भी होय

साधु जाय भिक्षा लेन, श्रावक परीक्षा करे,
'आंगन पावन करो, हम भाग्यवारे हैं'।
द्वारपाल से करावे अपमान मुनि फिरे,
सेठ आय फेर अर्ज मुनि से गुजारे है ॥
तिरस्कारे तीन बार, मुनि रहे क्षमा धार,
सेठ क्षमा मांगे आय, साधु यो उचारे है—
'कौन-सा बड़ा गुन ये, श्वान मे भी होय भैया !'
'सूर्य' ऐसे शान्त-दान्त को धोक हमारे हैं ॥२२॥

दोपहर का समय था। एक मुनि महात्मा आहार के लिये मथर गति से ग्राम मे पधार रहे थे। मुनि को अकेले देखकर, एक श्रावक के मन मे कई विकल्प उठ खडे हुए। उसने सोचा—'ये मुनि अभी युवावस्था मे ही हैं। फिर अकेले क्यो विचरण कर रहे है। या तो जो विशिष्ट गुणो के धारक हो और जो विशिष्ट साधना करना चाहते हो—वे अकेले विचरते है, या फिर जो दुर्गुणी हो—वे अकेले विचरते है। देखे, परीक्षा तो करूँ ! यदि ये कसौटी पर खरे उतरे, तब तो अपने आराध्य हैं ही और यदि खरे न उतरे तो इन्हे समझा बुझाकर, इनके गुरु के पास भेजूँ, जिससे ये धर्म मे स्थिर हो सके।'

श्रावक उठा और मुनि महात्मा के सन्मुख गया। उसने उन्हे वन्दना की और विनम्रता से बोला—'महाराज ! हम बड़े भाग्यवान हैं कि आपका हमारे ग्राम मे पदार्पण हुआ। कृपालु ! आप कृपा करो और हमारा आगन पावन करो। थोडी दूर पर ही मेरा घर है—' सकेत से घर बताकर, सेठ चलता बना। सेठ अन्य रास्ते से मुनि महात्मा के पहुँचने से पहले ही अपने घर पहुँच गया और आते हुए मुनि की ओर सकेत करके द्वारपाल से बोला—'देखो, उन्हें घर में मत घुसने देना।' अब सेठ एक तरफ खडा हो गया। मुनि महात्मा

द्वार मे प्रवेश करने लगे तो उन्हे द्वारपाल ने टोका—'कहाँ घुस रहे हो ? भीतर नही जा सकते हो तुम !' मुनि शान्ति से लौट गये।

मुनि महात्मा कुछ दूर पहुँच गये। वह सेठ पुन. उनके पास पहुँचा और बोला—'अरे ! आप मेरे यहाँ अभी नही पधारे ? करो न कृपा !' सेठ यह कहकर, फिर गायब हो गया। मुनि पुन उसके यहाँ गये। इस बार उन्हे द्वारपाल ने गाली दी और उन्हे अन्दर प्रवेश नही करने दिया। मुनि पहले के समान ही शान्त भाव से वहाँ से लौट गये। कुछ देर बाद सेठ तीसरी बार उनके पास गया और बडे नम्रभाव से बोला—'अरे महाराज ! मैंने आपसे दो बार प्रार्थना की। फिर भी आप हमारे घर नही पधारे। क्या हम आपके भक्त नही हैं ! मुनि के मन मे ऐसा भेद नही होना चाहिये ! अब तो आपको पधारना ही चाहिये !' मुनि समुस्कान बोले—'सेठ ! हमारे मन मे भक्त-अभक्त का कोई भेद नही है। जैसा अवसर होगा वैसा देखा जायेगा !' सेठ ने हठ करते हुए कहा—'नही, आपको पधारना ही होगा !' मुनि ने उससे कुछ नही कहा। शान्ति से उसके घर की ओर बढ़ने लगे। कुछ ही देर मे सेठ फिर दूसरी ओर चला गया।

मुनि उसके द्वार पर तीसरी बार पहुँचे। इस बार तो द्वार-पाल बडा क्रुद्ध हो गया। वह गर्जता हुआ बोला—'कैसे आदमी हो तुम ! साधु हो कि ढोंगी हो ! दो बार तुम्हे मना कर दिया। फिर भी मक्खी जैसे यही भिन-भिना रहे हो ? जाओ, हट जाओ यहाँ से !' मुनि का हाथ पकडकर, उसने उन्हे घर के बाहर धकेल दिया। परन्तु मुनि वैसे ही निश्चल और शान्त थे—निस्तरङ्ग समुद्र जैसे ! वे सिर्फ इतना ही बोले—'अच्छा भाई !' सेठ ने यह सारा दृश्य देखा और वह जल्दी ही मुनि के पास आकर विनय पूर्वक बोला—'महाराज ! आप भीतर पधारो—कृपा करो।'

इस बार भी मुनिराज ने उसे कुछ नही कहा। यह भी शिकायत नही की कि तुम हमे बार-बार प्रार्थना करते हो और द्वार

पर भेरू के वाहन को बिठा रखा है। मुनिवर शान्ति से उसके संग हो लिये। श्रावक उन्हे भीतर ले गया। उसकी रति के समान सुन्दर और शृङ्गार से युक्त पत्नी ने मुनि की अभ्यर्थना की और विविध मिठाइयों और पक्वानो को आग्रह पूर्वक वहराने लगी। परन्तु मुनि ने पात्र नही खोले। उन्होने गवेषणा की। तब सेठ आग्रह-पूर्वक बोला-'यह बिलकुल निर्दोष आहार है। न तो यह आपके लिये बना है और न क्रीतादि दोष से दूषित है।' मुनि को जब आहार की निर्दोषता का पूरा विश्वास हो गया, तभी उन्होने पात्र खोले। जब सेठ उन्हे अति मात्रा मे आहार देने लगा, तब मुनि ने उसे इंकार करते हुए कहा—'देवानुप्रिय ! हठ मत करो। आपने अपनी ओर से भक्ति पूर्वक ऐसी अभिव्यक्ति कर दी है कि जिससे मुझे आहार लेने मे संकोच न हो। आप समझदार है। अधिक आहार लेकर मैं क्या करूँगा ? मुझे जितना लेना उचित जँचेगा, उतना ही आहार मैं लूँगा।' सेठ श्रद्धा से गद्‌गद हो गया। उसने भक्ति-भाव से उचित मात्रा मे मुनि को आहार वहराया।

मुनि आहार लेकर जाने लगे। सेठ उनके चरणो मे बैठ गया और भक्त्यश्रु बहाता हुआ बोला—'धन्य है आपको ! क्षमा के सागर है आप। मैंने आपका तीन बार अपमान करवाकर अपने द्वार से निकलवाया। परन्तु आपकी आँखो में अशमात्र भी रोष न देखा। भगवन् ! मेरे अपराध को क्षमा करे। आपकी परीक्षा करने के लिये ही मैंने यह कार्य किया था।' मुनिराज मुसकाते हुए बोले—'देवानुप्रिय ! आप इसे बहुत बडा गुण समझते हो ? यह गुण तो कुत्ते मे भी होता है। उसे दुत्कारने पर वह चला जाता है और पुचकारने पर पुन आ जाता है !' सेठ श्रद्धा से चरण छूते हुए बोला—'नही, भन्ते ! ऐसा मत कहो। आप महान् गुणी है। क्षमावान है। आप इन्द्रियो के भी जेता हैं ! आपने मेरी सुन्दरी पत्नी की ओर भी दृष्टि नही डाली। जैसे घास का पूला खाने के लिये लालायित गोवत्स घास की ओर ही

दृष्टि रखता है, घास खिलाने वाले की सुन्दरता या सजावट पर नहीं वैसे ही आपने आहार की ओर ही दृष्टि रखी । आप रसनाजयी भी है और निरहंकारी भी ।'

उसने मुनि के चरणो मे अपना मस्तक रख दिया ।

शिक्षा—(१) परीक्षा करके गुरु करने चाहिये ।

(२) मुनि को क्षमावान्, प्रतिकूल तथा अनुकूल परीषहजयी और इन्द्रियजयी होना चाहिये ।



(२२) साधु के तो लाभ हानि नहीं है

मुनि से कहे यों रानी—'स्वामी ! कंथ वश होय,
दीजे यंत्र–'तब मुनि कही–'जाने नांही है !'
हठ कियो, लिख दियो, गले बाँध्यो बाँचे बिन,
राजा वश हुवो तबै मुनि पास आई है–
'विद्याविज्ञ आप जैसे, झूठ बात कहे कैसे ?'
मुनि कहे–'यंत्र देखो–' रानी बाँच रही है ।
'चाहे राजा रानी पर राजी वा नाराज रहे,
यामें 'सूर्य' साधु के तो लाभ हानि नही है ।।२३।।

(अ)

एक राजा था । उसके दो रानियाँ थी । बडी रानी से राजा नाराज था । इसलिये रानी बडी दु खी रहती थी । वह प्राय. ऐसे उपायो की खोज मे रहती थी कि जिनसे राजा उसके वश मे हो जायँ ।'

एक बार महात्मा आनन्दघनजी विचरण करते हुए, उस नगर मे पधार गये । उनकी ख्याति राजमहल मे भी पहुँच गई । रानी को

लगा कि ये महात्मा यदि कृपा करे तो मेरा कष्ट दूर हो सकता है। वह अवसर देखकर महात्माजी के पास गई और उनसे अर्ज की—'आप वशीकरण यत्र या मत्र दे दीजिये, जिससे राजाजी मुझ पर प्रसन्न हो जाएँ।' महात्माजी ने कहा—'हम इस विषय मे कुछ नही जानते है।' परन्तु रानी अपनी बात पर अडी रही। आखिर महात्माजी ने उसे टालने के लिये एक कागज के पुर्जे पर कुछ लिखकर दे दिया। रानी ने उसे तावीज मे रखकर गले मे बाँध लिया।

अचानक बात ऐसी बनी कि राजा अनायास ही रानी पर प्रसन्न हो गया। रानी के यहाँ अमन-चैन की बसी बजने लगी। वह महात्माजी के पास कृतज्ञता बताने आई। उसने महाराज का उपकार माना और कहा—'आप ऐसे विद्यावान है, ज्ञानी है, फिर झूठ क्यो बोले ?'

आनन्दघनजी ने हँसकर कहा—'कागज का पुर्जा खोलकर पढो तो तुम्हे इस बात का उत्तर मिल जाएगा।' रानी ने तावीज खोला और पुर्जा पढा। उसमे लिखा था—

'राजा रानी पर राजी रहे तो साधु को लाभ क्या ?
और राजा रानी पर नाराज रहे तो साधु को हानि क्या ?'

रानी का भ्रम दूर हो गया। वह महात्मा आनन्दघनजी की अध्यात्म-लीनता देखकर गद्‌गद् हो गई।

(आ) इस कथा का पाठान्तर

महात्मा आनन्दघनजी प्रसिद्ध जैन सन्त हो गये है। उनके रचित आध्यात्मिक भजन-स्तुति आज भी लोग भावपूर्वक गाते हैं और उनका चिन्तन-मनन करके आध्यात्मिक सुख अनुभव करते है। उनके जीवन का एक घटना-प्रसग इस प्रकार है।

एक वार आनन्दघनजी※मेडता नगर मे आये हुए थे। मेडता-नरेश भी उनकी आध्यात्मिक साधना से प्रभावित थे। मेडता-नरेश के दो रानियाँ थी। परन्तु वडी रानी के प्रति उनकी उपेक्षा थी। रानी वहुत ही दुःखी रहती थी। उसने महात्मा आनन्दघनजी की ख्याति सुनी। उसने सोचा—'ये पहुँचे हुए महात्मा है। ये मुझे वशीकरण मत्र, यंत्र या तन्त्र दे सकते है।' उसने अपनी एक विश्वास पात्र और समझदार दासी को महात्मा के पास भेजी।

उस समय आनन्दघनजी अपने कार्य मे लगे हुए थे। दासी ने महात्मा को वंदना करके, सभी वाते सुना दी और फिर हाथ जोडकर वोली—'यदि आप चाहे तो रानी साहिवा को सुखी कर सकते है।' आनन्दघनजी उसके सकेत को समझ गये। उन्होने कहा—'वहिन! मैं तो सभी जीवो को सुखी देखना चाहता हू और सदा ऐसी ही भावना करता हू!' दासी वोली—'आपकी भावना एक सन्त के अनुरूप ही है। जव आपकी ऐसी भावना है, तव रानीजी को सुखी वनाने के लिये कुछ न कुछ करना ही चाहिये!' महात्मा बोले—'वाई! हम इन सुखो को-वैषयिक सुखो को सुख नही मानते है।' दासी–'महाराज! मुझे टलाओ मत! आपको मत्र देना ही होगा!' महात्मा—'न तो मैं मंत्रादि जानता हू और न मत्रादि देने का हमारा आचार ही है।' यह कहकर महात्मा अपने कार्य मे लग गये। परन्तु दासी वहाँ से टली नही।

महात्मा ने देखा–दासी हठ पर चढी हुई है। उन्होने विचार किया कि रानी समझ जाती। परन्तु यह दासी समझ नही रही है।

※ कुछ लोगो का मत है कि आनन्दघनजी का दीक्षित अवस्था का नाम लाभानन्दजी था और वे मेडता की घटना के वाद् आनन्दघनजी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अत. एक चिट लिखकर दे दूँ । रानी उसे पढकर समझ जायेगी । कागज की एक चिट ली और उसपर दो पंक्तियाँ लिख दी—

'राजा रानी पर खुश तो आनन्दघन कूं क्या !
राजा रानी पर नाराज तो आनन्दघन कूं क्या !

दासी उस चिटको पढकर फिर कही सिरपच्ची न करे, इस-लिये आनदघनजी ने मोडकर वह चिट उसे दे दी और कहा—'लो, इसे रानीजी को दे देना !' दासी ने समझा—महाराज ने यत्र दिया है । वह प्रसन्न होती हुई वहाँ से चली गई । उसका चेहरा देखते ही रानी ने समझ लिया कि काम बन गया है । दासी ने कहा—'महात्माजी बडे कठोर है । कितनी मिन्नते की और कितनी देर तक अडकर बैठी रही, तब कही वे पसीजे । लो !' उसने वह मुडी हुई चिट रानीजी के हाथ मे थमा दी । रानी बडी खुश होकर बोली—'इसीलिये तो मुझे तुमपर श्रद्धा है । तुम जाओ और काम न बने—ऐसा क्या हो सकता है !' उसने दासी को बढिया पुरस्कार दिया । उस चिट को यत्र समझकर रानी ने खोला नही और तावीज मे डालकर हाथ मे बाँध लिया ।

अकस्मात् हुआ भी ऐसा कि राजा उसी दिन से रानी की ओर ध्यान देने लगे । रानी का दु ख दूर हो गया । एक दिन राजा ने हँसी मे रानी से कहा—'रानीजी ! तुमने मुझपर क्या जादू कर दिया कि मैं खिंचा हुआ तुम्हारे यहाँ चला आता हू !' रानी ने कहा-'मै क्या जादू करूँ ! यह तो महात्मा आनन्दघनजी की कृपा का फल है ।' फिर उसने तावीज की बात कह सुनाई । राजा आश्चर्य मे पड़ गया—'क्या ऐसे आध्यात्मिक महात्मा भी गडा-तावीज करते है ?'

राजा महात्माजी के पास पहुँचा और उन्हे उपालम्भ देने लगा । महात्माजी ने हँसते हुए कहा—'आप तावीज खोलकर पढेगे तो आपको इस बात का उत्तर मिल जायेगा ।' राजा महल मे

पहुँचा। तावीज से चिट निकालकर पढी तो राजा हँस पडा और रानी से बोला—'बस यही तुम्हारा यंत्र है!'

रानी ने भी उसी श्रद्धा से उत्तर दिया—'मेरे लिये तो यह चिट यंत्र से भी बड़ी हो गई।'

शिक्षा—(१) आत्म-साधकों को अपनी साधना मे ही लीन रहना चाहिये—निःस्पृह भाव से ही रहना चाहिये।

(२) आशा-तृष्णा में फँसे हुए लोग, निःस्पृह वृत्तिवाले साधकों के आस-पास भी अन्धविश्वास का वातावरण जमा देते हैं। जिससे साधक के पतित हो जाने की आशंका रहती है। अतः साधक को सावधान रहना चाहिये।



(२३) सर्वजीत कहूं उनको (सवैया)

'भुजदंड प्रचंड करी अपने वश—
कैद किये अरि के गण को।
नर एकहि छत्र सुराज करे,
जगमें नहि वीर कहू तिन को॥
'मुनि सूर्य' कहे-मद, मान करे वश,
इन्द्रिय, काम तथा मन को।
सुन पुत्र अरे! वर वीर वही
जग में सबजीत कहूं उनको' ॥२४॥

एक राजा बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। उसने भूमंडल के समस्त राजाओं को जीत लिया और अपना नाम रखा 'सर्वजीत'।

महाराजा 'सर्वजीत' प्रतिदिन प्रातःकाल मे अपनी माता के चरणों मे प्रणाम करने जाते थे। क्योंकि माता के चरण ही उसके

लिये प्रेरणा के स्रोत थे। परन्तु उसे एक बात खटकती थी कि माता उसे सर्वजीत नाम से नही पुकारती थी। वह उसे पुराने नाम से ही सम्बोधित करती थी।

कई दिनों तक सर्वजीत के मन में यह बात घुलती रही। एक दिन उसने अपनी बात माता के सामने रख ही दी। यह बात सुनकर माता कुछ देर तक हँसती रही। फिर बोली—'बेटा! तुमने अभी जीता ही क्या है, जो तुम्हे सर्वजीत कहूं?'

सर्वजीत सम्राट् आश्चर्य मे डूब गया। सारी दुनिया जिसे सर्वजीत मान रही है, उसे उसकी माँ ही सर्वजीत मानने से इन्कार कर रही है! वह बोला—'माँ! भूमडल मे ऐसा कौन-सा राजा शेष रहा है, जिसका मुकुट मेरे चरणो मे न झुका हो!'

माँ बोली—'भले ही तुमने सब राजाओं को अपने भुजदंड के बल से जीत लिया हो! पर मैं इतने मात्र से तुम्हे सर्वजीत नही मान सकती हूं!'

सर्वजीत आश्चर्य मे बोला—'क्या आप सभी राजाओं को जीत लेने वाले महान् शासक को भी सर्वजीत नही मानती?'

'बेटा! जो शासित हो, उसे शासक कैसे माना जा सकता है?'

'क्या कहा माँ! मैं अभी शासित हूं!'

'हाँ वत्स! तुम अभी शासित ही हो। एक राजा से ही नहीं, तीन-तीन राजाओ से शासित हो!'

'कौन है वे राजा? जल्दी बताओ माँ! मैं उन्हे जीते बिना कदापि नही छोडूँगा!'

माता मुसकाती हुई बोली—'बताती हूं बेटा! वे राजा हैं—कामराज, मोहराज और यमराज। इनको जीतनेवाले को ही मैं सर्वजीत कहती हू!'

सम्राट्-सर्वजीत का नशा उतर गया और वह दूसरे दिन राज्य त्यागकर, इन तीनो राजाओ को जीतने के लिये चल पडा।

शिक्षा—(१) जहाँ तक अपने आपको नही जीता, वहाँ तक कुछ नही जीता।

(२) जो अपने को जीत लेता है, वही सर्वजीत है।

---

(२४) बुद्धि यस्य बलं तस्य (कवित्त)

वनचर पशु मिल, सिह से अरज करी
आवे भक्ष काज एक, पशु तुम थान को।
कियो है प्रमान सिह, नित पशु जाय तिहाँ
आई बारी सुसले की, भूले निज भान को॥
पंथ में लगाई वार, सिह पूछां, कहे–'नाथ!
आप ही समान और, मिला पथ आन को।
'कहां वह छिपा ?' 'कूप–' सिह सुण पड्यो झट,
कहे 'सूर्य'–बुद्धि से बचाई निज जान को॥२५॥

एक सिंह कई पशुओ का प्रति दिन विनाश करता था। वनचर पशु घबराये। सब पशु इकट्ठे हुए। उन्होने निर्णय किया कि वनराज को इस बात के लिये राजी कर ले कि 'उनके पास एक पशु रोज आ जाया करेगा। वे ज्यादा पशुओ की हत्या न करे। इसप्रकार वनराज को भी अधिक श्रम न करना पड़ेगा। उन्हे घर बैठे ही भक्ष्य मिल जाया करेगा।'

शिष्ट मण्डल सिह के पास पहुँचा। सिह ने उनकी बात सुनी और कुछ सोचकर उनकी बात मान ली।

अब बारी-बारी से पशु सिह के पास जाने लगे।

एक दिन एक खरगोश की बारी आई। पहले तो यह बात

जानकर, वह व्याकुल हो गया। पर फिर उसने सोचा—'मेरे भी प्राण बच जाएँ और जंगल का सब कष्ट ही मिट जाए-ऐसा काम करना।'

खरगोश सिंह के पास जाने के लिये निकला। उसने रास्ते मे बहुत देर लगा दी। इधर ज्यो-ज्यो देर होती जा रही थी, त्यो-त्यो सिंह का क्रोध बढता जा रहा था। खरगोश घबराता हुआ सिंह के पास पहुँचा। सिंह ने कड़ककर पूछा—'एक तो तू है छोटा प्राणी। तुझे खाकर, मेरा पेट भी नही भरेगा। दूसरे तू इतनी देर करके क्यों आया ?'

खरगोश काँपते हुए हाथ जोडकर बोला—'स्वामिन् ! इसमे मेरा अपराध नही है। रास्ते मे आप जैसे एक और वनराज मिल गये थे। वे ही मुझे दबोचने लगे। कहने लगे वन का राजा तो मैं हूं। बड़ी मुश्किल से छुटकर आया हूं स्वामिन् !

सिंह दहाड़ा—'कौन आया है ऐसी गुस्ताखी करने वाला ? चलो, अभी उसके होश दुरुस्त कर दूँगा ?'

खरगोश आगे हो गया। उसने सिंह को कुएँ में उसकी परछाई बताई। सिंह दहाड़ा। कुएँ से प्रतिध्वनि आई। सिंह ने क्रुद्ध होकर परछाई पर छलाग मारी और वह कूप मे गिर पड़ा।

जंगल के पशु निर्भय हो गये।

शिक्षा—'बुद्धि से बचाई निज जान'—जो संकट में नहीं घबराता है और अपनी बुद्धि का उपयोग करता है तो बड़े-बड़े संकटों से क्षणभर मे पार हो जाता है।

—·—·—

बिना क्रिया ज्ञानी रहे, तेल बिना ज्यों दीप।
ज्ञान-क्रिया बिन शिव नहीं, पंगू-अंध समीप ॥

(२५) ऐसे नर खर तुल्य

पंडित काशी से पढ़, आयो निज गाम ताको,
किसी ने कहा कि–'तेरी नार राँड हो गई।'
लगा रोने-पीटने यों, पडोसी ने पूछा आय,
कहे–'मेरी पंडितानी आज राँड हो गई!'
'तुम हट्टे-कट्टे जीते-जागते, हो राँड कैसे?'
'यामें भ्रम पड़ा बड़ा, बुद्धि मेरी खो गई।'
कहे 'सूर्य मुनि' ऐसे नर खर तुल्य जाँको'
समझाते विद्यादेवी निज हाथ धो गई ॥२६॥

एक पण्डितजी काशी से पढकर लौट रहे थे। आगे-आगे एक बैल चल रहा था। जिसपर, उन्होने जिनका अध्ययन किया था, वे पोथियाँ लदी हुई थी। यज्ञोपवीत संस्कार के साथ ही लग्न होने के बाद, वे छोटी आयु में ही अध्ययन करने के लिये चले गये थे। वे बारह वर्ष बाद अपने गाँव लौट रहे थे। वे गाँव के समीप आ गये थे। वे थोडी देर विश्राम करने के लिये, एक वृक्ष की छाँह में बैठ गये। जिस समय वे बैठ रहे थे, उस समय उनके पडोसी की दो लड-कियाँ जया और विजया, जल भरने के लिये उधर आ रही थी। उन्होने पण्डितजी को बैठते देखा। तब जया बोली–'बहिन! ये अपने पडोसी पण्डितजी हैं! अभी काशी से आ रहे हैं! बारह वर्ष तक पढ़े हैं काशी मे? कितने विद्वान् हो गये होगे!'

विजया ने कहा—'ऊँह! लगता है–पडितजी पढ़े हैं, पर गुने नही।' जयाने कहा—'विजया! यह कैसी बात है तेरी! हर बात मे कुछ न कुछ मीन-मेख निकाला ही करती है!' विजया ने कहा—'देख, पण्डितजी चिंटी के बिलपर ही बैठ गये है! इतना बडा ज्ञानी और नीचे देखे बिना ही बैठे!' जया ने उसे टोकते हुए कहा—'कैसी हो,

तुम ! जरा-सी भूल को कितना तूल दे दिया है तुमने !' विजया—'अच्छा, तो चलो ! पण्डितजी की परीक्षा कर ले !'

विजया ने जया के कान मे कुछ कहा। फिर दोनो पण्डितजी के पास पहुँच गई। विजया-'धन्य भाग्य हमारे-जो पण्डितजी के दर्शन हुए हमे ! खूब पढे है आप ! हमारे गाँव का नाम उज्जवल हो जाएगा ! पर·····' विजया एक दम चुप होकर सुस्त हो गई। पण्डितजी ने पूछा—'एक दम चुप क्यों हो गई ?' विजया ने उदास मुख से कहा-'आप आज पधारे ही हैं। घर जाएँगे तो सब कुछ पता लग ही जाएगा ! मैं आपको ऐसे समाचार क्यो सुनाऊँ !' अब तो पण्डितजी की उत्सुकता बढ गई। वे आजीजी करते हुए बोले—'कह दो न बहिन ! ऐसी क्या बात है ?' विजया—'कैसे कहूँ, पण्डितजी ! वह बात ! मेरा तो कलेजा मुँह पै आता है !' विजया की आँखो में आँसू चमक उठे।' पण्डितजी का हृदय धड़कने लगा। वे बेसब्री से बोले—'झट कहो—क्या बात है ?' विजया-'पण्डितजी ! बड़ा गजब हो गया। बेचारी पण्डितानीजी पर वज्रपात हो गया !···'पण्डितजी दु:ख और आश्चर्य से बोल उठे—'क्या कहा—मेरी पण्डितानी इस लोक मे नही रही ?' विजया ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—'ऐसा नही, पण्डितजी ! पर पण्डितानी जीते जी ही मरी हुई जैसी हो गई है ! बेचारी विधवा हो गई हैं ! रण्डापा का दु ख क्या कम है पण्डितजी ? क्या सुख देखा है बेचारी ने····'यों कहते हुए विजया ने अपने आँसू पोछे। पण्डितजी भी रोने लगे और आक्रदन करते हुए बोले—'हाय ! कैसा दु ख आया है पण्डितानीजी को ?' दोनों बहिनो ने बडी मुश्किल से हँसी रोकी। फिर जया बोली—'पण्डितजी ! जैसी करम की गति ! जो होना था सो गया। आप शान्ति रखो और घर पधारो !' दोनों बहिने अपने बेड़े सम्हालकर चल दी।

पण्डितजी सोचने लगे—'ऐसा ठूँठ जैसा ही घर पर पहुँचूँगा तो ठीक नही लगेगा।' उन्होने गाँव मे प्रवेश करते ही रोना शुरू कर

दिया। लोगोंने देखा—पण्डितजी आज ही काशी से आये हैं—पर रोते-रोते। क्या मालूम कोई शोक समाचार लेकर आये होंगे। लोग भी संवेदना प्रकट करने के लिये साथ हो गये। किसी ने यह सूचना घर के भीतर दी। घर के भीतर स्त्रियाँ भी रोने लगी। पण्डितजी का रोना जारी था। वे अपने आंगन में बैठ गये। लोग भी बैठ गये। काफी देर हो गई पण्डितजी को रोते हुए। आखिर पडोसी से नहीं रहा गया। उसने पूछा—'कहाँ से समाचार आये हैं ?' पण्डितजी ने टूटे हुए स्वर से कहा—'तुम पडोसी हो ! तुम्हें इतनी भी खबर नही है ?' पडोसी भौचक्का रह गया। फिर भी उसने पूछा—'मुझे तो कुछ भी पता नहीं पण्डितजी ! पर हुआ क्या ?' पण्डितजी का रोना बन्द हो गया। उन्हे आवेश आ गया। वे जोर से बोले—'अच्छे पडोसी हुए तुम ? अच्छा पडोसी-धर्म बजाया तुमने ! मेरी पण्डितानी पर वज्रपात हो गया और तुम्हे कुछ पता ही नही है !' पण्डितजी की आवाज सुनकर स्त्रियों का भी रोना बन्द हो गया। पडोसी ने हैरान होकर कहा—क्या हुआ है पण्डितानीजी को ? वे तो भली चगी घर मे बैठी हैं ?' पण्डितजी तुनक कर बोले—'कैसे हो जी तुम ! मेरी पण्डितानी विधवा हो गई है और तुम्हे कुछ पता ही नहीं है।' यह बात सुनकर लोग हँस पडे। पण्डितजी चिढ गये—'क्या ही-ही कर हँसते हो ! कुछ सभ्यता भी है !....' पडोसी बोला—'पण्डितजी ? आपने बात ही ऐसी की ! क्या ऐसा भी कभी हो सकता है ?' पण्डितजी क्रोध मे बोले—'क्यों नही हो सकता है !'

पण्डितजी की विधवा बहिन से नही रहा गया। वह बाहर आई और बोली—'भाई ? क्या तमाशा कर रहे हो ? तुम हट्टे-कट्टे जीवित बैठे हो और भाभी विधवा कैसे हो गयी।' पण्डितजी ने कहा—'मैं जीवित बैठा हूं। फिर तुम विधवा कैसे हो गई ?' बहिन ने कहा—'तुम्हारे बहनोई नही रहे। इसलिये मैं विधवा हो गई ! जिसका पति मरता है, वह स्त्री विधवा होती है' अब पण्डितजी को

समझ आई। वे बोले—'अरे ? हाँ, यह तो में भूल ही गया। मैं भ्रमित हो गया। मुझे शंका तो हुई थी। परन्तु उन छोकरियो ने मुझे भ्रम में डाल दिया ? मैं कुछ विचार नही कर सका !'

लोगों ने बात जानी तो हँसते हुए बिखर गये।

शिक्षा—'ऐसे-नर''''धो गई' अर्थात् ऐसे मनुष्य पठित मूर्ख होते हैं। सामान्य मनुष्य की अपेक्षा ऐसे मनुष्यो को समझाना कठिन होता है। क्योकि शिक्षा का अहंकार, उनके लिये सही वस्तु स्वरुप समझने मे बाधक बनता है। ऐसे खरतुल्य नर नही बनना चाहिये।

—·—·—

(२६) भोली ! धन यहाँ कहाँ है ? (सवैया)

सास बहू घर माँय अकेली रही—
तब आय के चोर भरायो।
शोर सुन्यो वधू से कहे सास यों—
'काँहे भोली ! धन काँहि रखायो !'
नीम तरू धन पोट धारी' सुन—
चोर तबै धन लेन उमायो।
चोर भगे, मधुमांखि डँसे,
'मुनि सूर्य' यों बुद्धि से द्रव्य बचायो ॥२७॥

गृहस्वामी ने अपनी पत्नी से कहा—'सुनो तो मन्नू की माँ ! मैं और मन्नू दोनों बाहर गाँव जा रहे है। तुम और बहू होशियारी से रहना। आज कल चोरी-चकारी का बड़ा डर है।' बाप-बेटे रवाना हो गये।

उपर्युक्त बात किसी चोर ने सुन ली। वह रात मे चोरी करने के लिये घर मे घुसा। बहू की नीद खुल गई। वह चिल्लाने लगी।

सासू ने पूछा—'बहू ! शोर क्यों मचा रही हो ?'

बहू ने कहा—'चोर चोरी करने घर मे घुस आये हैं। अब अपने धन का क्या होगा ?'

सासू—'बहू ! तू भोली है । चोर यहाँ आकर ले जाएंगे क्या ? धन तो घर मे है नही ! मैंने तो पहले से ही धन को गठरी मे बाँधकर, अपने आँगन के नीम की डाली पर लटका दिया है। सो जाओ तुम तो !'

बहू कुछ समझी। वह बोली—'अरे हाँ ! आप साँझ को गठरी बाँध रही थी। यह तो मै भूल ही गई। अच्छा, तो अब सो जाएँ।' यह कहकर बहू ने ओढने का वस्त्र शरीर पर डाल लिया।

चोर ने यह बात सुनी। वह नीम के पास आया तो उसे सचमुच ही डाल पर एक पोटली लटकती हुई दिखाई दी। वह वृक्ष पर चढा और उसने पोटली पर हाथ डाला । परन्तु यह क्या ? वह तो पीडा से एक दम कराह उठा। वस्तुत जिसे वह पोटली समझ रहा था, वह मधुमक्खियो का छत्ता था। उसके हाथ डालते ही मधुमक्खियाँ उसे काटने लगी। चोर अपनी जान बचाकर भागा।

शिक्षा—'यो बुद्धि से द्रव्य बचायो है' इस ससार मे अपने चारित्र रूपी धन के अनेक चोर हैं। अत हमे सजग रहना चाहिये और चारित्र-वैभव की रक्षा के लिये धैर्य और बुद्धि से काम लेना चाहिये।



(सोरठा)

भंडारी घबराय, दाता देवे दान जब।
निरथक देत लुटाय, खाली हो भंडार सब ॥

(२७) प्रत्युत्तर तुरत ही दिया (कवित्त)

श्वेत केंस देख नृप, पूछे एक पण्डित से,
'दाढ़ी पहले शीस पै. श्वेत कैसे आवे है' ?
कहे सुज्ञ—'दाढ़ी सेती शीस-बाल जीर्ण होय'
'मस्तक पै कृष्ण, दाढ़ी श्वेत क्यों दिखावे है' ?
'नित धोवे दाढ़ी-बाल, तासे श्वेत केंस होय'
'जाके दाढी-मूँछ नाहि ?' 'मात-पक्ष जावे है' ।
प्रत्युत्तार तुरत ही दिया 'सूर्यमुनि' कहे
नृप-मन मुदित हो, दारिद गमावे है ।।२८।।

एक पण्डितजी बड़े बुद्धिमान थे। परन्तु उनसे लक्ष्मी रूठी हुई थी। पत्नी कहती—'आपकी बुद्धिमत्ता किस काम की ! हमारी पीडा तो ज्यों की त्यो बनी हुई है। दारिद्रय ने मानो हमारे यहाँ सदा के लिये डेरा डाल दिया है।'

पण्डितजी कहते—'देखो ! विद्या उद्यम से प्राप्त होती है और बुद्धि कार्य करने से विकसित होती है। परन्तु लक्ष्मी तो भाग्य से ही प्राप्त होती है।'

पत्नी चिढकर कहती—'उद्यम तो कुछ करते नही हो और भाग्य-भाग्य कहते रहते हो!'

पण्डितजी कहते—'नाराज क्यो होती हो। कभी बुद्धि के बल से भी दारिद्रय दूर होगा।'

एक दिन पण्डितजी राजधानी की ओर रवाना हो गये। वे राजसभा मे पहुँचे। राजा ने उन्हे पण्डित जानकर उचित सन्मान दिया। राजा ने पण्डितजी से यो ही पूछ लिया—'देखो पण्डितजी ! मेरे सिर के बाल तो सफेद हो गये। किन्तु दाढी के बाल काले है। ऐसा क्यो है ?'

पण्डित ने तत्काल उत्तर दिया—'राजन् ! सिर के बाल वृद्ध है और दाढी के बाल जवान हैं । सिर के बाल गर्भ से ही साथ मे आये हैं, जब कि दाढ़ी के बाल सतरह अठारह वर्ष की आयु में आये हैं। इसीलिये सिर के बाल पहले सफेद हो गये है ।'

'परन्तु पण्डितजी ! हमारे कोतवालजी के दाढी के बाल सफेद हो गये है और सिर के वाल काले हैं !'

पण्डित—'तो महाराज ! इसमे क्या आश्चर्य है। कोतवालजी के दाढी के बाल दिन मे न जाने कितनी बार धुलते है, जबकि सिर के बाल तो एकाध वार ही धुलते है। जो ज्यादा बार धोया जाएगा, वह जल्दी सफेद होगा ही।'

राजा—'पण्डितजी ! हमारे मंत्रीजी के तो दाढी-मूँछ साथ ही सफेद हो रहे है।' 'राजन् ! मत्रीजी जब चिन्तन करते है, तब वे दाढी पर हाथ फिराते जाते हैं। अत उधर सिर के बाल चिन्तन से पकते है तो इधर दाढी के बाल हाथ फेरने से सफेद होते जाते।'

राजा ने पण्डित को लज्जित करने के लिये कहा—'पर पडितजी ! आपके न दाढी है, न मूँछ ! ऐसा क्यो है ?' पण्डितजी बेधड़क बोले—'राजन् ! कोई सन्तान पिता की आकृति पर जाते हैं तो कोई माता की आकृति पर ! तो मैं माता की आकृति पर गया हू !'

राजा बडा प्रसन्न हुआ और पण्डितजी का दारिद्र्य दूर कर दिया।

शिक्षा—वस्तुत बुद्धि ही वैभव है। अत. बुद्धि को माँजते रहना चाहिये।



(२८) हाथ मल-मल बाल सब खसै हैं

शाह कहे मंत्री से यों-'क्यों न मेरे हाथ बाल ?'
'कृपानाथ ! दान देते बाल सब घसै हैं'।
'जो कि दान देवे नहीं, ताके बाल कैसे गये ?'
'लेते-लेते दान ताके, बाल सब नसै हैं'॥
'जो न लेते-देते ताके बाल है न हाथ मांही–
कहे 'सूर्य' यांको कहा अचरज दिसै है ?'
'जिन दान-पुण्य कर भव-लाभ लियो नांही,
यांते हाथ मल-मल बाल सब खसै हैं'॥२९॥

राजसभा मे मात्र राज्य या शासन से सम्बन्धित बाते ही नही होती थी। किन्तु कभी-गभीर तत्त्वचर्चा छिड जाया करती थी तो कभी हलके-फुलके विनोद के प्रसंग भी खडे हो जाया करते थे। राजा पृथ्वीपति की सभा मे भी ऐसे प्रसग आ जाया करते थे। राजा पृथ्वीपति बहुत ही न्यायी राजा था। उसका स्वभाव विविध रगी था। आज राजा बहुत प्रसन्न था। ऐसी स्थिति में वह कभी-कभी यो ही प्रश्न उछाल दिया करता था। उसने मंत्री से पूछ लिया–'मंत्रिन् ! मेरी हथेली मे बाल क्यो नही है ?' लोगों को लगा कि यह भी क्या प्रश्न है !

मन्त्री ने विना सोचे ही उत्तर दिया—'कृपानाथ ! यह बिलकुल ही ठीक है। आपकी हथेली मे बाल होने ही नही चाहिये। क्योकि आप बड़े दानी है। दान देते रहने के कारण आपकी हथेली के सव बाल घिस गये है।' राजा को चापलूसी पसन्द नही थी। उसे मन्त्री की बात सरासर चापलूसी लगी। लोग भी विचार करने लगे कि मन्त्री ने कैसी बात कहदी ! बाल हमारी हथेल्यियो मे भी नही है !

राजा ने आवेश में कहा—'मन्त्रि ! यह कैसी बात कर रहे हो तुम ! क्या कुछ सोचकर भी बोले हो कि यों ही बिना विचारे बोल दिये हो ? बाल तो जो दान नही देते हैं, उनके हाथ मे भी नही होते हैं !' मन्त्री तत्काल मुसकाता हुआ बोला—'यह भी तो ठीक है, महाराज । उनके हाथ मे भी बाल नही होने चाहिये । क्योकि वे दान लेते हैं । अतः उनकी हथेली के बाल दान लेते-लेते नष्ट हो गये हैं?' लोगो ने सोचा—अब मन्त्री ने हमारी ओर व्यंग्य का तीर मारा है । राजा को विचार हुआ कि यह मेरा दक्ष मंत्री कब से ऐसी बाते बनाने लग गया है ?

राजा ने मत्री की ओर तीव्र दृष्टि डालते हुए कहा—'अरे मत्रि ! क्यो बातें बना रहे हो ? जो न कुछ देते है और न कुछ लेते हैं, उनकी हथेलियो मे भी तो बाल नही होते हैं !' मन्त्री हँस पडा और बोला—'राजन् ? इसमे क्या आश्चर्य है ? उनके हाथो से बालो का गायब हो जाना स्वाभाविक ही है । क्योकि वे दान-पुण्य करके मनुष्य भव पाने का लाभ लेते नही हैं । अत. उन्हे पश्चाताप करके, बार-बार हाथ मलने पडते हैं ? फिर उनकी हथेलियो मे बाल रह ही कैसे सकते हैं ?' राजा आश्चर्य चकित थे कि मत्री ने सामान्य से प्रश्न को कितना सुन्दर मोड दे दिया ! लोग भी मंत्री की वाक्-पटुता से प्रभावित थे ।

राजा ने प्रसन्न होकर मत्री से कहा—'मत्रि ! तुम सचमुच में बुद्धिमान हो ! तुमने सामान्य प्रश्न को भी कितना शिक्षाप्रद बना दिया है ? तुम्हे क्या पुरस्कार दूँ ? सभी पुरस्कार छोटे पड रहे है ?'

मंत्री बोला—'आपकी कृपा ही सब से बडा पुरस्कार है, महाराज !'

शिक्षा—विचारक हो तो निःसार लगने वाली बात में से भी सार निकाल सकता है ।

(३०) पारस सम देह सुनी

कवि गयो नृप पास, सुनि के कृपण, फिर्यो,
बैठो बाग बीच, तभी-नृप चल आयो है।
'नृप का न देखू मुख'–तवो मुख ओटे कियो,
क्रोध कियो नृप तब कवि यों सुनायो है ॥
'पारस समान देह, सुनी मैने राजवी की
साँच है कि झूठ यह, निरणय ठान्यो है।
'लोह बने सोनो अब, सांच तो जनाय 'सूर्य'
नृप खुश होय तवो सोना को दिलायो है ॥३१॥

एक कविजी वड़े उत्साह से राजधानी मे आये, राजा से पुरस्कार पाने के लिये। परन्तु राजा वडा कृपण था। लोगो मे यहाँ तक वाते चलती थी कि प्रात काल मे इस कृपण राजा का मुँह देखना अच्छा नही है। कविजी जव प्रात काल मे राजा के पास जा रहे थे, तव उन्होने भी यह बात मुन ली। वे लौटकर बगीचे मे बैठ गये। वे भोजन की तैयारी करने के लिये तवे को साफ कर रहे थे। तभी अकस्मात् राजा भी उस बगीचे मे आ पहुँचा।

कविजी ने सुना कि राजा माहव इधर ही पधार रहे है। राजा विलकुल निकट आ गया था। कविजी वहाँ से उठकर जा नही सकते थे और वे राजा का मुँह भी देखना नही चाहते थे। उन्होने जल्दी ही मुँह के सामने तवा कर लिया। राजा ने यह दृश्य देख लिया। उसे वडा क्रोध आया। राजा ने सोचा–'मेरे सामने ही मेरा इतना वड़ा तिरस्कार ?'

राजा अपने स्थान पर पहुँचा और कवि को वुलवाया। कवि समझ गया। वह वड़ा चिन्तित हो गया। वह राजा के सन्मुख पहुँचा और हाथ जोड़कर खडा हो गया। राजा ने कड़क कर पूछा–

'कविजी ! तुमने मुझे क्या समझा है ?' कवि ने कम्पित स्वर से कहा—'नरेन्द्र, राजन् !' राजा ने दूने आवेश के साथ पूछा—'तो तुमने सुवह में क्या हरकत की थी ?' कवि ने लडखड़ाती हुई आवाज मे कहा—'मैनेऽऽ… मैने…क्या किया ?' राजा ने गर्जते हुए कहा—'तुमने मुझे देखकर, तवा ओट मे क्यों कर लिया था ?'

'वो तो राजन् ! वो 'तो…'कवि की बुद्धि वहुत तीव्र गति से कार्य कर रही थी। वह कह रहा था—'राजन् ! बात ऐसी है कि मैंने एक वात सुनी थी…' राजा गुर्राया—'हूँऽऽ…' कवि अविचलित स्वर में कह रहा था—'राजन् ! सुना था कि आपकी देह पारस के समान है—अरे ! आपकी दृष्टि ही पारस है। तो मेरा मन हो गया इस बात की परीक्षा करने का और इसीलिये मैंने वह तवा आपकी ओर कर दिया था । अब वह लोहे का तवा सोने का बने तो इस बात की सचाई प्रकट हो…'राजा का क्रोध विलीन हो गया। राजा को अपनी कृपणता के विषय मे प्रजा मे फैली हुई बातो का पता था। उसने सोच लिया कि इस कलङ्क को अब धो डालना ही अच्छा है। उसने कवि पर प्रसन्न होकर, उसे सोने का तवा बनवाकर दिला दिया।

शिक्षा—(१) किसी के प्रति उसके विषय में सुनी-सुनाई बातो के अनुसार उसे क्रुद्ध करने वाला व्यवहार नहीं करना चाहिये।

(२) संकट मे भयभीत न होकर बुद्धि से काम लेना चाहिये।

(३) किसी को सुधारना हो तो उसके सन्मुख उसके दूषण को इस प्रकार अभिव्यक्त करना चाहिये कि उसका परिणाम शुभ हो।



कोई की कडवो कभी, सुनना चहो न बात।
तब तो अपनी जीभ को, कड़वो करो न भ्रात !

(२९) छोटा भाई बड़े तात का

दोय भाई सभा बीच बैठे, ताको प्रश्न पूछे—
'कौन बड़े बाप और कौन छोटे बाप का?'
बड़ा पुत्र कहे—'सुनो, मैं हूं छोटे बाप ही का
पैदा हुआ, तात-उम्र लेखिये, हिसाब का?
जब छोटा भाई पैदा हुआ तब तात-आयु—
अधिक थी, याते छोटा भाई बड़े तात का।'
कहे 'सूर्य' खुश हुए, ऐसी बुद्धि पाय कर
कीजे परहित, जन्म सफल हो आपका ॥३०॥

एक ग्राम मे दो भाई रहते थे। दोनो मे बचपन से परस्पर बड़ा प्रेम था। परन्तु संसार का स्वरूप विचित्र है। आज जिनमे गाढा राग है, कल उनमे परस्पर तीव्र द्वेष भी हो सकता है। उन दोनो भाइयो मे भी कुछ खटपट होने लगी। उन्हे एक-दूसरे के प्रति घृणा होने लगी। जब वह घृणा परस्पर तकरार मे बदलने लगी, तब उन्हे अन्तिम समय मे कही गई पिता की बात याद आई। पिता ने मृत्युशय्या पर लेटे हुए उन्हे शिक्षा देते हुए कहा था—'जब तक तुम मे प्रेम रहे, तब तक तुम साथ-साथ रहना और जब तुम मे अंश मात्र भी अप्रीति जागे तो अलग हो जाना। मैंने सम्पत्ति के बँटवारे के विषय मे इस पत्र मे लिख दिया है। जब तुम्हे आवश्यकता हो, तब इसे राजा के सामने खोल लेना।' यह कहकर उन्हे एक लाक्षा-मुद्रित पत्र पिता ने दिया था।

वे दोनो उस मुद्रित पत्र को लेकर राजा के पास पहुँचे। उन्होंने सारी बात राजा से कह सुनाई। राजा ने उस पत्र की मुद्रा तुड़वाई। पत्र पढ़ा गया। उसमे लिखा था—'छोटे बाप के बेटे को व्यापार और व्यापार मे लगी सम्पत्ति का और बड़े बाप के बेटे को घर के कोष का

उत्तराधिकार प्राप्त हो और शेष चल-अचल सम्पत्ति दोनो में बराबर-बराबर बाँट दी जाय ।'

राजा ने उनसे पूछा—'तुम एक ही पिता की सन्तान हो ?' उन्होने कहा—'जी हाँ !' राजा ने वह लेख उनके हाथ मे दिया। उन्हे भी उसे पढकर आश्चर्य हुआ। राजा ने कुछ विचार करके कहा —'बड़े पुत्र को कोप का उत्तराधिकार मिले। क्योकि वह बडा है, इसलिये बडे बाप का है और छोटे पुत्र को व्यापार मे लगी हुई सपत्ति का उत्तराधिकार मिले, क्योंकि वह छोटा है, इसलिये छोटे बाप का है ?'

बडा भाई विचार मैं पड़ा हुआ था । उसने राजा की बात सुनकर सिर हिलाया। तब यह दृश्य देखकर राजा ने उससे कहा—'यदि तुम्हे इस विषय मे कुछ कहना हो तो तुम नि संकोच होकर कह सकते हो!' बडा भाई बोला—'राजन् ? अपराध माफ हो। मैं इस लेख का आशय इस प्रकार समझा हूँ कि मैं छोटे बाप का हूँ, क्योंकि जिस समय मैंने जन्म लिया था, उस समय पिताजी की आयु कम थी और छोटा भाई बडे बाप का है, क्योंकि जिस समय इसने जन्म लिया, उस सम.य पिताजी की आयु मेरे जन्म लेने के समय से अधिक थी। यद्यपि ऐसा अर्थ करने मे मैं घाटे मे रहता हू , तदपि मेरी समझ में यही आशय उचित है । क्योकि हमारी रुचि और वृत्ति के अनुसार ही पिताजी ने बँटवारा किया है।'

छोटा भाई राजा की बात सुनकर मुरझा गया था। परन्तु बडे भाई की बात सुनकर प्रफुल्लित हो गया ।

शिक्षा—'ऐसी बुद्धि····आपका' अर्थात् बुद्धि पाकर, दूसरे के हित मे ही उसे लगाना चाहिये । बुद्धि का सदुपयोग करने से ही मानव-जीवन सार्थक हो सकता है ।



(३०) पारस सम देह सुनी

कवि गयो नृप पास, सुनि के कृपण, फिर्यो,
बैठो बाग बीच, तभी-नृप चल आयो है।
'नृप का न देखूँ मुख'—तवो मुख ओटे कियो,
क्रोध कियो नृप तब कवि यों सुनायो है ॥
'पारस समान देह, सुनी मैंने राजवी की
साँच है कि झूठ यह, निरणय ठान्यो है।
'लोह बने सोनो अब, सांच तो जनाय 'सूर्य'
नृप खुश होय तवो सोना को दिलायो है ॥३१॥

एक कविजी बडे उत्साह से राजधानी मे आये, राजा से पुरस्कार पाने के लिये। परन्तु राजा बडा कृपण था। लोगो मे यहाँ तक बाते चलती थी कि प्रात काल मे इस कृपण राजा का मुँह देखना अच्छा नही है। कविजी जब प्रात काल मे राजा के पास जा रहे थे, तब उन्होने भी यह बात सुन ली। वे लौटकर बगीचे मे बैठ गये। वे भोजन की तैयारी करने के लिये तवे को साफ कर रहे थे। तभी अकस्मात् राजा भी उस बगीचे मे आ पहुँचा।

कविजी ने सुना कि राजा साहब इधर ही पधार रहे है। राजा बिलकुल निकट आ गया था। कविजी वहाँ से उठकर जा नही सकते थे और वे राजा का मुँह भी देखना नही चाहते थे। उन्होने जल्दी ही मुँह के सामने तवा कर लिया। राजा ने यह दृश्य देख लिया। उसे बडा क्रोध आया। राजा ने सोचा—'मेरे सामने ही मेरा इतना बडा तिरस्कार ?'

राजा अपने स्थान पर पहुँचा और कवि को बुलवाया। कवि समझ गया। वह बडा चिन्तित हो गया। वह राजा के सन्मुख पहुँचा और हाथ जोडकर खडा हो गया। राजा ने कडक कर पूछा—

'कविजी ! तुमने मुझे क्या समझा है ?' कवि ने कम्पित स्वर से कहा—'नरेन्द्र, राजन् !' राजा ने दूने आवेश के साथ पूछा—'तो तुमने सुवह मे क्या हरकत की थी ?' कवि ने लडखडाती हुई आवाज मे कहा—'मैंनेऽऽ····मैने····क्या किया ?' राजा ने गर्जते हुए कहा—'तुमने मुझे देखकर, तवा ओट मे क्यों कर लिया था ?'

'वो तो राजन् ! वो 'तो····'कवि की बुद्धि बहुत तीव्र गति से कार्य कर रही थी। वह कह रहा था—'राजन् ! बात ऐसी है कि मैंने एक वात सुनी थी····' राजा गुर्राया—'हूँऽऽ····' कवि अविचलित स्वर में कह रहा था—'राजन् ! सुना था कि आपकी देह पारस के समान है—अरे ! आपकी दृष्टि ही पारस है। तो मेरा मन हो गया इस बात की परीक्षा करने का और इसीलिये मैंने वह तवा आपकी ओर कर दिया था। अब वह लोहे का तवा सोने का बने तो इस बात की सचाई प्रकट हो····'राजा का क्रोध विलीन हो गया। राजा को अपनी कृपणता के विपय मे प्रजा मे फैली हुई बातो का पता था। उसने सोच लिया कि इस कलङ्क को अब धो डालना ही अच्छा है। उसने कवि पर प्रसन्न होकर, उसे सोने का तवा बनवाकर दिला दिया।

शिक्षा—(१) किसी के प्रति उसके विषय में सुनी-सुनाई बातो के अनुसार उसे क्रुद्ध करने वाला व्यवहार नही करना चाहिये।

(२) सकट मे भयभीत न होकर बुद्धि से काम लेना चाहिये।

(३) किसी को सुधारना हो तो उसके सन्मुख उसके दूषण को इस प्रकार अभिव्यक्त करना चाहिये कि उसका परिणाम शुभ हो।



कोई की कडवी कभी, सुनना चहो न बात।
तब तो अपनी जीभ को, कड़वी करो न भ्रात !

वाणी का विचार [३१ से ५१]

[क्रम की समझ—]

३१–३२ वाणी से व्यक्तित्व की पहचान. स्व के लिये दुःखद स्व-वचन—३३, अविचारित वचन ३४–विवेक-शून्य-वचन. ३५–ठग वचन. ३६-३७-३८ वृथा वचन. ३९–४० सावद्य वचन. ४१–असत्य वचन.	अप्रशस्त वचन
४२–निर्भय वचन, ४३–४४ वचन-वचन में भेद. ४५–मधुर-वचन. ४६–बिगड़ी बात बनाने वाले वचन.	प्रशस्त वचन
४७–४८–४९–५० न्याय के ठेकेदार. ५१–सच्चा न्याय	

[अप्रशस्त वचन के अनेक प्रकार होते हैं। अप्रशस्त वचन के त्याग से प्रशस्त वचन के प्रयोग की भूमिका बनती है। लेखन और न्याय भी वचन-आश्रित है। इसलिये वाणी के विचार में इनका विचार भी प्रासंगिक है। वाणी के विचार में अप्रशस्त वचन से निवृत्ति और प्रशस्त वचन की प्रवृत्ति की प्रेरणा की गई है।]

(३१) कैसे जाना नाम ? (कवित्त)

'कहे मुझे मूर्ख सब'—मन में विचारे मूढ़,
कोई नां पिछाने रहूं ऐसे ठौर जाय के।
गयो देश छोड़, प्यास लगी, जलयंत्र-पास
पीवे, नहि-नहि करे सिर को हिलाय के ॥
पनिहारी कहे—'मूर्ख छोड़ जलधार, हट'
'कैसे जाना नाम आया विदेश लिधाय के।'
नारी कहे—'तेरा नाम कर्त्तव्य से जाने सब'
कहे 'सूर्य मुनि' काम छिपे नाँ छिपाय के ॥३२॥

एक लड़के की मति जड थी । उसके परिवार के लोग उसे 'रे जड़!' 'रे मूर्ख!' 'रे मूढ!' आदि सम्बोधनों से ही पुकारा करते थे। क्योंकि प्राय उसके कार्य ही ऐसे हुआ करते थे। जब घर के लोग ही उसे 'मूर्ख' कहते थे, तब दूसरे लोग उसे उसको सही नाम से क्यों पुकारते ? उसे सारा गाँव ही मूर्ख कहता था। उसका नाम ही अब मूर्ख हो गया।

वह बुद्धि से जड था। परन्तु हृदय तो उसके भी था ही। उसे 'मूर्ख' नाम मर्मान्तिक पीडा पहुँचाता था। उसने बहुत प्रयत्न किया कि स्वजन या परजन कोई भी उसे इस नाम से न पुकारे। परन्तु सब श्रम व्यर्थ हुआ। आखिर उसने विचार किया—मुझे अब इस गाँव में रहना ही नहीं। मुझे ऐसे स्थान पर चले जाना चाहिये कि जहाँ मुझे कोई न पहचानता हो।

वह घर से चुपचाप रवाना हो गया। बहुत दूर चला गया अपने ग्राम से। एक ग्राम के समीप आया। वहाँ उसे कोई भी नही पहचानता था। उसे प्यास लग रही थी। पास ही एक कुआ था। उस पर रहँट चल रही थी। वह वहाँ पानी पीने के लिये गया। जहाँ से जल-धार गिर रही थी, वहाँ हाथ धर कर और हाथ पर मुँह लगा कर

पानी पीने लगा। पर्याप्त पानी पी लिया तो पानी पिलाने से इंकार करने के लिये वह सिर हिलाने लगा। एक पनिहारी पानी भरने आई थी। वह उसके हटने का इन्तजार कर रही थी। परन्तु जब उसने उसे सिर हिलाते हुए देखा, तब उसने कहा—'हटो मूर्ख ! यह जलधारा छोडो।' यहाँ अपरिचित स्थान में भी 'मूर्ख' सम्बोधन सुनकर, वह आश्चर्य-चकित रह गया।

उसने आश्चर्य से कहा—'खैर, मैं मूर्ख सही। परन्तु तुमने कैसे जाना कि मैं मूर्ख हूं ?' पनिहारी ने कहा—'तुम्हारे काम से !' पनिहारी को कुछ शका हुई तो उसे उसका हाल पूछा। उसने अपनी जीवन-गाथा सुना दी। पनिहारी ने समझा-बुझा कर, उसे वापिस उसके घर भेजा।

शिक्षा—(१) मूर्ख कहीं भी छिपे नहीं रहते हैं।

(२) मनुष्य की पहचान उसके कार्य से हो जाती है।

(३) मनुष्य को यदि अपकीर्ति पसन्द न हो, तो इधर-उधर भागने की अपेक्षा अपने जीवन में ही सुधार करना चाहिये।



(३२) नैन बिना यॉने कहे नाम

पंथ में फकीर अंधा देख बादशाह पूछे—
'कहो शाह !' 'कहो बादशाह !' 'कहा काम है ?'
'कहो तुम फकीरजी ?' 'कहो तुम वजीरजी ?'
'अहो अंधा ?' 'कहो बाँदा ?' ऐसे कहे नाम है ॥
बादशाह, वजीर, गुलाम तीनों का यों क्षट,
नैन बिना याँने कैसे कहे नाम-ठाम है।
ऊँच-नीच मालूम हो, वाणी के उचार ही ते,
कहे 'सूर्य' वानी में ही दुख वा आराम है ॥३३॥

एक फकीर जन्म से ही अन्धा था। परन्तु वह बडी विचक्षण बुद्धिवाला था। लोग उसकी बुद्धि से प्रभावित थे। वह वचन पर से ही पुरुषों की परीक्षा कर लेता था। वह अकिञ्चन फकीर चौराहे पर एक वृक्ष के नीचे बैठा रहता था। वह किसी से कुछ माँगता नही था""उसे बिना मागे ही जो कुछ मिल जाता था, उसीसे अपनी गुजर कर लेता था।

एक दिन बादशाह और वजीर वेश बदल कर, कुछ टोह लेने के लिये नगर मे निकले थे। वे अलग-अलग राहो पर घूम रहे थे। बादशाह उस चौराहे से गुजरा। उसे फकीर को देखकर कौतूहल हुआ। वह फकीर के पास आया। उसने फकीर से कहा—'अहो शाहजी ?' फकीर ने चट कहा—'कहो, बादशाह ! क्या काम है ?' 'कौन बादशाह ?' 'आप है हमारे बादशाह !' बादशाह ने देखा कि लोगों की नजरे उसकी ओर उठ रही है। अत. उसने वहाँ से खिसक जाना ही उचित समझा।

कुछ क्षण बाद दूसरे रास्ते से वजीर भी उसी चौराह पर पहुँचा। वह फकीर को देखकर चौका और उसने उसके पास जाकर, पूछा—'कहो, फकीरजी !' वह तो मानो उसे पहचानता हो, इस प्रकार बिना कुछ विचार किये ही बोला—'हाँ, वजीरजी ! क्या फरमाते है ?' 'कौन हैं वजीर !' 'आप !' 'अच्छा-अच्छा' कहकर, वजीर आगे बढ गया।

वहाँ तीसरे रास्ते से बादशाह का एक गुलाम भी आ निकला। वह भी किसी पूर्व सकेत के अनुसार उस चौराहे पर आया था। उसने इधर-उधर देखा और अधे फकीर के पास आकर पूछा—'ऐ बे अन्धा !' फकीर ने अपनी अधी आँखो को टमटमाते हुए कहा—'क्या है बाँदाजी ! आप किस पर नाराज हो रहे हो ?' गुलाम—'तेरे बाप पर'—यो कहता हुआ वहाँ से चला गया।

कुछ दूर पर एक व्यक्ति बैठा था। उसने सारा दृश्य देखा था। उसे आश्चर्य हुआ। इसने कमाल कर दिया। आँखोवाले जो

काम नही कर सकते है, वह काम इसने कर दिखाया। वह शकित मन से फकीर के पास पहुँचा। उसने उससे पूछा—'बाबा ! आनन्द मे तो हो !' फकीर—'हाँ, भैया !' व्यक्ति—'यहाँ क्यो बैठे है ?' फकीर ने कहा—'शंका मत करो। जो आप सोचते हो, वह मैं नही हूं ?' व्यक्ति—'कौन नही हैं ?' फकीर—'जो आप हैं।' व्यक्ति—'कौन हूं मैं ?' फकीर—'जासूस। और मालूम पडता है—नये-नये ही हो !' मैंने बादशाह आदि को उनके वचन और बोलने के लहजे आदि से पहचाना है........' व्यक्ति—'अच्छा, बाबा ?'—यो कहकर वहाँ से रवाना हो गया।

शिक्षा—(१) 'ऊँच-नीच....... ....ते' अर्थात् वाणी के उच्चारण मे ही व्यक्ति की पहचान हो जाती है। अत सस्कार से युक्त ही वाणी बोलना चाहिये।

(२) 'बानी... आराम है' अर्थात् व्यक्ति मधुर वाणी से सुख को और कठोर वाणी से दु ख को आमन्त्रित करता है।

(३) जो दूसरे को जिस भाव से और जिस रूप मे सम्बोधित करता है, उसी रूप मे वह भी सम्बोधित होता हैं।



(३३) बानी के विचार बिना

भील देख नृप-दूंद, कहे—'जय दूंद सा की'
दियो नृप खोडे ताको, पुत्र सुन आयो है।
'क्या है काम दूंद मेरे, पड़ो तरवार तापै'
राय क्रुद्ध होय ताको खोड़े में रखायो है।।
नारी सुन आई तब, राणी से अरज करी—
'आप पति-पुत्र जान उन्हें तो छुडाओ हे !'
ताको कैद डारी 'सूर्य' मंत्री छोड़े मूढ़ जान,
बानी के विचार बिना कौन सुख पायो है ।।३४।।

एक भील राजधानी मे प्रवेश कर रहा था। राजा की सवारी आ रही थी। बड़ी हलचल थी। भील एक तरफ खड़ा हो गया।

वंदीजन राजा के यशोगान कर रहे थे। प्रजा महाराजा की विशेषता का उल्लेख करते हुए जय-जय कार कर रही थी।

भील एकटक राजा को देख रहा था। उसकी दृष्टि रह-रहकर राजा साहब की तोंद की ओर जा रही थी। उसे लगा कि लोग राजा साहब की खास विशेषता की ओर ध्यान ही नही दे रहे है। वह बुलन्द आवाज मे बोला 'जय हो तोंद साहब की।'

उसकी आवाज में लोगों की आवाज दब गई। उसने दूने उत्साह से फिर जयकार किया। सब मौन हो गये। पुरुष मूँछों में हँसे तो नारियाँ घूँघटो में मुसकायी। राजा को बड़ा क्रोध आया। उसने भील को जेल मे डलवा दिया।

यह बात भील के बेटे ने सुनी। वह ज्यों-त्यों करके राजा के पास पहुँचा और बोला—'हे राजा! मेरा पिता कुछ नहीं समझता है। उसे छोड़ दो। हमे क्या मतलब है आपकी तोंद से! चाहे उसकी जय हो, चाहे उसपै तलवार के झटके पडे?' राजा ने रुष्ट होकर उसे भी कैद मे वन्द कर दिया।

भीलनी रोती-धोती रानी के पास पहुँची और संविनय कहने लगी—'रानीजी! मेरा भील गँवार है। मेरा बेटा भोला है। उन्हे आप छुडा दो। मेरा पति या बेटा मत समझो। अपना ही पति या बेटा समझकर छुडा दो।' रानी ने नाराज होकर मुँह फेर लिया। तब भीलनी ने दुःख भरे स्वर में कहा—'अरे रानीजी! भील को न छोडो तो कोई बात नही। पर बेटे को तो छुडा दो। वह मेरा बाखडा बेटा है।' रानी ने आश्चर्य से पूछा—'बाखडा बेटा कैसा होता है?' भीलनी बोली—'रानीजी! जैसे राजाजी मर जायँ और आप नातरा कर ले तो यहाँ से जिस बेटे को साथ ले जायँ, वह बाखडा बेटा होता है! ऐसा ही मेरा बेटा···' यह बात पूरी होने के पहले ही—रानी के नेत्र

लाल हो गये। भीलनी की भी वह दशा हुई। मन्त्री ने जब सारा हाल जाना, तब उन्हे मूर्ख समझकर छोड़ दिया।

शिक्षा—अपने अच्छे भावो को अभिव्यक्त करने के लिये शब्द भी उपयुक्त होने चाहिये। 'बानी के विचार बिना कौन सुख पायो है।'

---

(३४) तुम मृत देह काज शाल करी

एक बुनकर ने जो कम्बल बनाया तामें
तीन मण खांड खाई—'मीठी जीभ थायगा'।
भेंट करे जाय, नृप लक्ष रुपै देन लगे,
कहे नृप-'वस्त्र यह कौन काम आयगा?'
'तुम मृत देह-काज, ओढवे को शाल करी,
माप से बनाया मैने, पूरण सोभायगा।'
सुन नृप दंड दियो, कहे 'सूर्य मुनि' ऐसे
वाणी के विचार बिना कौन सुख पायगा?॥३५॥

एक बुनकर था। वह अपनी कला मे दक्ष था। परन्तु वह बहुत कटु भाषी था। जब वह कपडे बुनकर बेचने जाता, तब उसके द्वारा बने हुए वस्त्रो को कोई नही खरीदता। उसकी पत्नी, उसके भाई, बेटे-बेटी आदि सभी उसे समझाते हुए कहते—'आप मीठी वाणी बोला करो। आपके कडवे बोलने से ग्राहक टूट जाते है!' पर वह कहता—'रहने भी दो! तुमने लोगो की आदत बिगाड़ दी है।'

वह बुनकर बढ़िया से बढिया वस्त्र बुनकर बाजार में ले जाता। परन्तु कोई भी उसके पास के वस्त्र देखना भी नही चाहता। एक दिन वह विचार मे पड़ गया—'ये लोग मेरी कला का आदर करना नही चाहते है। खैर, कोई बात नही! मुझे भी इनकी परवाह नही है। यहाँ के राजा ही मेरी कला की कद्र करेगे।'

बुनकर ने ताना-बाना तैयार किया। वह शाल बुनने लगा। उसने यह विचार किया कि अब मुझे अपनी जबान भी मीठी बनाना है। वह शाल बुनते समय एक बर्तन मे शक्कर रख लेता और बुनते समय उसे फाँकता जाता। घर के लोग उसे कहते—'यह क्या कर रहे हो ?' तो वह कहता—'मुझे अपनी जबान मीठी करनी है न !' इस प्रकार उसके बुनने का कार्य चलता रहा। उसने उसे बुनने मे अपनी सारी कला लगा दी और बुनते हुए वह तीन मन शक्कर फाँक गया। शाल तैयार हो गई। उसकी बनावट देखकर, वह स्वय ही मुग्ध हो गया और घर के लोग भी चकित रह गये।

वह शाल लेकर राजसभा मे पहुँचा और उसने वह शाल राजा को भेट कर दी। राजा खुश हो गया जिसने भी वह शाल देखी वही उसकी कला पर मुग्ध हो गया। राजा ने उसे एक लाख रुपये पुरस्कार देने का आदेश दिया। परन्तु राजा ने अनायास ही पूछा लिया —'तुमने यह कम्बल तो बहुत सुन्दर बनाया। परन्तु यह मेरे किस काम आयेगा ?'

हँसकर बुनकर बोला—'अरे महाराज! मैंने दूर की बात सोचकर यह वस्त्र बनाया है। कोई अमर तो है नही। आपको भी एक दिन तो मरना होगा। उस दिन शव पर औढाने के लिये वस्त्र की आवश्यकता तो रहेगी ही न ! बस मैंने उस दिन के लिये ही तो इस शाल का निर्माण किया है। आप इसे सम्हाल कर रखे' ......'राजा ये वज्र से वचन सुनकर नाराज हो गया और उसे पुरस्कार के बदले दण्ड मिला।

तीन मन शक्कर भी जबान को मीठी न बना सकी।

शिक्षा—(१) कटु भाषी मनुष्य तिरस्कृत होता है।
(२) बाहरी उपायो से जबान मीठी नही हो सकती है।
(३) हृदय की मधुरता ही भाषा मे मधुरता घोलती है।
(४) 'वाणी ......पायगा' विवेक-विहीन वाणी दु ख का हेतु बन जाती है।

(३५) भरम्यो नादान है

उद्यमी नौकर देख कृषीक के यहाँ, एक--
सेठ कहे--'चल मेरे घर सुख-ठान है।'
'सुखे रहूं, पूनम-पूनम खूब खीर खाऊँ'
कहे सेठ--'पूनम-पूनम लंबान है॥
मेरे घर दीवाली पे दीवाली, नजीक आती,
खाओ खीर, करो मौज'--भरम्यो नादान है।
छुड़ायो कृषीक-गृह, कहे सूर्य' ऐसे दुष्ट,
आप-मतलब काज, करे पर-हान है॥३६॥

एक व्यापारी घूमता हुआ एक किसान के यहाँ चला गया। उसने वहाँ एक नौकर देखा। उसकी उद्यम शीलता को देखकर, वह वडा राजी हुआ। उसने सोचा—'यदि यह मेरे यहाँ नौकरी करे तो कितना अच्छा! यह मेरे कई काम निवटा सकता है। लगता है-यह भोला है?' उसने उस नौकर से पूछा—'क्यो भाई! तुम मेरे यहाँ नौकर रह सकते हो!' वह वोला—'मेरी तो नौकरी लगी हुई है!' व्यापारी—'यहाँ तुम्हे क्या मिलता है?' नौकर—'मैं तो यहाँ वडे सुख मे हूँ। सुवह मे सीरामणी। दोनो समय भोजन। पहनने को वस्त्र और पूनम-पूनम को मनभर के खाने को खीर। और क्या चाहिये?'

व्यापारी ने देखा—नौकर वहुत ही भोला है। उसने कहा—'वस, पूनम-पूनम ही खीर खाते हो! ओ हो! एक पूनम के वाद दूसरी पूनम कितनी देर से आती है। मेरे यहाँ तो दीवाली पै दीवाली खीर खाना। यह दीवाली गई, फिर वह दीवाली आई! खूव खीर खाना। खूव मौज करना।'

नौकर व्यापारी के हाव-भाव और मुख मुद्रा से वडा प्रभावित हो गया। उसने समझा-सचमुच पूनम रो पूनम देर मे ही आती होगी

और दीवाली जल्दी ही आती होगी। उसने किसान के यहाँ का काम छोडा और व्यापारी के यहाँ आ गया। आ तो गया, पर उसे वहुत देर से पता लगा कि पूनम से दीवाली तो बहुत देर से आती है! फिर झगड़ा करने से होता भी क्या?

सच है–दुष्ट मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये, दूसरो की हानि करने मे नही हिचकिचाते हैं।

शिक्षा—(१) अति भोला होना अच्छा नही है! भोला व्यक्ति सासारिक व्यवहार मे भी हानि उठाता है और धर्म कार्य मे भी धर्म-परीक्षा नही कर पाने के कारण चिर काल तक दु ख पाता है।

(२) अपने लाभ के लिये दूसरे की हानि नही करना चाहिये।

(३। अज्ञानी व्यक्ति ही भ्रम मे पड़ता हैं। अत अज्ञान अन्धेरे को दूर भगा देना चाहिये।



(३६) डींग मत हाँको

युद्ध पूर्ण होने बाद आके सेनापति पूछे—
'कोनी क्या बहादुरी? सो, अपनी सुनाई है।
कहा एक सिपाई ने–'मैने एक दुश्मन का
काट डाला एक पांव हिम्मत जताई है'।
जनरल बोला–'अरे! सिर क्यो न काटा तूने,
पांव काटे लाभ कौन? नाहक बढ़ाई है'।
'शिर तो पहले ही कटा पड़ा था साहिबजी!'
कहे 'सूर्य' यामें कहा वीरता बताई है ॥३७॥

रणभूमि में घमासान युद्ध हुआ था। आखिर मे सेनापति की सूझ-बूझ और सैनिको की वीरता से आक्रामको को राज्य के बाहर

खदेड दिया गया। राजधानी मे विजयोल्लास छा गया। योद्धाओं का खूब सत्कार हुआ।

एक दिन सेनापति और कुछ सैनिक, अवकाश के समय मे वार्तालाप कर रहे थे। युद्ध के समय के प्रसङ्गो की चर्चा चल पडी। सैनिक अपने-अपने अनुभव व बहादुरी सुना रहे थे। एक सैनिक बोला-'मैने जो घनघोर तीरों की वर्षा की, कि जिससे अन्धेरा छा गया और शत्रु तो पीठ दिखाते ही बना!'

दूसरा बोला—'सेनापतिजी! मैने ऐसी गदा चलाई कि शत्रु धूल चाटने लगे!'

तीसरा बोला—'हमने भी कम काम किया है क्या? हमारी तलवार तो कालिका की जीभ के समान लपलपा रही थी।'

एक सैनिक, जो एक किनारे बैठा हुआ था, बड़े जोश-खरोश के साथ बोला—'सेनापतिजी! हम भी क्या कम है? कैसे थे हमारे पूर्वज? भीम-अर्जुन के अवतार थे! हम भी तो उन्ही के वशज है। हमने ऐसी तलवार चलाई कि सामने वाले के पाँव खप्प-से काट डाले!'

सेनापति आश्चर्य से बोले—'ऐ! तुमने यह क्या किया? पैरो को तुमने क्यो काटा! सिर को ही क्यो नही उडा दिया?'

सैनिक मुँह बनाकर बोला—'सिर को कैसे काटता, साहब! सिर को तो मेरे किसी भाई ने पहले से ही काट दिया था, भला!'

यह बात सुनकर सभी ठहाका मारकर हँस पडे।

शिक्षा—'यामे कहा वीरता बताई है' किसी से स्पर्द्धा करने के लिये, वृथा डीग नही हाँकना चाहिये। अपनी बहादुरी बताने जाकर कायरता ही प्रकट कर बैठते हैं-गप्प लडाने वाले लोग?



धनी ईंट के महल में, माने सौख्य अगाध।
निर्धन मिट्टी-घर सुखी, सुखी राख मे साध॥

(३७) पेले खेत-टेक्स तो चुकाओ

दोय जने मिले, ईख बोने का विचार किया,
एक कहे–'ईख पाके, खाऊँगा मै तोर के।'
दूजो कहे–'तुझे नहि लेने दूँगा रोज-रोज'
बात ही में मारा-मारी, हुआ अति शोर के ।।
हाकिम के पास जाय, निज वीती कही कथा,
कहे हँसी हाकिम यों–'करो मत रोर के ।
'पेले खेत-टेक्स को चुकाओ, फिर न्याय होगा'
कहै 'सूर्य' होंस उड़े, गये मुँह मोर के ।।३८।।

दो भागीदार किसान वार्तालाप कर रहे थे । कभी वे अतीत में रम जाते, तो कभी वर्तमान की परिस्थितियो की चिन्ता करते और कभी भविष्य की योजनाएँ बनाते । कभी दोनों की राय एक होती तो कभी दोनों एक-दूसरे से विरोधी विचार व्यक्त करते । एक अचानक ही बोला—'भाई रे ! इस वर्ष तो मुझे गन्ना बोने की इच्छा है ।' दूसरा बोला—'अच्छा रे ! तब तो बहुत अच्छा रहेगा । हम भी लाभ मे ही रहेगे ।' पहला दूसरे को घूरते हुए बोला—'गन्ना बोएँगे तो तुम ...तुम कैसे लाभ मे रहोगे !' दूसरा बोला—'रोज-रोज सुबह मे खाने को मिलेगा तो शरीर में कुछ ताकत ही आयेगी ।' पहला तीखे स्वर मे बोला—'क्या कहा ? क्या तुम रोज-रोज खेत से गन्ने तोड-कर खाओगे ?' दूसरा बोला—'तो क्या हो गया ? क्या रोज गन्ने नही खाने दोगे ?' पहला झल्लाकर बोला—'हाँ ! नही खाने दूँगा !' दूसरा भी तैश से बोला—'कैसे नही खाने दोगे ? मैं जबर्दस्ती खाऊँगा । मेरा भी हक है । क्या मे भागीदार नही हू ?' पहला क्रोध से बोला—'भागीदार हो तो क्या हो गया ? खेती करना है कि घर लुटाना है ?' दूसरे को भी क्रोध आ गया । वह जोर से बोला—'क्या कहा ? मै क्या तुम्हारा दुश्मन हू, जो तुम्हारा घर लूट लूँगा !'

विल्ली के गले में घण्टी बांध देना चाहिये, जिससे हमें उसके आने की सूचना मिल जाए।'

सब बड़े खुश हुए। कहने लगे—'हाँ ! यही ठीक है।'

जब कौलाहल शान्त हुआ तब एक वृद्ध चूहे ने कहा—'पर बिल्ली के गले मे घण्टी बांधने कौन जाएगा !'

सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। फिर एक-दूसरे की मजाक करने लगे। किसी ने कहा—'बिल्ली आ रही है !'

दूसरे क्षण वहाँ कोई नहीं था।

शिक्षा—बात से यो कहा काम सीझिये'—अपनी शक्ति मे बाहर की बातें करने से कार्य की सिद्धि नही होती है।



(३९) कलम नहीं छुरा है

गिर गई कलम वकील की बजार बीच
देख एक बाल लई, जरा नहि डरा है।
'अरे ओ ! वकील ! यह गिरी है तुम्हारी छुरी'
कहा यो वकील—'तू तो नरपशु निरा है ॥
'कलम को छुरी बतलाते शरम न आई !'
'गुस्सा कीजे मत मैने कहा नहि बुरा है।
कहे 'सूर्यमुनि' याने कितनो के गले काटे,
छुरी नहीं वकील जी ! ये तो बड़ा छुरा है'। ४०॥

एक नगर के नामी वकील। वे खरे-खोटे सभी प्रकार के केस लेते थे और इतने समर्थ वकील थे कि खोटे केस को भी खरा बना देते थे।

एक दिन वे बाजार से गुजर रहे थे। उनकी जेब से उनका

पेन अकस्मात् गिर गया। एक लडके ने उनके पेन को गिरते हुए देखा। वह लडका बडा मुँह फट था। उसने वकील की पेन हाथ में ले ली और दौडता हुआ निर्भयता के साथ वकील के पास पहुँच गया और बोला—'अरे वकील साहब ! जरा ठहरो तो !' वकील ने पीछे मुड़कर देखा। लडके ने उनकी ओर पेन बढ़ाते कहा—'लीजिये, यह आपकी छुरी गिर गई है ?'

वकील साहब झल्लाकर बोले—'कैसा बेवकूफ लडका है ! तुझे कलम और छुरी की भी पहचान नही है जो कलम को छुरी कहता है। कुछ शर्म भी है कि नहीं !'

लडका बेधड़क बोला—'वकील सा'ब ! मैं झूठ थोडे ही कह रहा हूं। आपने इस कलम से कितने ही सच्चे व्यक्तियो के गले काटे होंगे ? कितने सच्चे व्यक्तियों का जीवन इस पेन के झटके से बरबाद हुआ होगा ? मैं सच्ची बात कहने मे क्यो शरमाऊँ वकील सा'ब ? मेरी दृष्टि मे यह कलम छुरी ही नही बहुत बड़ा छुरा है ?'

वकील साहब पर मानों उस समय घडो पानी पड़ गया।

शिक्षा—(१) वकील, सेठ या लेखक कोई भी हो, उन्हें—'हमारी लेखनी, लेखनी ही है, छुरी तो नही बन रही है' यह सोचना चाहिये। जिस लेखनी से अधर्म का पोषण हो और धर्म का नाश हो—वह लेखनी भयंकर शस्त्र है।

(२) भर जंगल में लूटता, कोली ठाकर भील।
भर नगरी में लूटता, वेश्या वैद्य वकील॥



इस प्रकार दोनों मे तू-तू, मै-मैं होने लगी। वातों से हाथो तक नौबत आ गई। उस समय उधर एक आरक्षक निकला। उसने दोनो को लडते हुए देखकर पकड लिया और आरक्षी-केन्द्र मे मुख्य आरक्षक के सन्मुख उन्हे खडे कर दिया। दोनो जोर-जोर से अपनी-अपनी वात सुनाने लगे। मुख्य आरक्षक ने उनकी वात सुनी तो उसे हँसी आ गई। वह हँसता हुआ बोला—'अब शोर वन्द करो ! तुम्हारा फैसला अभी कर देंगे ? परन्तु तुमने गन्ने के खेत का कर अभी तक नही चुकाया है। पहले वह कर चुका दो। फिर दूसरी वात !' दोनों के होश उड़ गये। पहला बोला—'पर साहव ! अभी खेत बोया ही कहाँ है ?' मुख्य आरक्षक आचर्श्य का अभिनय करते हुए बोला—'तुमने अभी तक गन्ना नही वोया है ? तो फिर लड़ क्यो रहे हो !' दोनो किसान यह वात सुनकर हँस पडे और वोले-'हो गया हमारा न्याय !'

दोनो हँसते हुए वहाँ से रवाना हो गये।

शिक्षा—(१) मनुष्य को वृथा वार्तालाप मे नही लगना चाहिये।

(२) वात-वात मे क्रोध नही करना चाहिये।

(३) वातो मे आत्म भान नही खोना चाहिये।

(४) प्राय वृथा कल्पित वाते ही अधिकाश झगडो में मूल मे रहा करती हे। अत झगडो को महत्व नही देने मे ही बुद्धिमत्ता है।



(३८) वातों से काम नहीं बनता

आपस मे बैठ सभी मूषो ने सलाह कीनी
'बिल्ली को पकड़कर पिंजरे धरीजिये'।
कोई कहे—'नख तोड़ें' कोई कहे—'दाँत भाँजें'
एक कहे—'गले माँहि घण्टा डाल दीजिये'॥

एक वृद्ध मुख मुसकाय बोले-'कहो प्यारे।
बिल्ली गले घण्टा कौन डाले ? सुन लीजिये'।
यह बात सुन सभी ही-ही कर रहे हँसी
कहे 'सूर्यमुनि' बात से यों कहा काम सीझिये ॥३९॥

चूहे बिल्ली से बडे परेशान थे।

वे चिन्तित थे। बिल्ली रात-दिन उनके वंश को समाप्त करने पर तुली हुई थी।

चूहों ने इस समस्या का समाधान पाने के लिये विचार किया। आखिर कुछ नवयुवक चूहो ने इस सङ्कट से पार पाने के उपाय की तलाश के लिये चूहो की बृहत्सभा बुलाने का निर्णय किया और एक निश्चित दिन निश्चित स्थल पर चूहे इकट्ठे हो गये।

मूषकराज खडे हुए और उच्च स्वर से बोले—'महानुभावो ! हम पर बडा संकट आ पडा है। एक बिल्ली अपनी जाति के नाश पर तुली हुई है। हम इस सकट से कैसे ऊबरें ? इसका उपाय सोचना है। आप अपने-अपने विचार प्रकट कीजिये।'

एक चूहा बोला—'इसमे भी क्या विचार करना है। बिल्ली को पकडकर, पिञ्जरे मे बन्द कर देना चाहिये-यही अच्छा उपाय है।' दूसरा चूहा—'कहाँ से लाएँगे पिंजरा और कैसे बन्द करेंगे उसमे बिल्ली को ? अच्छा उपाय तो यह है कि उसके नख तोड डालना चाहिये।'

तीसरा चूहा—'नख तोडने से क्या होगा ? खाती तो वह दाँतों से है। बस उसके दाँत तोड डालने चाहिए।'

सभापति—'ये उपाय तो सब अव्यवहारिक हैं। जो किया जा सके ऐसा उपाय बताओ।'

एक चूहा बड़े जोश से खडा हुआ और बोला-'मैंने बडा अच्छा उपाय सोचा है-सस्ता और सुन्दर, सभी को पसन्द आ जाए ऐसा।

बिल्ली के गले में घण्टी बांध देना चाहिये, जिससे हमें उसके आने की सूचना मिल जाए।'

सब बडे खुश हुए। कहने लगे—'हाँ ! यही ठीक है।'

जब कोलाहल शान्त हुआ तब एक वृद्ध चूहे ने कहा—'पर बिल्ली के गले में घण्टी बाधने कौन जाएगा !'

सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। फिर एक-दूसरे की मजाक करने लगे। किसी ने कहा—'बिल्ली आ रही है !'

दूसरे क्षण वहाँ कोई नही था।

शिक्षा—बात से यो कहा काम सीझिये'—अपनी शक्ति से बाहर की बातें करने से कार्य की सिद्धि नही होती है।



(३९) कलम नहीं छुरा है

गिर गई कलम वकील की बजार बीच
देख एक बाल लई, जरा नहि डरा है।
'अरे ओ ! वकील ! यह गिरी है तुम्हारी छुरी'
कहा यों वकील—'तू तो नरपशु निरा है ॥
'कलम को छुरी बतलाते शरम न आई !'
'गुस्सा कीजे मत मैंने कहा नहि बुरा है।
कहे 'सूर्यमुनि' याने कितनों के गले काटे,
छुरी नहीं वकील जी ! ये तो बड़ा छुरा है' ।४०॥

एक नगर के नामी वकील। वे खरे-खोटे सभी प्रकार के केस लेते थे और इतने समर्थ वकील थे कि खोटे केस को भी खरा बना देते थे।

एक दिन वे बाजार से गुजर रहे थे। उनकी जेब से उनका

पेन अकस्मात् गिर गया। एक लडके ने उनके पेन को गिरते हुए देखा। वह लडका बडा मुँह फट था। उसने वकील की पेन हाथ में ले ली और दौडता हुआ निर्भयता के साथ वकील के पास पहुँच गया और बोला—'अरे वकील साहब ! जरा ठहरो तो !' वकील ने पीछे मुड़-कर देखा। लडके ने उनकी ओर पेन बढ़ाते कहा—'लीजिये, यह आपकी छुरी गिर गई है ?'

वकील साहब झल्लाकर बोले—'कैसा बेवकूफ लडका है ! तुझे कलम और छुरी की भी पहचान नही है जो कलम को छुरी कहता है। कुछ शर्म भी है कि नहीं !'

लडका बेधड़क बोला—'वकील सा'ब ! मैं झूठ थोड़े ही कह रहा हूं। आपने इस कलम से कितने ही सच्चे व्यक्तियो के गले काटे होंगे ? कितने सच्चे व्यक्तियो का जीवन इस पेन के झटके से बरबाद हुआ होगा ? मैं सच्ची बात कहने मे क्यो शरमाऊँ वकील सा'ब ? मेरी दृष्टि मे यह कलम छुरी ही नही बहुत बडा छुरा है ?'

वकील साहब पर मानो उस समय घडो पानी पड़ गया।

शिक्षा—(१) वकील, सेठ या लेखक कोई भी हो, उन्हें—'हमारी लेखनी, लेखनी ही है, छुरी तो नही बन रही है' यह सोचना चाहिये। जिस लेखनी से अधर्म का पोषण हो और-धर्म का नाश हो—वह लेखनी भयकर शस्त्र है।

(२) भर जंगल में लूटता, कोली ठाकर भील।
भर नगरी में लूटता, वेश्या वैद्य वकील॥



(४०) पुत्र से तो बाप निकला सवाया है

सेठ ने बनाया घर प्रवेश के समै मित्र—
पुत्र आय कहे—घर श्रेष्ठ ही बनाया है।
घर तो बनाया पर छोटे दरवाजे, तुम—
शव कैसे निकलेगा, अचरज आया है॥
स्वपुत्र को डांटे पिता—'छोटे मुँह बड़ी बात,
घर की सब ही लाश निकले—'सुनाया है।
कहे 'सूर्य मुनि' वाणी निर वद्य बोल तोल,
पुत्र से तो बाप यामें निकला सवाया है॥४१॥

श्रेष्ठि कुबेरदत्त सचमुच मे कुबेर ही लगता था। उसके पास अपार धनराशि थी। वह शरीर से हृष्ट-पुष्ट और लम्बे-चौड़े डील-डौल वाला था जैसा उसे धन के सञ्चय करने का शौक था, वैसा ही उसके व्यय करने का भी चाव था। वह प्रति माह किसी न किसी बहाने से लोगो को भोज दे ही देता था।

उसने एक भव्य भवन बनवाया। उसका निर्माण कला से परिपूर्ण हुआ था और उसकी साज-सज्जा भी बडी चित्ताकर्षक हुई थी। उसने वास्तु-पूजा के बहाने लोगो को भोज दिया था। उस भोज मे कई स्वजन, परिजन, मित्र आदि आमन्त्रित थे। कुबेरदत्त सेठ का एक मित्र भी अपने पुत्र के साथ उस भोज मे आया था। भोजन हो चुका था। लोगो को सेठ स्वयं अपने हाथों से पान दे रहे थे और लोग उनके भवन की प्रशसा करते हुए खुश हो रहे थे।

वह मित्र भी अपने पुत्र के साथ सेठ के पास आया। मित्र का पुत्र सेठ से कहने लगा—'आपने बडा सुन्दर और भव्य भवन बनाया। लेकिन मुझे एक विचार पैदा हो गया!' सेठ ने उसे प्रेम से पूछा—'बेटा! क्या विचार पैदा हो गया, तुम्हे?' मित्र-पुत्र बोला—'मकान तो बहुत विशाल है परन्तु आपने दरवाजे बहुत छोटे-छोटे बनवाये

हैं। अभी तो आप इनसे निकल सकते हैं पर''''' कुबेरदत्त को कौतूहल हुआ। वह बोला—'पर क्या बेटा ? कहते-कहते क्यों रुक गये।' मित्र का पुत्र बोला—'पर जब आप मर जायेंगे, तब आपकी लाश इन दरवाजों से कैसे निकलेगी ? इन दरवाजो को तुडवाना नही पड़ेगा ?' सेठ एकदम सुस्त हो गये। मित्र को लगा कि सेठ नाराज हो गये हैं। वह एकदम हडबडाता हुआ अपने पुत्र को डाटकर बोला—'अबे ! छोटे मुँह वडी बात करता है। तुझे बोलना याद नही तो चुप क्यों नहीं रहता है ?' फिर सेठ की ओर मुँह करके बोला—'मित्र ! इसकी बात का बुरा मत मानना। यह तो नादान है इसे बोलना याद नहीं है। अरे ! आपकी क्या, घर भर की लाशे इन दरवाजो से निकल जायेगी।'

सेठ को मित्र की बात सुनकर बहुत ही लगा। उसने सोचा—'बाप बेटे से कम नादान नही है। ये मुझे बधाई दे रहे है या शाप !'

शिक्षा—(१) प्रसंग को विचारे बिना नही बोलना चाहिये।

(२) 'वाणी निर वद्य बोलो तोल' अर्थात् हृदय मे विचार करके, निष्पाप वचन बोलने चाहिये।

(३) निष्पाप वचन बोलना वाणी की साधना है और वाणी की साधना आत्म-साधना का एक अग है।

(४) अविचारित पापमय वचन बोलने वाला लोक-व्यवहार मे भी निन्दा का पात्र बनता है।

---

(४१) झूठ बोले आपदा''' है

एक समै ग्वाल बाल वन गौ चराने जाय
झूठ बोलने को तामे एक एब परी है।

आय कहे गाम पास—'अरे! मृगराज मुज
पकड़ ले जाय, कों छुड़ाओ दया धरी है' ।।
लोक सुन आवें तब झूठ जान फिरे सब
ऐसे नित करे मूढ कौन काज सरी है ।
एक समें सिंह गहे, अचानक 'सूर्य' कहे
झूठ बोले आपदा यो पग-पग भरी है ।।४२।।

एक था ग्वाल-बाल ।

वह गायें चराने जाता था । गायें चरती रहती थी और वह मस्ती में इधर-उधर खेलता रहता था । उसके खेल पुराने पडते जा रहे थे । एक दिन उसे नया खेल खेलने की सूझी ।

वह समीप के ग्राम के पास आया और जोर-से चिल्लाने लगा 'दौडो रे ? दौडो शेर आया ! ये गाये ले जा रहा है ? दौड़ो रे दौडो !'

लोगों ने आवाज सुनी । वे शस्त्र लेकर दौड़े आये । लोगो को देखकर ग्वालवाल हँसने लगा । लोगो ने पूछा—'कहाँ है शेर ?' लडका ताली बजाकर बोला—'शेर यहाँ कहाँ ? मैं खेल कर रहा हूं ?' लोग झल्लाए और चले गये । लोगो को खीजते हुए देखकर उस लड़के को बडा आनन्द आया ।

अब लडके का यह रोज का क्रम हो गया । कुछ दिन तो आस-पास के गाँवो वालों ने उसकी बात पर ध्यान दिया । परन्तु जब उन्हें लडके की झूठी बात का पता लग गया तब उन्होने उसकी बात पर ध्यान देना बन्द कर दिया ।

और एक दिन सचमुच ही शेर आ गया । वह लडका करुण क्रन्दन करने लगा । परन्तु लोगो को उसकी बात पर विश्वास ही नहीं हुआ । अत कोई भी उसकी सहायता के लिये नही पहुँचा । खेल-मेल मे बोला हुआ झूठ उस लडके के लिये भारी पड़ गया और वह सिंह का भोजन बन गया !

शिक्षा—'झूठ बोले आपदा यो पग-पग भरी है'—

हँसी-मजाक या खेल मे बोला हुआ झूठ भी अविश्वास का जनक है। अत यह समझकर झूठ से कदम-कदम पर आपदा ही आती है—झूठ नही बोलना चाहिये।



(४२) दौलत क्या अंधी है ?

अमीर तैमूर लंग, हिन्दुस्तां में आया जब,
गाना करे नारीजन गगन गुंजारती।
एक अंधी नारी, ताका गाना सुन खुश हुवा,
पूछे–'तेरा नाम कहा ?' 'दौलत' उचारती ॥
पूछे शाह–'दौलत क्या अंधी है ?' 'बेशक, अंधी–
न होती तो कैसे वह लंगड़ा संभारती ?'
कहै 'सूर्यमुनि' शाह लंगड़ा था इसलिये
खुश हो ईनाम दिया, मेटी सब आरती ॥४३॥

भारत भूमि पर आक्रमण करने वालो मे तैमूर लग भी एक था। उसकी भी बर्बरता की कहानियाँ प्रसिद्ध है। तैमूर उसका नाम था, परन्तु पाँव से लगडा होने के कारण उसके नाम के पीछे 'लग' शब्द जुड गया। जब वह भारत भूमि में आया था, तब की यह बात है।

वह एक स्थान पर ठहरा हुआ था। कुछ स्त्रियाँ गीत गा रही थी। उनके गीत-माधुर्य से जन-मन मुग्ध हो रहा था। तैमूर लग भी प्रभावित हुए बिना नही रहा। उसे उनमे से एक स्त्री का स्वर बहुत ही मधुर लगा।

शाह ने सैनिक को आदेश दिया कि जाओ उस मधुर गाने वाली स्त्री को यहाँ ले आओ। सैनिक उन स्त्रियो के पास पहुँचा। मुख्य गायिका स्त्री वृद्धा थी और अंधी थी। उसने अपने मालिक का

हुक्म कह सुनाया। पहले तो उस वृद्धा ने साथ चलने मे आनाकानी की। परन्तु फिर कुछ सोचकर उसके साथ हो गई वह शाह के सामने आई।

शाह उसे अधी देखकर आश्चर्य मे पड गया। उसने उससे पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?' वृद्धा ने नि.संकोच भाव से कहा—'हुजूर! मुझे दौलत कहते हैं!'

'दौलत है तुम्हारा नाम ?'—शाह को मनोरंजन करने की सूझी। उसने हँसते हुए कहा—'क्या दौलत अन्धी होती है?' उस वृद्धा ने भी बेझिझक उसी लहजे मे कहा—'जी हुजूर!' शाह ने पूछा—'कैसे?' दौलत ने निर्भयता से कहा—'दौलत वेशक अन्धी ही है। यदि वह अन्धी न होती तो लगड़े के पास कैसे आती?'

शाह उस अंधी वृद्धा की हाजिर जवावी से वड़ा खुश हो गया। उसने उसे काफी इनाम दिया।

वर्बर व्यक्ति के जीवन में भी कई ऐसे प्रसंग आते हैं, जब उसकी वर्वरता तिरोहित हो जाती है।

शिक्षा—(१) हाजिरजवावी व्यक्ति निर्भयता से क्रूर मनुष्य का हृदय भी जीत सकता है।

(२) यदि मनुष्य मे एक भी गुण हो तो उसका आदर होता है।

(३) सामान्य से सामान्य मनुष्य के गुणों का भी सन्मान करना चाहिये।



(४३) धूल में खेलत चिड़ी

धूल में खेलत चिड़ी. देखी नृप पूछे तब,
'राज होगा धूलधाणी'—वात यों उचारी है।
दूजो कहे—'नृप सुनो, वरखा करीब आई
खावेंगे अनाज खूब उमंग अपारी है॥

यांते तुम पाँव-रज लेय के चढ़ावें सिर,
आपके शासन-बीच चैन हमें भारी है।'
एक को दियो है दंड, दूजे को इनाम दियो,
कहे 'सूर्यमुनि' वाणी बोलो सुविचारी हे ! ॥४४॥

राजा विहार-यात्रा के लिये निकला। साथ में और भी मनुष्य थे। वे उद्यान से लौट रहे थे। राजा ने रास्ते में देखा-एक चिडिया धूल मे खेल रही है। राजा कुछ कौतूहल-प्रिय था। उसने अपने साथ वालो से पूछा—'अच्छा बताओ-यह चिडिया क्या कह रही है?' इतने मे कुछ चिडियाँ और वहाँ आ गई। वे भी चह-चहाने लगीं।

एक व्यक्ति अपने-आपको बहुत सयाना समझता था। वह राजा के पास आकर कहने लगा—'महाराज ! यह भविष्य की सूचना दे रही है। आपके लिये आगे का समय वहुत भयंकर है। आपका राज्य धूल-धाणी हो जायेगा—तहस-नहस हो जायेगा। परन्तु महाराज यह चिडिया अपने को बहुत वडी समझ रही है। इस तुच्छ को अभी उडा देना चाहिये'।

दूसरा व्यक्ति बोला—'नही, महाराज ! इसका स्वर प्रसन्न है। अत· कुछ और ही कह रही है। ये सब कह रही हैं कि अब वर्षा नजदीक आ रही है। अनाज खूब पकेगा। हम खूब अनाज खायेंगी। हमें बहुत ही हर्ष हो रहा है। आपके शासन मे हम आनन्द मे हैं—प्रसन्न है—सुखी हैं। हम आशिर्वाद दे रही है—आप आनन्द में रहे। आपका शासन चिरजीवी हो। हम वडी कृतज्ञ हैं। अत आपकी चरणरज लेकर हम अपने सिर पर चढा रही है। महाराजा ! ये चिड़ियाँ इस प्रकार अपना हर्ष अभिव्यक्त कर रही है।'

राजा पहले व्यक्ति पर नाराज हुआ। क्योकि वह अवसर को पहचान नहीं सका और दूसरा व्यक्ति अवसर का जानकार था। उसने समयानुसार उचित और हितकारिणी भाषा का प्रयोग किया।

अत. राजा उस पर वडा खुश हुआ। पहले को दण्ड मिला और दूसरे को पुरस्कार।

शिक्षा—(१) 'वाणी बोलो सुविचारी'—स्व-पर के लिये हितकर वचन बोलना चाहिये अर्थात् वाणी के पीछे उत्तम विचार अवश्य होना चाहिये।

(२) अवसर को पहचान कर, अवसरवादी न बनते हुए, समय के अनुकूल हित-मित वचनो का प्रयोग करना चाहिये।



(४४) वातहि में महा अन्तर दीखत (सवैया)

नृप स्वप्न लख्यो सब दाँत पड़े,
तब पाठक से कहे—'अर्थहु तोलो'।
'क्षय होय कुटुम्ब सबै तुमरा'—
सुन दंड दियो नृप होकर भोलो॥
नर अन्य कहे—'सब से चिर आयु'—
हुवो खुश, भेंट दई अनमोलो।
इम वातहि में महा अन्तर दीखत,
'सूर्य' विचार विना मत बोलो॥४५॥

वहुत वड़े राज्य का स्वामी था भूपाल। विशाल परिवार। सुदृढ नीरोग शरीर। विपुल सैन्य शक्ति। धन-धान्य से उभराते हुए भण्डार। सुखी और सम्पन्न प्रजा। किसी वात की कमी नही। इच्छित सुखो को भोग रहा था वह। जिस ओर भी वह निकल जाता, उसी ओर आनन्द का समुद्र उमड़ पडता।

एक दिन रात्रि मे राजा सुख-शय्या पर सोया हुआ था। निद्रा में भी उसके मुख पर सुख की मुस्कान थी। राजा को स्वप्न आया।

वह एकदम जाग्रत हो गया। स्वप्न को यादकर उसके मुखपर खिन्नता छा गई-मानो प्रफुल्लित कमल को हिम की झपट लग गई हो। वह सोच रहा था कि यह स्वप्न शुभ है या अशुभ ? स्वप्न मे मेरे सब दाँत गिर पडे ! इसका फल क्या होगा ? ऊँह ! मैं अशुभ क्यो सोचूँ ! जिसका मन पुण्य कार्य मे लीन है, उसके लिये क्या है अशुभता ?' उसके वाद राजा को नीद नही आई।

प्रात काल राजा ने एक स्वप्न-पाठक को बुलवाया और उससे कहा—'आज रात्रि मे मैंने स्वप्न देखा है कि मेरे सब दाँत गिर गये है। उसका क्या फल होगा ?' स्वप्न—पाठक विचार मे पड गया। परन्तु राजा पूछ रहा था। इसलिये उसने जरा सहमते हुए कहा—'महाराज ! स्वप्न बडा अशुभ है। इसका फल यह है कि आपके देखते ही देखते आपके कुटुम्ब का क्षय हो जाएगा !' राजा अशुभ फल सुनना नही चाहता था। राजा नाराज हो गया और उसने स्वप्नपाठक से कहा—'जाओ, तुम सामने से चले जाओ !' राजा ने उसे सामान्य सा दण्ड भी दिया।

राजा ने दूसरे स्वप्न-पाठक को बुलाया। उससे भी राजा ने स्वप्न का फल पूछा। वह स्वप्नपाठक बडा चतुर था। उसने राजा से कहा—'राजन् ! यह स्वप्न बड़ा ही शुभ है !' राजा ने आश्चर्य से पूछा—'क्या बात करते हो ?' स्वप्नपाठक ने हर्षित मुद्रा मे दृढता पूर्वक कहा—'सच कहता हूँ, राजन् ! आपके लिये इस स्वप्न का फल बहुत ही शुभ है। यह स्वप्न कह रहा है कि आप अपने परिवार मे सब से दीर्घायु हैं। आप चिर काल पर्यन्त अपने पुण्य का फल भोगेंगे !' राजा बडा प्रसन्न हुआ उसने स्वप्नपाठक को श्रेष्ठ पुरस्कार प्रदान किया।

मन्त्री आश्चर्य से राजा की ओर देख रहा था। राजा ने मत्री के आशय को समझकर कहा—'मन्त्रीवर्य्य ! तुम्हे आश्चर्य हो रहा है कि दोनो ने एक ही बात कही है। परन्तु एक दण्डित हुआ और

अत राजा उस पर वडा खुश हुआ। पहले को दण्ड मिला और दूसरे को पुरस्कार।

शिक्षा—(१) 'वाणी बोलो सुविचारी'—स्व-पर के लिये हितकर वचन बोलना चाहिये अर्थात् वाणी के पीछे उत्तम विचार अवश्य होना चाहिये।

(२) अवसर को पहचान कर, अवसरवादी न वनते हुए, समय के अनुकूल हित-मित वचनो का प्रयोग करना चाहिये।



(४४) वातहि में महा अन्तर दीखत (सवैया)

नृप स्वप्न लख्यो सब दांत पड़े,
तब पाठक से कहे–'अर्थहु तोलो'।
'क्षय होय कुटुम्ब सबै तुमरा'–
सुन दंड दियो नृप होकर भोलो॥
नर अन्य कहे–'सब से चिर आयु'–
हुवो खुश, भेंट दई अनमोलो।
इम वातहि मे महा अन्तर दीखत,
'सूर्य' विचार विना मत बोलो॥४५॥

बहुत बड़े राज्य का स्वामी था भूपाल। विशाल परिवार। सुदृढ़ नीरोग शरीर। विपुल सैन्य शक्ति। धन-धान्य से उभराते हुए भण्डार। सुखी और सम्पन्न प्रजा। किसी वात की कमी नही। इच्छित सुखो को भोग रहा था वह। जिस ओर भी वह निकल जाता, उसी ओर आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता।

एक दिन रात्रि में राजा सुख-शय्या पर सोया हुआ था। निद्रा में भी उसके मुख पर सुख की मुस्कान थी। राजा को स्वप्न आया।

राजा बडा प्रसन्न हुआ। राजा ने उससे कई प्रश्न किये। प्रश्नो का सही समाधान पाकर, राजा को उसकी विद्या पर विश्वास हो गया। राजा ने उसका सत्कार-सम्मान किया और आग्रह करके, कुछ समय अपनी राजधानी मे रहने के लिये उसे राजी कर लिया। ज्योतिपी के रहने के लिये राजा ने एक भव्य प्रासाद मे व्यवस्था की।

एक दिन राजा ने तरग मे आकर ज्योतिषी से पूछा लिया—'हम इस पृथ्वी पर और कितने समय तक रहेगे ?' ज्योतिषी बोला—'राजन् ! यह प्रश्न पूछना उचित नही है। कुछ बातो को नीतिकार ने गुप्त रखने का कहा है। उसमे से एक वात किसी के आयु की अवधि बताने की भी है।' राजा ने आग्रहपूर्वक कहा—'जब आपकी विद्या सत्य है तो आपको सही वात वतलाने मे क्यो डरना चाहिये ?' राजा ने बहुत हठ किया। तव ज्योतिषी ने कहा—'राजन् ! मैं आपको एक वात बतला देता हूँ कि आज से पदरहवे दिन आपकी घात है। आपके महल के पूर्व के द्वार से एक भयंकर भुजग आपके कक्ष मे आयेगा और आपको डँस लेगा तो आपकी मृत्यु हो जाएगी और यदि यह घात टल जाएगी तो आप इस राज्य मे बहुत वर्षो तक सुख-शान्ति का डका बजवाएँगें।' राजा यह बात सुनकर सन्न रह गया।

दो दिन वीत गये। राजा उदास था। अन्त मे उसने सोचा—'एक दिन मृत्यु तो आयेगी ही। फिर उससे क्या डरना ?' वह प्रसन्नता से दानादि धर्मकार्य करने लगा। उसके मस्तिष्क मे एक विचार आया और उसने उसके अनुसार सारी योजना वना ली। उसने सव चिन्ता छोड दी और पवित्रता से शुभ भावना मे दिन व्यतीत करने लगा। चौदह दिन बीत गये। पदरहवे दिन राजा ने मोहक सुगन्ध वाले फूल मँगवाये और महल के वाहर से जहाँ से सर्प के आने की सभावना थी—वहाँ से लगाकर, अपने कक्षतक फूलो को बिछावा दिया और मधुर सगीत-वादन प्रारम्भ करवा दिया। रात के वारह बजे। भयंकर साँप आता हुआ दिखाई दिया। वह फूलो की

दूसरा पुरस्कृत। सुनो, इसका रहस्य बतलाता हूँ। पहले मे अशुभ की पकड़ थी और दूसरे मे शुभ की। पहला शुभ को भी अशुभ कर देगा। जबकि दूसरा अशुभ को भी शुभ मे परिवर्तित करने की शक्ति रखता है और इसी बात का उसे पुरस्कार मिला है।'

शिक्षा—(१) 'इम बातहि मे महा अन्तर दीखत, सूर्य विचार बिना मत बोलो' अर्थात् विचार मनुष्य की बहुत बडी शक्ति है। विचार के बल से मनुष्य अशुभ को भी शुभ रूप मे ग्रहण कर सकता है और विचार के कारण ही वाणी मे बडा भेद हो जाता है। अत बिना विचारे नही बोलना चाहिये।

(२) प्राय प्रत्येक घटना के दो पक्ष हो सकते हैं। उसका एक पक्ष अशुभ की ओर होता है तो दूसरा शुभ की ओर। हमे उसके शुभ पक्ष की ओर ही दृष्टि रखना चाहिये।



(४५) मिष्ट वैन माहि वशीकरण (कवित्त)

नजूमी ने नृप से यो कहा—'तेरी मृत्यु होगी
आके अहि डंसेगा, अमुक दिन घात है'।
चिन्ता तज राय तबै, सोचत उपाय एक,
बाँबी से महल तक फूलों को बिछात है॥
गान की मधुर ध्वनि, तान से बजाई तबै
अहि मस्त भयो सुन, आनन्द मनात है।
नृप-प्राण बच गये, कहे 'सूर्यमुनि' याँते
मिष्ट वैन माहि वशीकरण समात है॥४६॥

राजा राजसभा मे बैठा हुआ था। बहुत दूर से एक ज्योतिषी आया। ज्योतिषी अपनी विद्या मे निष्णात था। उसकी प्रशसा राजा ने भी सुन रखी थी। उसे अपने राज-दरबार मे आया हुआ देखकर,

राजा बडा प्रसन्न हुआ। राजा ने उससे कई प्रश्न किये। प्रश्नो का सही समाधान पाकर, राजा को उसकी विद्या पर विश्वास हो गया। राजा ने उसका सत्कार-सम्मान किया और आग्रह करके, कुछ समय अपनी राजधानी मे रहने के लिये उसे राजी कर लिया। ज्योतिषी के रहने के लिये राजा ने एक भव्य प्रासाद मे व्यवस्था की।

एक दिन राजा ने तरग मे आकर ज्योतिषी से पूछा लिया—'हम इस पृथ्वी पर और कितने समय तक रहेगे ?' ज्योतिषी बोला—'राजन् ! यह प्रश्न पूछना उचित नही है। कुछ वातो को नीतिकार ने गुप्त रखने का कहा है। उसमे से एक वात किसी के आयु की अवधि वताने की भी है।' राजा ने आग्रहपूर्वक कहा—'जब आपकी विद्या सत्य है तो आपको सही वात वतलाने मे क्यो डरना चाहिये ?' राजा ने बहुत हठ किया। तव ज्योतिषी ने कहा—'राजन् ! मैं आपको एक वात बतला देता हूँ कि आज से पदरहवें दिन आपकी घात है। आपके महल के पूर्व के द्वार से एक भयंकर भुजग आपके कक्ष मे आयेगा और आपको डँस लेगा तो आपकी मृत्यु हो जाएगी और यदि यह घात टल जाएगी तो आप इस राज्य मे बहुत वर्षो तक सुख-शान्ति का डका बजवाएँगे।' राजा यह बात सुनकर सन्न रह गया।

दो दिन बीत गये। राजा उदास था। अन्त मे उसने सोचा—'एक दिन मृत्यु तो आयेगी ही। फिर उससे क्या डरना ?' वह प्रसन्नता से दानादि धर्मकार्य करने लगा। उसके मस्तिष्क मे एक विचार आया और उसने उसके अनुसार सारी योजना वना ली। उसने सब चिन्ता छोड दी और पवित्रता से शुभ भावना मे दिन व्यतीत करने लगा। चौदह दिन बीत गये। पदरहवें दिन राजा ने मोहक सुगन्ध वाले फूल मँगवाये और महल के वाहर से जहाँ से सर्प के आने की संभावना थी—वहाँ से लगाकर, अपने कक्षतक फूलों को विछावा दिया और मधुर सगीत-वादन प्रारम्भ करवा दिया। रात के वारह वजे। भयकर साँप आता हुआ दिखाई दिया। वह फूलो की

सुगन्ध से मस्त हो गया और संगीत-लहरियो पर आनन्द के साथ डोलने लगा। कितना समय बीत गया-पता न चला इसका और प्रातः काल होने को आया और सर्प प्रसन्नता से लौट गया।

राजा की घात टल गई। राजा ने ज्योतिषी को पुरस्कार दिया।

शिक्षा—(१) सगीत रूपी मीठे वचनो से साँप जैसा भयकर जीव भी वश मे हो जाता है तो मनुष्य क्यो नही हो सकता है। अत सदा मधुर वचन ही बोलने चाहिये।

(२) मृत्यु से कभी डरना नही चाहिये।

(३) मरणान्तक भय का भी प्रतिकार शान्ति से करना चाहिये।



(४६) बिगड़ी बनावे ऐसो कोइक है

सबजा के फूल भेंट करे, खुश होय भूप,
दूजे भेंट करी राख, दिल रोष आयो है।
विज्ञ कहे-'सबजा के फूल का ये मतलब—
राज जा, धन जा, सब जा-जा ही बतायो है॥
राख दीनी ताने, राज राख, धन राख, सब—
राख याने रहो-रहो, राख यों जतायो है'।
कहै 'सूर्यमुनि' राख वाले को इनाम दिया,
बिगड़ी बनावे ऐसो कोइक दिखायो है॥४७॥

राजसभा भरी हुई थी। नरेश नृसिंह न्यायासन पर विराजमान थे। उस समय द्वारपाल ने आकर सूचना दी—'धूलि-धूसरित कोई दो व्यक्ति दूर देश से आये है। वे महाराज के दर्शन की अभिलाषा से द्वार पर खडे हैं। उनके लिये क्या आदेश होता है ?' नरेश ने कहा—'आने दो।' कुछ ही क्षण मे वहाँ दो व्यक्तियो ने प्रवेश किया।

दोनो व्यक्ति प्रौढ़ थे। बहुमूल्य वेश-भूषा पर धूल की परते जम रही थी। एक के हाथ में पुष्पो का सुन्दर गुच्छा था और दूसरे के हाथ मे भी कुछ पदार्थ था।

पहले ने राजा को प्रणाम किया और पुष्पो का गुच्छा भेट किया। राजा बडा प्रसन्न हुआ उसने पथिक से पूछा—'ये कौन से फूल हैं ?' पथिक ने नम्रता से कहा—'महाराज ! इन्हें सबजा के फूल कहते हैं।' राजा ने कहा—'बडा सुन्दर नाम है।' फिर उसे अच्छा पुरस्कार दिया। दूसरे पथिक ने भी अपने हाथ की पोटली राजा को भेट की। उस पोटली का सुन्दर वस्त्र खोला गया तो उसमे से राख निकली। राजा राख को देखकर क्रुद्ध हो गया। राजा ने उसे कडक-कर पूछा-'तुमने क्या समझ कर राख भेट की ?' आगन्तुक ने निर्भयता से उत्तर दिया—'यों ही।' पहला पथिक बोला–'राजन् ! इसकी बात ही विचित्र है ! इसे मैंने बहुत समझाया कि यह पदार्थ भेट के योग्य नही है। पर यह नही माना !' फिर वह अपने साथी की ओर देख-कर बोला—'लो, बिगाडी है बात तो अब भुगतो लाला !' दूसरा पथिक बोला–'तेरी बात बन गई तो अच्छी बात है। हमने तो अच्छी ही भेंट की है, कोई समझे तो !' राजा विचार मे पड गया।

सभा मे सन्नाटा छाया हुआ था। राजा विचार-मग्न था। एक पुरुष खड़ा हुआ। वह राजा के सन्मुख आकर बोला—'राजन् ! मैं इन दोनो के आशय को बताऊँ ?' राजा की अनुज्ञा पाकर वह बोला —'राजन् ! जिसे आप दण्ड के योग्य समझ रहे हैं, वह पुरस्कार पाने के योग्य है और जिसे आपने पुरस्कृत किया है, वह दण्ड के योग्य है।' राजा ने आश्चर्य से पूछा—'सो कैसे ?' वह विज्ञ पुरुष कहने लगा— 'जिसने आपको सबजा के फूल भेट किये हैं, उसने सूचित किया है कि आपका राज्य जाय, आपका धन जाय, सबजा यानी आपका सर्वस्व चला जाय……' पहला पथिक विलख वदन होकर चिहुँका—'इसे कहते हैं बाग मे आग लगाना !' राजा ने मुसकाकर उसे चुप रहने का सकेत किया। वह व्यक्ति अस्खलित गति से बोल रहा था—'और

आज वे ही न्याय को भूले हुए है । क्योकि उनकी रग-रग मे स्वार्थ समाया हुआ है और ऐसे स्वार्थियो से न्याय पाने का विश्वास करना, पाहन की गैया से दूध पाने का विश्वास करने जैसा है ।

---

(४८) सच हारत है

पूछत एक वकील यथा–'सुनिये–
इम जोतिषि ! बात हमारी ।
सज्जन–दुर्जन-राड़ भई, तब–
जीतेगा राज में कौन, हुश्यारी' ॥
'सज्जन हारत, दुर्जन जीतत,
क्योंकि वकील करे तर्फदारी' ।
'सूर्य' कहे सच हारत है, जहाँ–
निर्लज्ज आन मिले नर-नारी ॥४९॥

एक वकील था । जो भी केस वह हाथ मे ले लेता, उसमे वह सफल होता था । इसलिये उसके पास बहुत केस आते रहते थे । चाहे केस सच हो या झूठ-वह अपने मुवक्किल को जीता देता था । अत वकील सोचने लगा कि-लोग ऐसा कहते आये है और मैंने अपने पूर्वजो के मुँह से सुना था– सत्यमेव जयति' अर्थात् सत्य की जीत होती है । परन्तु मै तो प्रत्यक्ष देख रहा हू कि सत्य हार जाता है और झूठ जीत जाता है । सत्य जीतता है—यह केवल कहने की ही बात है ।

एक बार उसके पास एक केस आया । उसने वह केस हाथ मे लिया । उसे पता लगा कि यह केस बिलकुल झूठा है । उसने केस हाथ मे लिया तो वादी बिलकुल बेफिक्र हो गया । परन्तु वादी अत्य-धिक दुर्जन व्यक्ति था और प्रतिवादी सज्जन तथा सत्यमार्ग का अनु-

गामी। वकील उस केस को हाथ में लेकर मन ही मन पछताने लगा। उसके हृदय मे टीस-सी उठती।

किसी कार्य से एक ज्योतिषी सज्जन उसके यहाँ आये। उसने बातचीत करते हुए ज्योतिषीजी से पूछा लिया—'एक सज्जन पुरुष और दुर्जन पुरुष मे झगडा हो गया है। दुर्जन ने सज्जन पर केस कर दिया। तो मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि दुर्जन की जीत होगी या सज्जन की ?'

ज्योतिषी बोला—'इसमे क्या पूछना है ? दुर्जन भले ही झूठा होगा तो भी उसी की जीत होगी ?' वकील बोला—'ऐसा क्यो ? जीत तो सत्य की ही होना चाहिये !' ज्योतिषी बोला—'हाँ, होना तो ऐसा ही चाहिये। परन्तु सत्य का पक्षकार कौन है ? झूठ के तो बहुत पक्षकार हैं ससार मे। वकील दुर्जन का पक्ष कर रहे है तो सत्य को हारना ही पड़ेगा। सत्य तो जीतता है अपने ही बलपर। परन्तु झूठ जीतता है नकली सत्य बनकर और उसे चमकदार सत्य का रूप देते हैं—उसके पक्षकार ! कितने-कितने लोग खडे हैं झूठ को जीताने के लिये !'

वकील का मस्तक लज्जा से झुक गया।

शिक्षा—'मच'''नर-नारी' अर्थात् जहाँ झूठ का पक्ष लेनेवाले मनुष्य होते हैं और जो झूठ का पक्ष लेने मे लज्जा का अनुभव नही करते हैं ऐसे मनुष्यो की अधिकता हो, वहाँ सत्य हार जाता है। और संसार की वृद्धि तो सत्य की हार से ही होती है। अतः जिसे भव-भ्रमण से भीति हो उसे असत्य का पक्ष नही लेना चाहिये।



जिसने राख भेट की, उसने यह सूचित किया कि आपका राज्य सुरक्षित हो, धन सुरक्षित हो, राख अर्थात् सर्वस्व सुरक्षित रहे।.........' दूसरा पथिक प्रसन्नता से बोला—'इसे कहते है—आग में बाग लगाना।' राजा बडे प्रसन्न हुए और बोले—'इन्हे पुरस्कार या दण्ड देना, मेरी इच्छा की बात है। पर तुम्हे अवश्य पुरस्कार दिया जाएगा। आज से मै तुम्हे मेरे यहाँ रिक्त हुए अमात्य पद पर तुम्हें स्थापित करता हू। अब तुम अपनी बुद्धि को बिगडी को बनाने के उपयोग मे ही लेना।'

लोग समझ गये कि इस घटना के मूल स्रष्टा कौन थे।

शिक्षा—(१) 'बिगडी''' दिखायो' अर्थात् ससार मे बिगडी को बनानेवाले विरले ही होते है। अत हमे सम्हलकर चलना चाहिये।

(२) हमे बुद्धि को ध्वसात्मक नही, निर्माणात्मक कार्यो मे ही लगाना चाहिये।



(४७) पुनि दोय रुपै जलदी अब दीजे

पंच रुपै लही एक महाशय
　　जाय वकील के हाथ दिया—
'खोटे कि हैं खरे ? दीजे बताय'
　　वकील रुपै लही जेब किया—
'राय देने की फीस है सात रुपै
　　पुनि दोय रुपै जलदी अब दीजै।'
'सूर्य' कहे जग-स्वारथि मित्र !
　　कहा विसवास यो ऐसे पे कीजै ॥४८॥

यह उस समय की बात है, जब कलदार रुपये चला करते थे। उस समय खरे-खोटे रुपये की पहचान करना बड़ी बात थी। कभी

खरे-खोटे रुपये की पहचान खुद को नही होती तो दूसरे से उसकी पहचान करवाना पडती थी। रुपये को बजाकर उसकी आवाज से या उसका अच्छी तरह से निरीक्षण करके, उसके खरे-खोटे पन की परीक्षा होती थी।

किसी छोटे गांव का व्यक्ति बडे शहर में आया। उसने पांच के नोट के छुटे रुपये लिये। पास मे ही एक वकील ऑफिस मे बैठा था। उस देहाती ने उन रुपयो को अच्छी तरह देखा। परन्तु उसे कुछ शका हुई। अत: वह वकील के पास पहुँच गया और वे रुपये उसके हाथ मे थमाकर, देहाती बोला—'साहब ! जरा बता दीजिये तो ये रुपये खरे हैं कि खोटे ?'

वकील ने रुपये अच्छी तरह से देखे। फिर कहा—'खरे हैं' और वे रुपये अपनी जेब मे डाल लिये। देहाती बोला—'साहब मेरे रुपये मुझे दीजिये न !' वकील ने घूरते हुए कहा—'तुम्हे मालूम नही है। मैं किसी को मुफ्त राय नही देता हू। मेरी राय लेने में फीस लगती है और एक बार राय देने की सात रुपये फीस होती है। तुमने अभी पाँच रुपये ही दिये है। तुम्हे दो रुपये और देने बाकी है। लाओ निकालो दो रुपये और !'

बेचारा देहाती बोला—'पर आपने मुझे राय कहाँ दी और मैंने आप से राय मांगी ही कब ?' वकील ने झल्लाकर कहा—'अभी अभी तो तुमने इन रुपयो के खरे-खोटे होने के विषय मे पूछा था और मैने राय दी। कैसे मक्कार हो ! लाओ बाकी के दो रुपये !' देहाती भौचक रहा गया। उसने गुस्से मे कहा— मै मक्कार हू ? ...' वकील ने रुखाई के साथ जोर से कहा—'शट अप ? मेरा समय खराब मत करो। तुम्हारे पास अभी रुपये नही है तो घर से भिजवा देना, जाओ !'

देहाती देखता ही रह गया।

शिक्षा—(१) 'जग-स्वारथि' अर्थात् ससार स्वार्थ से भरा हुआ है ?

(२) 'जग''''पे कीजे' अर्थात् जो न्याय के पक्षधर कहे जाते हैं,

आज वे ही न्याय को भूले हुए है । क्योकि उनकी रग-रग मे स्वार्थ समाया हुआ है और ऐसे स्वार्थियो से न्याय पाने का विश्वास करना, पाहन की गैया से दूध पाने का विश्वास करने जैसा है ।



(४८) सच हारत है

पूछत एक वकील यथा–'सुनिये–
इम जोतिषि ! बात हमारी ।
सज्जन–दुर्जन-राड़ भई, तब–
जीतेगा राज में कौन, हुश्यारी' ॥
'सज्जन हारत, दुर्जन जीतत,
क्योंकि वकील करे तर्फदारी' ।
'सूर्य' कहे सच हारत है, जहाँ–
निर्लज्ज आन मिले नर-नारी ॥४९॥

एक वकील था । जो भी केस वह हाथ मे ले लेता, उसमे वह सफल होता था । इसलिये उसके पास बहुत केस आते रहते थे । चाहे केस सच हो या झूठ-वह अपने मुवक्किल को जीता देता था । अत वकील सोचने लगा कि-लोग ऐसा कहते आये है और मैने अपने पूर्वजों के मुँह से सुना था–सत्यमेव जयति' अर्थात् सत्य की जीत होती है । परन्तु मै तो प्रत्यक्ष देख रहा हू कि सत्य हार जाता है और झूठ जीत जाता है ! सत्य जीतता है—यह केवल कहने की ही बात है ।

एक बार उसके पास एक केस आया । उसने वह केस हाथ मे लिया । उसे पता लगा कि यह केस बिलकुल झूठा है । उसने केस हाथ मे लिया तो वादी बिलकुल बेफिक्र हो गया । परन्तु वादी अत्यधिक दुर्जन व्यक्ति था और प्रतिवादी सज्जन तथा सत्यमार्ग का अनु-

गामी। वकील उस केस को हाथ में लेकर मन ही मन पछताने लगा। उसके हृदय मे टीस-सी उठती।

किसी कार्य से एक ज्योतिषी सज्जन उसके यहाँ आये। उसने बातचीत करते हुए ज्योतिषीजी से पूछा लिया—'एक सज्जन पुरुष और दुर्जन पुरुष में झगडा हो गया है। दुर्जन ने सज्जन पर केस कर दिया। तो मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि दुर्जन की जीत होगी या सज्जन की ?'

ज्योतिषी बोला—'इसमे क्या पूछना है ? दुर्जन भले ही झूठा होगा तो भी उसी की जीत होगी ?' वकील बोला—'ऐसा क्यो ? जीत तो सत्य की ही होना चाहिये !' ज्योतिषी बोला—'हाँ, होना तो ऐसा ही चाहिये। परन्तु सत्य का पक्षकार कौन है ? झूठ के तो बहुत पक्षकार हैं ससार मे। वकील दुर्जन का पक्ष कर रहे है तो सत्य को हारना ही पड़ेगा। सत्य तो जीतता है अपने ही बलपर। परन्तु झूठ जीतता है नकली सत्य बनकर और उसे चमकदार सत्य का रूप देते हैं—उसके पक्षकार ! कितने-कितने लोग खडे है झूठ को जीताने के लिये !'

वकील का मस्तक लज्जा से झुक गया।

शिक्षा—'सच''''नर-नारी' अर्थात् जहाँ झूठ का पक्ष लेनेवाले मनुष्य होते हैं और जो झूठ का पक्ष लेने मे लज्जा का अनुभव नही करते हैं ऐसे मनुष्यो की अधिकता हो, वहाँ सत्य हार जाता है। और संसार की वृद्धि तो सत्य की हार से ही होती है। अतः जिसे भव-भ्रमण से भीति हो उसे असत्य का पक्ष नही लेना चाहिये।



(४९) औंधे चेरे देन लागो (पोपाबाई के न्याय)

दोनों वणिक ने मिल, मूँग का विक्रय किया,
भाव-ताव किया पर दिया नहि मोल के।
मूँग-भाव बढ़चो तब, लेणायत लेन लागो,
औंधे चेरे देन लागो, हटचो कर कोल के॥
पोपां बाई पास गये, तिन्हें खूब तोल कही,
दोनों की रही है चुप, या मे नहि रोल के।
कहे 'सूर्य' पोपांबाई, इन्साफ दियो है ऐसो,
ऊँधा-सीधा छोड़ देओ ऊभे चेरे तोल के॥५०॥

जैसे न्याय-नीति-सम्पन्न शासको मे रामचन्द्रजी, विक्रमादित्य आदि प्रसिद्ध हैं, वैसे औधे न्याय करने वाले शासको के प्रतीक रूप में 'पोपाबाई' भी प्रसिद्ध है। पोपाबाई के कई न्याय लोक में प्रसिद्ध हैं। उनमे से एक न्याय उपर्युक्त कवित्त मे दिया गया है।

(१) पोपाबाई के राज्य मे दो वणिक् रहते थे। एक वणिक् के पास से दूसरे वणिक् ने कुछ मूँग खरीदे। भाव तय हो गया ओर सौदा भी निश्चित हो गया। क्रेता कुछ कार्य मे उलझ गया। वह माल जल्दी न तुलवा सका। मूँग के भाव बढ गये। विक्रेता की नीयत बदलगई। वह मूँग तुलवाने से इकार करने लगा। परन्तु क्रेता ने जब हठ की, तब वह ओधे चेरे से मूँग तोल कर देने लगा। क्रेता ने कहा—'ऐसे कैसे तोल रहे हो?' विक्रेता—'बस, लेना हो तो ले लो। नही तो जाओ तुमसे जो हो सो कर लो।'

यह झगडा पोपाबाई के पास पहुँचा। विक्रेना ने कहा—'मैं मूँग देने को तैयार हूं। जब सौदा हुआ था, तब यह खुलासा नही हुआ था कि मूँग किस प्रकार तुलवाना। अत अब मेरी जैसी इच्छा होगी, वैसे तोलकर दूँगा।' पोपाबाई थोडी देर सोचकर बोली—'अच्छा, तुम दोनों की बात रही। तुम खड़े चेरे से मूँग तोलकर दे दो।' क्रेता

ने यह वात सुनीं तो वह आँखे फाड़कर, देखता ही रह गया।

(२) पोपाबाई के पास एक केस पहुँचा कि सेठ करोड़ीमल से सरकार के आठ हजार रुपये लेने थे । इसलिये उसकी जायदाद कुर्क हुई, उससे वीस हजार रुपये वसूल हुए। करोडीमल ने शेष बारह हजार रुपये के लिये दरख्वास्त दी तो पोपाबाई ने कहा—'ऐसे लोग यों ही चिल्लाया करते है। इसे फाइल करो जी। लिख दो, उसे जहाँ नालिश करना हो वहाँ नालिश करे-वाजाब्ता।'

(३) केस था–धनजी की रुपये की थैली, वनजी मुट्ठी भर धूल डालकर, दुकान से लेकर चम्पत हो गया। इसलिये बनजी को बदी वनाकर, पोपाबाई के सामने लाया गया। परन्तु उसे यह बात समझ मे न आई कि कोई भरे बाजार से रुपये की थैली लेकर, कैसे भाग सकता है। इस वात का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिये, पोपाबाई ने बनजी की हथकडियाँ खुलवाई। धनजी से रुपयों की दूसरी थैली रखवाई। तव वनजी ने मुट्ठी भर धूल फेंकी और थैली लेकर नौ-दो ग्यारह हो गया। धनजी वोला—

हीया फूट हाथ में आया, थैलो फेर गमाई।
झक मार्यो फरियाद करी मैं, अकल आज से आई॥

शिक्षा—(१) जहाँ न्याय के नाम पर नाटक होता है, वहाँ फरियादी को दुःख ही उठाना पड़ता है।

(२) बुद्धि-हीन और स्वार्थी शासक के शासन मे सत्य का अंशमात्र रहना भी कठिन है और सुख भी वहाँ से दूर ही रहता है।



(५०) पट्टा को बतावें जब....'

मृग के गले में नृप, लिख के अभय-पट्टा
डारे ताको कभी वध जाय नहि क्यों है।

निरभीक होय मृग, फिरे वन-गाम बीच
मिला श्वान किसी दिन मृग पीछे पर्यो है ।।
कहै 'सूर्य' भगे मृग, तामें एक मृग बोल्यो—
'भगो क्यों ? बताओ पट्टो, गले बीच घर्यो है' ।
'पट्टा को बतावे जब न्याय-नीतिवान होय,
श्वान को बताये भाई ! कौन काज सर्यो है ?' ।।५१।।

एक राजा को शिकार का बहुत शोक था । एक दिन वह जंगल में शिकार खेलने गया । उसने एक मृगी पर तीर छोड़ा । हरिणी गर्भवती थी । तीर लगते ही उसका गर्भ छिटक पड़ा । हरिणी और वह गर्भ का जीव राजा की आँखो के सामने ही तड़प-तडपकर मर गया । राजा के हृदय मे अत्यन्त दुःख हुआ । मन्त्री भी हरिणी के दम तोड़ने के समय की पीडा देखकर दु खी हो रहा था । उस दिन से राजा ने शिकार खेलना छोड दिया और हरिणों को कोई कष्ट न पहुँचाए-उन्हे न मारे, इस हेतु उनके गले मे अभयपट्टा डलवा दिया । हरिण के झु ड निर्भयता से वन मे विहार करने लगे ।

एक बार कुछ कुत्ते जगल मे पहुँच गये । वे उन हरिणो के झुण्ड के पीछे पड़ गये । हरिण घबराये और भागने लगे । तब एक हरिण ने पूछा'—भाग क्यो रहे हो ?' एक साथ कई ने उत्तर दिया— 'तुम्हे दीख नही रहा ? कुत्ते पीछे पड़े हैं जो ?' तब उसने कहा— 'अपने गले मे अभयपट्ट पड़ा हुआ है न !' कइयो ने आश्चर्य से पूछा— 'तो इससे क्या हुआ ?' उसने कहा—'इन कुत्तो को बता दे इसे !' सब एक साथ हँस पड़े और बोले—'अरे भाई ! जो न्याय-नीति को समझते हों-जो न्याय-नीति मे विश्वासी हो उनको पट्टा बताया जाता है । इन कुत्तो को पट्टा बताने से कौन-सी सिद्धि होने वाली है ?'

सभी हरिण चौकड़ी भरते हुए भाग गये ।

शिक्षा—(१) अन्यायी से न्याय मागने नही जाना चाहिये । उससे दूर रहना ही अच्छा है ।

(२) श्वानवृत्तिवाला अर्थात् दया, न्याय, नीति आदि उदात्त भावनाओ को ठुकराकर, मर्यादा हीन अत्याचारी नहीं बनना चाहिये।

(३) किसी की न्याय की माग पर कोमलता मे विचार करना चाहिये।



(५१) न्याय-नीति कहो इनको

विदेशी मनुष्य धन, वृक्ष तले गाड गया,
बीते षट्मास, लेन आयो निज धन को।
मिला नहीं धन, जाके नृप से अरज करी,
वैद्य को बुलाय नृप, पूछे वृक्ष गुन को ॥१
तरु-गुण कहा वैद्य, पूछे नृप—'षट मास—
मध्य वृक्ष-जड़-गुण कहा कोई जनको ?'
रोगी का बताया नाम, चट से दिलाया माल
कहै 'सूर्यमुनि' न्याय-नीति कहो इनको ॥५२॥

एक नगर में एक विदेशी मनुष्य आया। उसके पास कुछ धन था। उसे उस नगर से ऐसे मार्ग से जाना था, जिसमें लूट जाने का डर था। उस नगर में भी उसका कोई परिचित नही था कि जिसके पास वह अपनी धनराशि को सुरक्षित रख सके। आखिर वह वहुत सोच-विचार के वाद नगर के बाहर आया। उचित समय मे उसने एक वृक्ष के नीचे धन गाड़ दिया।

छह मास वाद वह व्यक्ति आया। परन्तु उस स्थान पर उसे धन नही मिला। वह वहुत ही दुखी हुआ। वह धन को अब कैसे खोजे-यही चिन्ता उसे सता रही थी। आखिर उसने राज्याश्रय लेने का विचार किया। वह राजा के पास पहुँचा। उसने राजा के सामने

अपनी वात रखी। वह वोला—'मैं जानता हूँ कि यह किसी व्यक्ति पर आरोप नही है। यह केस आपके न्याय की सीमा मे आता है या नही-यह मै जानता हूँ। मैं तो आपकी न्याय निष्ठा को जानकर ही यहाँ तक आया हूँ।' राजा ने उसे आश्वासन दिया। राजा ने उसकी वात की सत्यता की प्रतीति कर ली। फिर उसे कहा—'तुम्हें न्याय मिल सकेगा–ऐसी सभावना है।'

राजा कुछ देर तक विचार करता रहा। राजा की दृष्टि अपने यहाँ के वैद्यो पर गई। उसका ध्यान एक वैद्य की ओर गया। राजा ने वृक्ष के पत्ते आदि मँगवाये और उस वैद्य को भी वुलवाया। राजा ने वैद्य से उस वृक्ष के पत्ते, जड आदि के गुण पूछे। वैद्य ने कहा—'हाँ, वृक्ष की जड़ वहुत गुणकारी है। अमुक रोग मे यह वहुत फायदा करती है।' राजा ने पूछा—'इन छह महिने के भीतर आपने किसी से इस वृक्ष की जड मंगवाई थी या किसी को इसको उपयोग मे लेने का कहा था-?' वैद्य ने कहा—'हाँ ! एक ही जने को इसकी जड उपयोग मे लेने की वात कही थी। उस रोगी को कभी-कभी अभी भी देखने जाना पडता है।'

राजा ने उस व्यक्ति को बुलवाया। उससे विविध प्रश्न करके, राजा ने रहस्य को जान लिया। वह व्यक्ति भी दूसरे का धन हड़पना नही चाहता था। इसलिये उसने भी धन पाने की वात स्वीकार करके, वह धन उस विदेशी को दे दिया। इस प्रकार राजाने उस विदेशी मनुष्य का धन उसे दिला दिया और विदेशी मनुष्य उसके न्याय की महिमा गाता हुआ, अपने देश की ओर रवाना हो गया।

शिक्षा—(१) जो न्याय-नीति की निष्ठावाला होता है, वह न्याय करने से मुकरता नही है।

(२) न्याय-निष्ठा मनुष्य को सूक्ष्म बुद्धिवाला वनाती है और जो सूक्ष्म बुद्धि का स्वामी होता है, वह उलझे हुए केस को भी सरलता से सुलझा सकता है।

आचार-विशुद्धि [५२ से ७७]

[क्रम की समझ—]

प्रेरणा के बिन्दु—५२-५३ मनुष्य भव की दुर्लभता, ५४ भव (वंधन) रुचि.

साधना की भूमिका—५५. उद्यम के भेद, ५६ शक्ति की पहचान, ५७, दु.ख-व्यक्तित्व निर्माण का हेतु,

साधना—५८ दुर्व्यसन-परित्याग,

५९, मरण भीति, ६० सज्जनता-दुर्जनता (दया-हिंसा) ६१-६२-६३—अदत्तादान (शक्ति का दुरुपयोग-ठगाई).

काम वृत्ति—६४ काम भाव का दण्ड, ६५,देहाकर्षण की व्यर्थता,

परिग्रह वृत्ति के नाटक—६६, ईर्ष्या, ६७-६८ कृपणता, ६९ मोह का फल, ७० अत्यधिक मूर्च्छा, ७१. मानव की उपेक्षा, ७२. दरिद्रता का कारण—आत्म-ऐश्वर्य का प्रतिबन्धक,

परिग्रह-भावना का नियन्त्रण—७३, दान, ६४. प्रतिदान,

७५ उपभोग-परिभोग-नियन्त्रण

चारित्र शुद्धि का प्रमुख उपाय-सत्संग—७६. अच्छे स्थान-निवास से सन्मान ७७ संगति का फल,

[मनुष्य भव की दुर्लभता के बोध और भव-रुचि के अभाव से आत्म-साधना की प्रेरणा प्राप्त होती है। आत्म-साधना के लिये प्रेरित व्यक्ति जब उद्यम की शुभाशुभता को समझता है, अपनी शक्ति को पहचानता है और सुख-दु ख के प्रति अपनी रुचि को परिवर्तित करता है, तब आत्म-साधना की भूमिका तैयार होती है। दुर्व्यसन का परित्याग साधना का प्रथम चरण है। फिर हिंसा-विरमण, मृषा-वाद-विरमण, अदत्तादान-विरमण, मैथुन-विरमण और परिग्रह-विरमण इन पाँच व्रतो का आचरण होता है। इन व्रतों के दो रूप है—(१) निवृत्ति और (२) नियन्त्रण। नियन्त्रण में हिंसादि दूषणो मे आंशिक निवृत्ति होती है। आचार शुद्धि की साधना का प्रारम्भ और शुद्धाचार का सरक्षण सत्सङ्ग से होता है।]

(५२) स्वर्ण घट और बावना चन्दन (सवैया)

कठियारन छेदत चन्दन को, तहाँ–
कंचन को इक कुम्भ दिखावे ।
तब चूल धरी तस, इंधन चन्दन,
आग लगाय अनाज पकावे ।।
इक देखत सेठ कहे समझाय–
'अरे ! कहाँ बावन चन्दन जारे ?'
सुन 'सूर्य' तदा समझे, तन है घट,
चन्दन आयु सुधी दिल धारे ।।५३।।

एक कठियारिन लकडियाँ लेने के लिये जंगल मे गई । वहाँ एक चन्दन का वृक्ष था । वह आधा सूख गया था । उसने उसे काट लिया । उस चंदन जड़ मे की धातु की एक हडिया दिखाई दी । वह हडिया खाली ही थी । उसने काम में आने लायक देखकर उसे भी ले लिया और वह नगर की ओर आई । उस दिन उसकी लकडियाँ नही विकी । उसने सोचा—'मुझे भी इन्धन चाहिये । अत अपने लिये ही ये लकड़ियाँ रख लूँ ।

वह रोज चन्दन को जलाने लगी और उस हडिया में खीचड़ी पकाने लगी । एक दिन एक श्रेष्ठि उस मोहल्ले से गुजर रहा था । उसे चन्दन जलने की सुवास आई । वह उस सौरभ का अनुसरण करता हुआ उस कठियारिन के घर आ गया और उसने घर मे प्रवेश किया । वह वहाँ का दृश्य देखकर दंग रह गया ।

उसने कठियारिन से कहा—'तू यह वहुमूल्य लकडी क्यो जला रही है ? क्या तूं इसे पहचानती है ? और यह हडा किस धातु का है—क्या तुझे यह पता है ?'

भोली कठियारिन वोली–'मुझे कुछ भी मालूम नही है ?'

सेठ ने कहा—'यह लकडी बावना-चन्दन है। यह बहुत ही मूल्यवान है और यह हंडिया सोने की है। इसमे बहुमूल्य पाँच रत्न लगे हुए हैं। तू बड़ी भाग्यवान है कि ये तेरे हाथ लगे हैं!'

कठियारिन सेठ के कहे अनुसार कार्य करके निहाल हो गई।

उपनय—कठियारिन जीव है। चन्दन की लकडी आयुष्य है। स्वर्ण घट यह मानव-तन है। पाँच रत्न पाँच इन्द्रियाँ है। विषय खीचडी है। कषाय अग्नि है। सेठ निर्ग्रन्थ गुरु है। सेठ का वार्तालाप जिनप्रज्ञप्त-धर्म का उपदेश हैं।

शिक्षा—हमे अपना आयुष्य, इस तन के द्वारा विषयभोग की खिचडी पकाने मे न गँवाना चाहिये।



(५३) मनुष्य भव का दुरुपयोग (कवित्त)

एक नृप सचिव को खुशी हो दुशाला दिया,
बहने लगा नाक जब, तासे पोछ डारा है।
एक द्रोही देख, जाय राय को सुनाया हाल
होय क्रोधवश नृप मंत्री को निकारा है॥
ऐसे शाल सम देह मिली पुण्योदय वश
विषै-रस नाक पोछ खोवत गँवारा है।
जावे दुरगति मर, नरभव भ्रष्ट कर
कहै 'सूर्यमुनि' सुधी जनम सुधारा है॥५४॥

एक था राजा। उसका मत्री भी योग्य था। उसने राजा को प्रसन्न करने के लिये शासन के हित के अनेक कार्य किये और राजाज्ञा का पालन करते हुए प्रजा का दुःख दूर किया। राजा उससे परम सन्तुष्ट थे।

एक वार विदेश से कुछ व्यापारी आये। उन्होने राजा को बहुमूल्य भेट दी। उसमे एक अनूठा दुशाला भी था।

दुशाला नयनाभिराम, मनोरम, कला का सुन्दर नमूना और सुखद स्पर्श से युक्त था।

राजा मंत्री से प्रसन्न था। अत उसने वह दुशाला मंत्री को पुरस्कार-स्वरूप प्रदान किया।

शीत काल का समय था। मंत्री को जुकाम हो गया था। उसकी नाक वह रही थी। उसने दुशाले से नाक पोंछ लिया। वह वार-वार ऐसा ही कर रहा था।

चुगलखोर ने राजा से चुगली कर दी।

राजा एकदम क्रुद्ध हो गया। राजा के पुरस्कार की ऐसी अवहेलना! राजा के पुरस्कार का तिरस्कार अर्थात् राजा का तिरस्कार।

राजा ने मत्री को देश से वाहर निकाल दिया!

उपनय—राजा है पुण्य। मत्री है जीव। मंत्री के कार्य हैं मनुष्य गति के वन्ध के कारण। विदेशी व्यापारी अर्थात् नाम कर्म। दुशाला है मनुष्य शरीर। शीतकाल है विपयो को प्राप्त करने का प्रयत्न। जुकाम है विपयो की सम्प्राप्ति। नाक का वहना है मोहोदय-भोगतृष्णा। दुशाले से नाक पोंछना है—तन से विपयो को भोगना। चुगलखोर है पाप और देश निकाला है—दुर्गति मे—नरक -तिर्यञ्च गति मे जाना।

शिक्षा—(१) **'सुधी जनस सुधारा हैं'** वुद्धिमान नरभव का दुरुपयोग न करे।

(२) वडो की दी हुई वस्तु का दुरुपयोग नही करना चाहिये।

---

(५४) निलज्ज लाजे नाही

कैद नव महिना की सुनी मन मोद भयो
पूछे जज–'खुश कैसे! कहो दरसाय के!'

'विचार में था इसी कि ग्रीष्म ऋतु काल ये है
कैसे ये व्यतीत करें कौन ठौर जाय के ।।
सासरे कि पिता पास जावें या मामा के द्वार ?
अब कहीं जाने की जरूर नाँ जनाय के'।
कहै 'सूर्यमुनि' ऐसे निरलज्ज लाजे नही
कारागार देओ चाहे गधे पै बिठाय के ।।५५।।

एक व्यक्ति पर केप चल रहा था। उसपर गंभीर आरोप था। आरोप भी शासन की ओर से था । परन्तु उसे कुछ भी चिन्ता नही थी। वह चलता-पुर्जा था। वह अपने ग्राम से दूर था। उसने तस्कर-व्यापार मे कुछ सम्पत्ति भी जोड ली थी और इस व्यापार मे किसी शासन-विरोधी प्रवृत्ति मे पकडे जाने के कारण उसपर केस चल रहा था।

आज फैसले का दिन था। वह फैसला सुनने को उत्सुक था।

जज ने फैसला सुनाया—'छह माह की सजा और दो हजार रुपये दण्ड। यदि दण्ड नही भरे तो नव माह की सजा।'

उसने कहा—'रुपये तो मेरे पास नही है !'

जज ने कहा—'तो तुम्हे नव माह की सजा भुगतनी होगी।'

उसने प्रसन्नता से कहा—'चलो, मेरी समस्या हल हो गई। अव मुझे निर्णय करने की दिक्कत नही रही।

जज ने कहा—क्या समस्या थी तुम्हारी ?'

अभियुक्त हँसकर बोला—'कुछ दिन से मुझे विचार हो रहा था कि इस ग्रीष्म ऋतु का काल मेरे लिये अवकाश का है । इसे कहाँ बिताना ? पिता के पास जाऊँ ? या सुसराल मे जाऊँ ? या मामा के घर जाऊँ ? पर आज कोई समस्या नही रही। अव कही जाने की आवश्यकता नही है। नव माह तक निश्चितता है' यह कहकर, वह जोर से हँस पडा।

जज आश्चर्य से उसकी ओर ताकने लगा।

शिक्षा—(१) 'निर्लज्ज लाजे ही नाही, कारागार देखो चाहे गधे पे बिठाय के' निर्लज्ज मनुष्य ढीठ होता है। उसे न तो कारागार में जाने मे शर्म होती है और न गधे पर बैठने मे ही। वह दुष्कर्म से विरत ही नही होता है। कुछ न कुछ लोकलाज अवश्य होना चाहिये। जिससे दुष्कर्म मे बचा जा सके।

(२) मनुष्य पुन -पुन जन्म लेन से-नव महिने की कैद से लज्जित नही होता है और फिर-फिर जन्म लेने की इच्छा करता है-यही आश्चर्य है।



(५५) उद्यम भेद शुभाशुभ (सवैया)

युग मूषक भोजन काज गये—
मिल, देख पिटारी सु काटन धारे।
तब नाग महा निकल्यो तिनसे,
झट मूषक खाय हुवो मतवारे॥
जब एक पिटारी मिठाई की काटत
आखु भयो मन हर्ष अपारे।
इम उद्यम भेद शुभाशुभ देखिये
'सूर्य' विचार करो मन प्यारे॥५६॥

दो चूहे एक जगह मिल गये। एक था काला चूहा और एक था सफेद। काले ने सफेद से कहा—'दोस्त ! कहाँ जा रहे हो !' सफेद ने कहा—'भोजन की टोह मे !' काले ने कहा—'चलो, मैं भी चलता हूँ।' दोनो एक सँपेरे के मकान में पहुँच गये। वहाँ एक कोने मे एक करंडिया रखा हुआ था। काले ने कहा—'चलो, इसे काटें। इसमें कुछ माल होगा ?' सफेद ने कहा—'ना, इसे मत काटो। माल होता तो कुछ सुगन्ध आती।' काले ने कहा—'लो, पेकबन्द सूखे मेवे की भी

कही सुगन्ध आती होगी ?' सफेद ने कहा—'मुझे तो यहाँ भय का स्थान दीख रहा है।' काले ने कहा—'तुम बडे डरपोक हो, दोस्त ! ऐसे तो भूखे मरोगे। बडी मुश्किल से यह करडिया हाथ आया है। मै इसे यो ही छोडने वाला नही हू।' यों कहकर काले चूहे ने करडिया काटना शुरु कर दिया। पर सफेद चूहे ने कहा—'अच्छा, भाई ! नमस्ते। मैं तो जाता हूँ।'

काला चूहा उस पर हँस पडा। सफेद चूहा चला गया और काला चूहा करडिया काटने लग गया। वस्तुत: वह साँप की पिटारी थी। उसमे साँप भूखा हो रहा था। चूहे ने करडिया काट डाला और खुशी से किलकारी भरता हुआ वह अन्दर पहुँचा। साँप ने अपने पास ही भोजन को आया हुआ देखकर, प्रसन्नता के साथ उसे निगल लिया। काला चूहा आया था मेवा खाने के लिये। लेकिन अपने अविचार के कारण वह खुद ही खा लिया गया।

सफेद चूहा गन्ध लेता हुआ एक हलवाई की दुकान पर पहुँच गया। हलवाई ने ताजी मिठाई बनाकर पिटारी मे बन्द करके रखी थी। चूहा उस पिटारी के पास पहुँच गया। उसे बढिया सुगन्ध आ रही थी। वह सुगन्ध मे मस्त हो गया। उसने पिटारी काटी और उसमें मिठाई पाकर, उसके हर्ष का पारावार न रहा। उसने पेट भर-कर मिठाई खाई और फिर वहाँ से उछलता-कूदता हुआ अपने घर की ओर रवाना हो गया।

काले चूहे ने भी श्रम किया था और सफेद ने भी। परन्तु पहले का उद्यम उसका काल बन गया तो दूसरे का उद्यम उसके लिये आनन्द-प्रदाता बन गया। योग्य स्थान पर किया हुआ उद्यम ही सार्थक होता है।

शिक्षा— १) 'इम उद्यम भेद शुभाशुभ देखिये' अर्थात् उद्यम दो प्रकार का है–शुभ और अशुभ। शुभाशुभ का विचार किये बिना सहसा ही किया जाने वाला उद्यम अशुभ बन जाता है। जब

शिक्षा—(१) 'निर्लज्ज लाजे ही नाही, कारागार देखो चाहे गधे पे विठाय के' निर्लज्ज मनुष्य ढीठ होता है। उसे न तो कारागार मे जाने मे शर्म होती है और न गधे पर बैठने मे ही। वह दुष्कर्म से विरत ही नही होता है। कुछ न कुछ लोकलाज अवश्य होना चाहिये। जिससे दुष्कर्म मे बचा जा सके।

(२) मनुष्य पुन-पुन जन्म लेने से-नव महिने की कैद से लज्जित नही होता है और फिर-फिर जन्म लेने की इच्छा करता है—यही आश्चर्य है।



(५५) उद्यम भेद शुभाशुभ (सवैया)

युग मूषक भोजन काज गये—
मिल, देख पिटारी सु काटन धारे।
तब नाग महा निकल्यो तिनसे,
झट मूषक खाय हुवो मतवारे॥
जब एक पिटारी मिठाई की काटत
आखु भयो मन हर्ष अपारे।
इम उद्यम भेद शुभाशुभ देखिये
'सूर्य' विचार करो मन प्यारे॥५६॥

दो चूहे एक जगह मिल गये। एक था काला चूहा और एक था सफेद। काले ने सफेद से कहा—'दोस्त! कहाँ जा रहे हो!' सफेद ने कहा—'भोजन की टोह मे!' काले ने कहा—'चलो, मैं भी चलता हूँ।' दोनो एक सँपेरे के मकान मे पहुँच गये। वहाँ एक कोने मे एक करंडिया रखा हुआ था। काले ने कहा—'चलो, इसे काटे। इसमे कुछ माल होगा?' सफेद ने कहा—'ना, इसे मत काटो। माल होता तो कुछ सुगन्ध आती।' काले ने कहा—'लो, पैकबन्द सूखे मेवे की भी

पाला–पोषा ।कुत्तिया के बच्चे बड़े हुए। वे सिंह के बच्चो मे पले थे। अतः वे उनकी बराबरी करने लग जाते । उस समय सिहनी उन्हे ऐसा करने से रोक देती। तब उन्हे बहुत ही बुरा लगता।

वे परस्पर विचार करते कि मौसी पक्षपात करती है। अपने को आगे बढने देना नही चाहती है और अपने को डरपोक समझती है या कायर बनाती है। परन्तु वे सिहनी से यह बात कह नही पाते थे। अत. मन मार कर रह जाते।

एक दिन कुत्ते के एक बच्चे ने साहस किया और उसने सिहनी से पूछ ही लिया—'मौसी ! तुम हर बात मे हमे क्यों रोकती–टोकती हो।' सिहनी मन ही मन हँसी और बोली—'बेटा ! फिर कभी बताऊँगी !'

एक हाथी दूर पर दिखाई दिया। सिहनी ने श्वान से कहा—'जाओ, इसे मार लाओ !' कुत्ते बड़े होस से गये, यह सोचते हुए कि आज हम मौसी को बतला देगे कि हम भी कुछ कम नही हैं। वे हाथी को मार नही सके। केवल भौक ही सके और अंत मे डरकर, भाग आये। फिर सिहनी ने अपने बेटे से कहा। तब सिह का बेटा बोला—'माँ ! इसमे क्या बड़ी बात है !' और उसने क्षण मे हाथी को मार डाला। इस प्रसग से कुत्तो को अपने पर बडी ग्लानि हुई। तब सिहनी बोली—'बेटा ! खिन्न क्यो होते हो। तुम जिस कुलमे जनमें हो उस कुलमे हाथी का शिकार नही किया जाता है।'

शिक्षा—'निज औकात पिछान करो'—किसी की बराबरी करना अच्छा नही है। अपनी शक्ति को पहचानना चाहिये। और फिर किसी कार्य को हाथ मे लेना चाहिये। ऐसे ही धर्मक्रिया करने मे भी अपने बलाबल को पहचानना चाहिये।



कि शुभाशुभ के विवेक से युक्त अशुभ के परिहार पूर्वक किया जाने वाला उद्यम शुभ है। अतः विवेक पूर्वक शुभ उद्यम ही करना चाहिये।

(२) 'सूर्य विचार करो मन प्यारे' अर्थात् हे देवानुप्रिय ! मन मे शुभ और अशुभ उद्यम के विषय मे विचार करो। उद्यम के लिये उच्च स्थान ही खोजो। निम्न स्थान या विकार-वर्धक कार्यो मे उद्यम मत करो। विकार-वर्धक कार्यों मे उद्यम करोगे तो भोग रूपी भुजंग के भक्ष्य वन जाओगे और विकार को हटाने वाले कार्यों मे उद्यम करोगे तो अनुपम सुख का आस्वादन करोगे।



(५६) निज औकात पिछान करो (कवित्त)

सिहनी ने कुत्तिया के बच्चे पाले दूध पाय,
बड़े हुए, करे सिह-पुत्र की बराबरी।
सिहनी कहे श्वान को–'जाओ हाथी मार लाओ'
गए पर भाग आये, खेल है खराखरी॥
सुन सिह-सुत गए, हाथी मार लाये झट,
कहै सिह-सुत 'यामें काहे की डराडरी'।
कहे 'सूर्यमुनि' निज औकात पिछान करो
कहाँ सिह-सुत ? कहाँ कुत्तिया है बापरी ?॥५७॥

एक सिहनी और कुत्तिया मे मित्रता हो गई।

सिहनी ने बच्चे दिये और कुत्तिया ने भी। परन्तु कुत्तिया बच्चो को जन्म देने के वाद मर गई। सिहनी ने अपनी सहेली पर प्रीति होने के कारण कुत्तिया के बच्चो को अपने बच्चो के समान ही

हँसते हुए देखा और उसको सम्बोधित करके घडा बोलने लगा, तव तो वह स्तब्ध रह गई। वह मृण्मय घट हँसता हुआ कह रहा था—

'रत्ने ! तुम मुझपर हँस रही हो। परन्तु मैंने इस अप्सरा के उत्तमाग पर मोतियो की गादी पर यो ही स्थान नही पा लिया है। कितने कष्टो को सहा है मैंने ? मैं क्या यो ही इस सन्मान का पात्र हो गया हू ? लो, सुनो, मेरी दु ख गाथा—

कोदारेण विदारिता वसुमती पश्चात् खरारोहणं,
तत्पापिष्ट-कुलाल-पादहननं दण्डेन चक्र—भ्रमः।
रज्वा छेदन-ताप-ताड़न-मथो ह्येतद् विषोढं मया,
कामिन्या- करटंकणं बहुकृतं ह्येतद्धि दुःख महत् ॥

अरे ! मैं पृथ्वी के एक खण्ड के रूप मे आनन्द में था कि एक कुम्हार आया। उसने मुझे कुदाल से खोद डाला। उस समय मुझे कितनी वेदना हुई ? पीडा तो हुई सो हुई, पर घर ही सदा के लिये छूट गया। भला, मैंने क्या अपराध किया था उस कुम्हार का, जो उसने मुझे गधे पर विठाया ? और देखो उसकी वेअदवी को कि उसने मेरा कुछ भी मान-सन्मान न करते हुए, मुझे यो ही भूमि पर पटक दिया। उस समय मैं इस तिरस्कार से तिलमिला ही रहा था कि उसने मुझ पर पानी छिटक दिया और मुझे पाँवों से इतना रौंदा कि मेरी हड्डी-पसली एक कर दी। उस समय मैंने कुम्हार को वहुत गालियाँ दी और कहा—'रे पापी ! दुष्ट !

तू रौंदे क्या मोय।
मैं रौंदूँगी तोय' ॥

पर उसने मेरी एक न सुनी। मुझे चाक पर विठाया और उसने दण्डे से चाक को खूब जोरो से घुमाया। अहा ! कितने चक्कर आये ! फिर उसने मुझे अपने मन के अनुसार आकार दिया। रस्सी से छेदा। धूप मे सुखाया। इतना ही नही उसने भीतर कुछ रखकर, ऊपर से मुझे पीटा भी सही। फिर मुझे रगा और घोटा। दु ख-परम्परा

(५७) सन्मान के पात्र कैसे बने ? (सवैया)

'भूमि कुदाल से खोद करी, खर–
पै धर गाँव मही मुझ डार्यो ।
दुष्ट कुलाल हन्यो पग से, रज्जु–
छेद हु दण्ड सुचक्र भमायो ।।
ताड़न–मारन–ज्वाल सही, तिय–
टाकर से वर बोल उचार्यो ।
दुःख सह्यो' सुन 'सूर्य' कहे' 'इन
कारन से घट ले सिर धार्यो' ।।५८।।

'अहा ! कितने संकट ! कितने दुःख ? इससे तो पानी में डूब मरना अच्छा !' रत्ना ने सोचा । रत्ना नागरी कन्या थी । परन्तु उसके लग्न हुए थे ग्राम मे । वह नगर के सम्पन्न कुल की कन्या ग्राम के स्वाभिमानी और बहुत बडे, किन्तु स्वल्प वैभव वाले कुल मे आ पडी अत. परिवार के अन्य सदस्यो के साथ उसे बहुत श्रम करना पडता था । फिर वह काम करने की अभ्यस्त नही थी । इसलिये उसकी टीका-टिप्पणी भी होती थी । इन कारणों से वह अपने को अति तिरस्कृत समझती थी और इसीलिये उसने गाँव के बाहर के कुए मे डूबकर आत्म-हत्या करने का निर्णय कर लिया ।

रत्ना ने अवसर देखकर पीतल का कलशा हाथ मे उठाया और कुए पर पहुँच गई । उसने समझा था कि इस समय पनघट सुनसान मिलेगा और जब वह कुए पर पहुँची, तब वहाँ कोई नही था । किन्तु क्षण भर बाद ही एक अप्सरा-सी सुन्दरी कुए पर आती हुई दिखाई दी । वह समीप आई । रत्ना ने देखा सुन्दरी ने एक सुन्दर एव कला पूर्ण चुमरी सिरपर रखकर, उसपर मिट्टी का घडा रखा है और एक घडा गोद मे लिया है । रत्ना को यह दृश्य देखकर, हँसी आ गई । पर यह क्या ? रत्ना के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा, जब उसने घड़े को

हँसते हुए देखा और उसको सम्वोधित करके घडा वोलने लगा, तव तो वह स्तब्ध रह गई। वह मृण्मय घट हँसता हुआ कह रहा था—

'रत्ने ! तुम मुझपर हँस रही हो। परन्तु मैंने इस अप्सरा के उत्तमाग पर मोतियो की गादी पर यो ही स्थान नही पा लिया है। कितने कष्टों को सहा है मैंने ? मैं क्या यो ही इस सन्मान का पात्र हो गया हूं ? लो, सुनो, मेरी दु ख गाथा—

कोदारेण विदारिता वसुमती पश्चात् खरारोहणं,
तत्पाविष्ट-कुलाल-पादहननं दण्डेन चक्र—भ्रमः।
रज्वा छेदन-ताप-ताड़न-मथो ह्येतद् विषोढं मया,
कामिन्या- करटंकणं बहुकृतं ह्येतद्धि दुःख महत् ॥

अरे ! मैं पृथ्वी के एक खण्ड के रूप मे आनन्द में था कि एक कुम्हार आया। उसने मुझे कुदाल से खोद डाला। उस समय मुझे कितनी वेदना हुई ? पीडा तो हुई सो हुई, पर घर ही सदा के लिये छूट गया। भला, मैने क्या अपराध किया था उस कुम्हार का, जो उसने मुझे गधे पर विठाया ? और देखो उसकी बेअदवी को कि उसने मेरा कुछ भी मान-सन्मान न करते हुए, मुझे यो ही भूमि पर पटक दिया। उस समय मैं इस तिरस्कार से तिलमिला ही रहा था कि उसने मुझ पर पानी छिटक दिया और मुझे पाँवो से इतना रौंदा कि मेरी हड्डी-पसली एक कर दी। उस समय मैंने कुम्हार को वहुत गालियाँ दी और कहा—'रे पापी ! दुष्ट !

तू रौंदे क्या मोय।
मैं रौंदूँगी तोय' ॥

पर उसने मेरी एक न सुनी। मुझे चाक पर विठाया और उसने दण्डे से चाक को खूव जोरो से घुमाया। अहा ! कितने चक्कर आये ! फिर उसने मुझे अपने मन के अनुसार आकार दिया। रस्सी से छेदा। धूप में सुखाया। इतना ही नही उसने भीतर कुछ रखकर, ऊपर से मुझे पीटा भी सही। फिर मुझे रगा और घोटा। दु ख-परम्परा

यही समाप्त नही हो गई । उस समय हमारा दु ख चरम सीमा पर पहुँच गया, जब उसने हमे आग मे डाल दिया। उस समय के दु खों को याद करके, अभी भी रोगटे खडे हो जाते है। आखिर अग्नि मे तपकर, पक्के हो गये। फिर हमारा रग निखर गया और हम पर कलापूर्ण चित्रकारी की गई। परन्तु हे राम ! हमे फिर भी गधे पर चढना बाकी था, सो हमे गधे पर चढाकर हाट-बाजार में लाया गया। वहाँ हमने आप जैसी ललनाओ के कितने टकोरे सहे ? टङ्कार मे सुरीली आवाज की तो मैं उत्तीर्ण हो गया। तब कही मैं पानी भरने के योग्य पात्र समझा गया और मुझे यह सन्मान का स्थान मिला ! बोले, क्या मैं इस सन्मान के योग्य नही हू······' घट हँस रहा था, हँसता जा रहा था।

रत्ना की नीद खुल गई। रत्ना ने सोचा—'अरे ! मै स्वप्न देख रही थी ! पर कितना सुन्दर स्वप्न ? मैं मरने का विचार कर रही थी। पर यह स्वप्न मुझे सुन्दर शिक्षा दे गया कि कष्ट तो अपने व्यक्तित्व को घड़ने का एक श्रेष्ठ साधन है। क्यो मरू फिर मैं ? क्यो घबराऊँ कष्टो से ? क्यो न इन कष्टो से अपने व्यक्तित्व को घड जाने दूँ ?····'

और रत्ना अपने आप पर ही हँस पडी।

शिक्षा—मनुष्य को दु ख से घबराना नही चाहिये। उसे अपने व्यक्तित्व के निर्माण का साधन बना लेना चाहिये।

— — —

(५८) मदपान कियो

मदपान कियो नर मूढमती,
छकियो मद मे, सुध हीन भयो।
तस नाक पै बैठत मक्खी तबै,
उड़ती न उड़ावत यत्न कियो ॥

मुनि 'सूर्य' कहे मह रोष भयो
झट चाकु से नाक कु काट लियो।
'अब क्योंकर बैठेगी राँड अरी !
वह बैठक को अड्डा उड़ाय दियो' ॥५९॥

एक मद्यप था। वह बहुत मद्य पिया करता था। घर के मनुष्य उसे समझा-समझाकर थक गये थे। परन्तु वह नशा करना नही छोड़ सका सो नही छोड सका।

एक बार उसने मद्य का शीशा लिया और प्याली में मद्य डाल-डालकर पीने लगा। उसे नशा आने लगा। वह बडबडाने लगा। अकस्मात् एक मक्खी आई और उसके नाक पर बैठ गई। उसे मक्खी का स्पर्श अच्छा नही लगा। उसने हाथ से मक्खी को उड़ा दिया। मक्खी पुन नाक पर आकर बैठ गई। उसने फिर उसे उडा दिया। कई बार ऐसा हुआ। मक्खी पीछा नही छोड रही थी। शराबी को बडा क्रोध आया। पास मे ही चाकू पडा था। उसने चाकू उठा लिया और गुस्से मे उससे बोला—'देख, मान जा ! नही तो इससे तेरा काम तमाम कर दूँगा !' फिर कुछ भी असर नही हुआ मक्खी पर। उसने दो-चार बार चाकू को घुमाया भी सही। पर सब व्यर्थ ! मक्खी नाक पर बैठना छोड ही नही रही थी।

अब तो मद्यप को बहुत क्रोध आया। वह बुदबुदाया—'कैसी है, यह दुष्टा ! जरा भी नही समझ रही है ! अब इसका पक्का इलाज करना पड़ेगा ! अरे ! इसके बैठक के ठिकाने को ही हटा दूँ न !' यह कहकर, उसने मद्य से बुद्धि विकृत बन जाने के कारण चाकू से अपनी नाक को ही खप्प-से काट डाला। फिर अट्टहास करते हुए बोला—'री रंडे ! अब कहाँ बैठेगी ? तेरे बैठने के अड्डे को ही उडा दिया हैं ?'

परन्तु वही मक्खी नही, कई मक्खियाँ उस रक्त से सने हुए

स्थान पर आकर बैठने लगी। विकृत बुद्धि ने दु:ख मोल लेने के साथ ही अनेक क्षुद्र जन्तुओं को आमन्त्रित कर लिया।

शिक्षा—(१) 'मदपान कियो नर मूढमती'''''भयो'-शराब पीनेवाला शराब के नशे में अपनी बुद्धि गँवा देता है। अत शराब पीना अच्छा नही है।

(२) 'मदपान कियो नर मूढमती' अर्थात् जो मनुष्य अभिमान करता है, वह मूर्ख बन जाता है। अत. वह अभिमान के नशे मे ठीक तरह से नही सोच पाता है और अपना अहित कर बैठता है।

(३) मोह भी मद्य के तुल्य है। मोह के कारण ही दु:ख रूपी मक्खी आती है। परन्तु जीव मोह के आवेश मे दु:ख रूपी मक्खी को हटाने के लिये अपने गुण-गौरव रूपी नाक को काट डालता है। जिससे दु:ख रूपी मक्खियाँ और अधिक आने लगती है। अत. विवेक से मोह के नशे को दूर करना चाहिये।

—:—:—

(५९) कब आवे मौत ? (कवित्त)

कोई दीन दुखी वृद्ध जंगल से काष्ट लाया,
बोझ से थकित बैठा वृक्षतल आय के।
'ऐसे दुःख से तो मरूँ, भला आवे मौत कब ?'
इतने में भयानक कोई आया धाय के॥
बूढ़ा बोला—'कौन' 'मृत्यु, आया तुझे लेन'—अब—
डरकर कहे बूढ़ा, जीभ को थर्राय के—
'बोझा मेरे सिर धर, जाओ निज द्वार पर'—
'सूर्य' ऐसे प्राण प्यारे सभी के दिखाय के॥६०॥

एक विशाल परिवार था । परन्तु काल की मार पड़ी और परिवार क्षीण होता गया । उस विशाल परिवार के खण्डहर जैसा एक वृद्ध बचा था । सम्पत्ति भी नष्ट हो चुकी थी । आय का कोई भी साधन नही था । वृद्ध महान् दु खी था । वह जंगल से लकडी का भार लाकर बेचा करता था । पानी लाना । रोटी बनाना । सब काम खुद करना परन्तु शरीर थक गया था-थकता जा रहा था । व्याधियों ने भी शरीर मे घर कर लिया था ।

एक बार वृद्ध जगल मे लकडी लेने गया । लकड़ियाँ बीनीं । उन्हे इकट्ठी करके बाँधी । भार ज्यादा हो गया था । वृद्ध उसे उठाने गया तो वह गिर पड़ा । उसे रोना आ गया । वह रोता हुआ बोला—'हे भगवन् ! अब तो यह दुःख नही सहा जाता । पत्नी गई । बहुएँ गईं । जवान बेटे-पोते देखते-देखते ही चले गये । परन्तु इस जर्जर शरीर मे जीव न जाने क्यो अटका बैठा है ! ऐसे दु ख से तो मरना अच्छा है । न जाने कब आयेगी मौत !' बूढ़ा इस प्रकार बडबडा रहा था । इतने मे एक भयंकर व्यक्ति वहाँ आया । उसे देखकर, वृद्ध डर गया ।

वृद्ध बोला—'कौन हैं आप ?' वह व्यक्ति अट्टहास से जंगल को गु जाते हुए बोला—'नही पहचाना मुझे? मै वही हूँ, जिसे तुमने अभी याद किया था !' बूढे के पाँव-तले से धरती खिसक गई । वह थर्राता हुआ बोला—'किसे याद किया था मैंने ?' वह व्यक्ति गुर्राता हुआ बोला—'अब क्यो बात बनाते हो ? मैं मृत्यु हूँ और मैं तुम्हे दु ख से छुडाने आया हूँ ।' बूढा हकलाता हुआ बोला—'यह तो बात यो हुई ! मैं गिर पडा । बोझ नही उठा सका । कोई बोझ उठवाने वाला था नही । इसलिये आप याद आ गये । यह भार उठवा दे । फिर आप अपने स्थान पर पधारे । अभी मुझे आपके यहाँ आने की जल्दी नही है । मुझे यहाँ कोई दु ख नही है ।'

शिक्षा—(१) 'ऐसे ···दिखाय के' अर्थात् सभी को अपने प्राण प्यारे हैं । दु खी मे दु खी मनुष्य भी मृत्यु के द्वार से पुन लौट आना

चाहता हैं। इसलिये किसी भी जीव का वध नही करना चाहिये।

(२) दुखी मनुष्य की सेवा करना चाहिये। परन्तु उसे मौत के मुँह मे पहुँचाकर, सुखी बनाने की बात सोचना गलत है।



(६०) उपकार हि पै अपकार करे (सवैया)

दधि तीर मराल रहे, तहाँ मूषक,
आय महा तन शीत ठरे।
करुणा कर हंस ढँके निज पंख,
सचेत हुओ दुरबुद्धि धरे॥
चुपचाप ही पाँख को काट दई,
उड़ता तब हंस सु भूमि परे।
'मुनिसूर्य' कहे-नर नीच महा,
उपकार हि पै अपकार करे॥६१॥

एक सुन्दर सरोवर था। वहाँ एक हँस रहता था।

समय शीत काल का था कही से घूमता हुआ एक चूहा वहाँ आ गया। कडाके की ठंड गिर रही थी। चूहा ठड मे ठिठुर गया। वह जडवत् निश्चेष्ट हो गया।

हँस ने चूहे को देखा। उसे वडी दया आई। उसने सोचा—वेचारा प्राणी यों ही मर जाएगा। इसे अभी गर्मी की जरूरत है। परन्तु गर्मी यहाँ है कहाँ!' अरे! मेरे खुद के तन की गर्मी तो है। इसे अपनी पाँख मे दवा लूँ तो इसके प्राण वच जाएँगे।

हँस ने चूहे को अपनी पाँख मे दवा लिया। कुछ क्षणों के बाद चूहे की ठंड मिटी। वह सचेत हो गया। वह अपने जाति-स्वभाव को

न छोड सका। वह यह भूल गया कि मैं पहले कैसी स्थिति मे था और मेरे प्राण किसने बचाये है ? वह हँस के पँख काटने लगा। हँस को कुछ पता नही लगा। चूहे ने हँस का पंख काट दिया।

हंस को चहे की हरकत से पता लगा कि चूहा होश में आ गया। उसने चहे को पख के भीतर से निकाल दिया।

हस ने उड़ने का प्रयत्न किया। परन्तु वह उड नही सका। उसका एक तरफ का पख उससे अलग जा गिरा।

यह दृश्य देखकर, हस को वडा दु.ख हुआ।

शिक्षा—(१) 'नर नीच महा, उपकार हि पै अपकार करे।' कृतघ्न मनुष्य अपने उपकारी पर भी अपकार करते हैं। मनुष्य को कृतघ्न नही कृतज्ञ वनना चाहिये।

(२) सज्जन पुरुष अपनी प्रकृति के अनुसार दुष्टो पर भी दया करते हैं।



(६१) निज कला होय दुःखकारी (कवित्त)

चोर मिल खात दियो तबै काष्ट पट आयो
ताको चोर खाती कोरे, कमल आकारी है।
शोर सुन गृह-धणी, बैठो सावचेत होय,
पेठो चोर खाती तब पांव लियो धारी है॥
धड़ खैंचे चोर मिल, पाव खैंचे गृह-धणी
कांगरा शरीर-माँहि खूँचे दुःख भारी है।
करे सोच अति चोर, प्राण छोड़े उसी ठोर,
'सूर्य' कहे निज कला होय दुखःकारी है॥६२॥

चाहता है। इसलिये किसी भी जीव का वध नही करना चाहिये।

(२) दुखी मनुष्य की सेवा करना चाहिये। परन्तु उसे मौत के मुँह मे पहुँचाकर, सुखी बनाने की बात सोचना गलत है।



(६०) उपकार हि पै अपकार करे (सवैया)

दधि तीर मराल रहे, तहाँ मूषक,
आय महा तन शीत ठरे।
करुणा कर हंस ढँके निज पंख,
सचेत हुओ दुरबुद्धि धरे॥
चुपचाप ही पाँख को काट दई,
उड़ता तब हंस सु भूमि परे।
'मुनिसूर्य' कहे-नर नीच महा,
उपकार हि पै अपकार करे॥६१॥

एक सुन्दर सरोवर था। वहाँ एक हँस रहता था।

समय शीत काल का था कही से घूमता हुआ एक चूहा वहाँ आ गया। कडाके की ठंड गिर रही थी। चूहा ठड मे ठिठुर गया। वह जडवत् निश्चेष्ट हो गया।

हँस ने चूहे को देखा। उसे बडी दया आई। उसने सोचा— बेचारा प्राणी यो ही मर जाएगा। इसे अभी गर्मी की जरूरत है! परन्तु गर्मी यहाँ है कहाँ!' अरे! मेरे खुद के तन की गर्मी तो है। इसे अपनी पाँख मे दबा लूँ तो इसके प्राण बच जाएँगे।

हँस ने चूहे को अपनी पाँख मे दबा लिया। कुछ क्षणों के बाद चूहे की ठड मिटी। वह सचेत हो गया। वह अपने जाति-स्वभाव को

(२) तेणे जहा संधिमुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ।
एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण ण मुक्ख अत्थि ।।

—उत्तरा ० ४/३

जिस प्रकार सेंध के मुँह पर पकडा गया पापात्मा चोर अपने ही कर्म से दुःखी होता है। इसी प्रकार जीव भी इस लोक और परलोक मे अपने ही कर्म से दुःखी होते है। क्योकि किये हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नही है।



(६२) ठग का इतबार कौन करे (सवैया)

नर एक से एक सुनाय कहे—
'बड़भागी हूं मै गुणवन्त खरे ।
मुझ पैं नहि कर्ज जरा किसका
मन निर्भय होय सदा विचरें' ।।
सुन अन्य कहे—'तुझ की परतीत—
कहाँ ? तुझ चिन्तित चीज मिले' ।
मुनि 'सूर्य' कहे जग में ठग का
इतबार कहो नर कौन करे ? ।।६३।।

एक युवक के पिता का देहान्त हुआ, तब वह बहुत सम्पत्ति छोड गया था। युवक निरकुश था। उसने आँखे मूँदकर खर्चा करना प्रारम्भ किया। वह आय के साधन तो पहले ही नष्ट कर चुका था। अत: धीरे-धीरे पूँजी खत्म हो गई। पूजी चली गई, परन्तु उस समय की आदते तो गई नही। अत: कर्ज ले-लेकर ऐय्याशी भी करने लगा। वह कर्ज चुका नही पाता था। अत नया कर्ज भी शनैः-शनैः मिलना बन्द हो गया। आदतें अभी भी सताती थी। परन्तु मन मारकर रह जाता था वह।

(२) तेणे जहा संधिमुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाण कम्माण ण मुक्ख अत्थि ॥

—उत्तरा० ४/३

जिस प्रकार सेंध के मुँह पर पकडा गया पापात्मा चोर अपने ही कर्म से दु खी होता है। इसी प्रकार जीव भी इस लोक और परलोक में अपने ही कर्म से दुःखी होते है। क्योकि किये हुए कर्मों को भोगे विना छुटकारा नही है।



(६२) ठग का इतबार कौन करे (सवैया)

नर एक से एक सुनाय कहे—
'बड़भागी हूं मै गुणवन्त खरे।
मुझ पै नहि कर्ज जरा किसका
मन निर्भय होय सदा विचरें' ॥
सुन अन्य कहे–'तुझ की परतीत—
कहाँ ? तुझ चिन्तित चोर फिरें।
मुनि 'सूर्य' कहे जग में ठग का
इतबार कहो नर कौन करे ? ॥६२॥

एक युवक के पिता का देहान्त हुआ, तब वह बहुत सम्पत्ति छोड गया था। युवक निरकुश था। उसने [illegible] खर्चा करना प्रारम्भ किया। वह आय के साधन तो पहले ही नष्ट कर चुका था। अतः धीरे-धीरे पूँजी खत्म हो गई। पूंजी खत्म हुई, परन्तु उस [illegible] की आदतें तो गई नही। अत. कर्ज ले-लेकर [illegible] भी करने लगा, वह कर्ज चुका नही पाता था। अत. नया कर्ज भी मिलना-[illegible] बन्द हो गया। आदते अभी भी सताती थीं। किन्तु मन मारकर रह जाता था वह।

अब उसने दूसरी ही आदत बना ली-अपनी बढाई हाँकने की। जो भी कोई मिलता, उसके सामने अपनी बढाई करना 'मैंने ऐसा किया' 'मैंने वैसा किया' 'मैंने लोगो को बहुत खिलाया' 'मैंने इतना खर्च किया कि बहुतो को लाभ मिला' 'मैने देश की इण्डस्ट्रियो को बहुत लाभ पहुँचाया' आदि ।

एक बार उसका कोई बचपन का परिचित उससे मिलने आया । उसके सामने भी वह अपनी महिमा गाने लगा—'दोस्त ! क्या कहू ? मै तो बड़े आनन्द मे हू ।' बालसाथी की दृष्टि उसके घर मे इधर-उधर फिर रही थी और घर उस युवक की आन्तरिक अवस्था की परते उसकी आँखो के सामने खोलता जा रहा था । फिर भी साथी बोला—'आनन्द मे होना ही चाहिये ।' युवक कह रहा था—'और क्या कहू ? मेरे लिये भय का कोई कारण नही है । निर्भय होकर कही भी घूम सकता हूं और घूमता ही हूँ । मेरे सिर पर किसी का जरा भी कर्ज नही है । बोलो, मैं बडभागी हू कि नही हूँ ? और कितना गुणवान हूँ मै ?'

साथी को उसकी हालत का पता अनुमान से लग गया । उसे अपने बाल साथी की दशा पर बडा खेद हुआ । नही, चाहते हुए भी उसके मुँह पर कडुआहट आ गई । वह बोला—'दोस्त ! तुम बाते तो ठीक कर रहे हो ! पर मुझे लगता है कुछ और ही ।' युवक बोला —'क्या लगता है तुम्हे ?' साथी बोला—'लगता है कि यहाँ तुम्हारी परतीत ही उठ गई है ! तुम केवल बढाई हाँकना जानते हो । कौन तुम्हारी परतीत करेगा और तुम्हे कैसे इच्छित वस्तु मिल सकेगी ? कर्ज क्या यों ही मिल जाता है ?' युवक ने खिन्न होकर कहा—'बात तो कुछ ऐसी ही है !' साथी–'तो भाई ! ऐसे ही मत रहो । अपनी पैठ जमाओ कुछ !'

शिक्षा—'जगमे ठग का इतबार कहो नर कौन करे ?' अर्थात् जो मनुष्य अपना व्यवहार नही सुधारता है-ठगाई करता है तो

उस मनुष्य का कौन विश्वास करेगा ? अत अपनी नीयत अच्छी रखना चाहिये और व्यवहार मे न्याय-नीति बरतना चाहिये।



(६३) फिक्कर होय उसे (कवित्त)

सैकड़ों रुपै का कर्ज देना था किसी को तबै
लेनदार गाली देवे-'कोटिशः धिक्कार हो'।
मित्र समझाते-'कर्ज बुरा, नींद आती नहीं,
होती बेइज्जती, कहे बुरे बदकार हो।।
अन्न न हजम होय, निरादर करे सब'
कहे कर्जदार—'ऐसी बात ही हजार हो।
सब ही फिक्कर होय कहे 'सूर्यमुनि' उसे
जिसे कर्ज लेय कर देने का विचार हो'।।६४।।

एक व्यक्ति था। उसे मौज से रहने का शौक था। पर कमाता-धमाता कुछ नही था। बैठे-बैठे खाते रहने मे तो कुबेर का खजाना भी खाली हो जाता है तो अन्य की बात ही क्या है। उसने मौज-शौक मे बाप की पूंजी गवा दी। पूंजी चली गई। लेकिन मौज-शौक छुटा नही। वह कर्ज ले-लेकर अपना काम चलाने लगा। एक सेठजी से उसने सैकडो रुपये उधार ले लिये। अब सेठ अपना कर्ज अदा करने के लिये उसपर तगादा करने लगे। वह 'आज दूंगा' 'कल दूंगा' ऐसे ही करता रहता था। एक दिन सेठजी को बडा क्रोध आया। उन्होने उसे कई तो गालियाँ दी और कहा—'तुम्हे शरम नही आती है, दूसरे के धन पर मटरगस्ती करते हुए। बाप का नाम डूबाया, बेवकूफ ! याद, रख, मेरे रुपये जल्दी चुका दे। नही तो तेरी दुर्दशा होगी।' उस व्यक्ति के कई मित्र थे। वे बीच मे बचाव करने पड़े और सेठजी को शान्त किया—कुछ आश्वासन देकर।

वे मित्र उस व्यक्ति को समझाने लगे—'भाई ! तुम ऐसा क्यों करते हो ? कर्ज सिर पर क्यों चढा रहे हो ? कर्ज लेना बहुत ही बुरा है।' दूसरा बोला—'हाँ ?' कर्ज लेना बुरा तो है ही। जिसके सिर पर कर्ज हो जाता है, उसे रात को नीद नहीं आती है। लोग उसे बुरा-भला कहते है !' तीसरा बोला—'हाँ ! भाई ! तुम्हे सेठजी का कर्ज धीरे-धीरे किश्ते कर के चुका देना चाहिये। कर्ज बहुत ही भयंकर होता है। रात-दिन चिन्ता सताती रहती है। इसलिये अन्न भी बराबर हजम नही हो पाता है। लोग निरादर करते है और बेइज्जती होती है सो अलग ! बोलो, क्या इच्छा है तुम्हारी ?'

वह व्यक्ति हंसकर बोला—'भाईयो ! तुम्हारी बाते सोलह आने सच है। ऐसी एक नही हजार बाते हो सकती है। हो सकती है तो भले हो। मैं क्यो चिन्ता करूँ ? चिन्ता वह करे कि जिसे कर्ज लेकर, वापिस उसे चुकाने का विचार हो। बन्दा तो आनन्द से चिन्ता-फिक्र को ताकपर रखकर सोता है !'

सभी मित्र उसकी निर्लजता देखकर अवाक् रह गये।

शिक्षा—(१) निर्लज्ज मनुष्य को शिक्षा नही लग सकती। अत ऐसे निर्लज्ज लोगो को शिक्षा देने मे अपना समय वृथा गँवाना है।

(२) ऐश-ऐश्‍आरामीके लिये कर्ज नही लेना चाहिये। ऐसा करने से व्यक्ति ढीठ और निर्लज्ज बन जाता है।



(६४) क्या चट्टी पीसण आऊँ ? (सवैया)

घर जाय प्रधान से दासी कहे—'तुम
क्योकर होय गये उपराटा ?
मुझ स्वामिनी याद करे, सब आज
मिले सुख साज, जरा नहि घाटा' ॥

'मुनिसूर्य' कहे—'मुझ काम नही अब
ता दिन से हि गया मन फाटा।
पर घट्टी हि पीसण आऊँ भले, यदि–
लूट गया घर का सब आटा' ॥६५॥

(१)

मन्त्री जी बाजार से निकले। उन्होने एक श्रेष्ठि के गृह के गवाक्ष में एक चन्द्रमुखी को देखा। मत्री उस श्रेष्ठि-पत्नी को देखकर मुग्ध हो गया। अब मंत्रीजी प्रतिदिन उस गृह के आस-पास चक्कर काटने लगे उस मृगाक्षी की झलक पाने के लिये।

श्रेष्ठिपत्नी का ध्यान इस ओर गया। उसने सोचा—'राज्य के बडे अधिकारी की यह दशा? फिर अन्य लोगों की नैतिकता का क्या ठिकाना रहेगा? इन्हे कुछ शिक्षा मिलनी चाहिये।'

उसने पति से सारी बात कही और अपनी सारी योजना बताई। पति उसकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित था। उसने उसकी बात स्वीकार कर ली।

(२)

मन्त्री श्रेष्ठिपत्नी का आमन्त्रण पाकर प्रसन्न हुआ। सकेत के अनुसार वह सजधज कर श्रेष्ठि के यहाँ रात मे पहुँच गया। श्रेष्ठि पत्नी ने उसका भाव-भीना स्वागत किया और कहा—'निश्चिन्त रहिये। मेरे पति आज साँझ को ही विदेश जाने को रवाना हुए है।'

भोजन की मधु मनुहार के साथ वार्तालाप होने लगी। इतने मे किसी ने दरवाजा खट-खटाया। स्त्री ने पूछा—'कौन है?' बाहर से आवाज आई—'यह तो मै हू! दरवाजा खोल!' पत्नी काँपते स्वर मे बोली—'अरे! आर्यपुत्र! आप वापिस लौट आये!' बाहर से—'हाँ! शकुन अच्छे नही हुए! इसलिये जाने का विचार छोड दिया और लौट आया। पर सब बाते बाहर खडे रखकर ही पूछोगी?' स्त्री बोली—'अभी दरवाजा खोलती हू!'

सुन्दरी ने मत्रीजी की ओर देखा। उसके होस-हवास उड रहे थे। मंत्री बोला—'मुझे यहाँ से किसी भी प्रकार निकाल दो देवि!' सुन्दरी भयभीत होकर बोली—'कैसे निकालू? पीछे के दरवाजे की चावी कई दिनो से गुम है! आज तो मेरी दुर्दशा हो रही है। हे भगवन्!' और माथा पकड कर बैठ गई। उधर सेठ ने फिर दरवाजा खटखटाया।

मन्त्री घबरा रहा था। वह स्त्री से बोला—'कुछ न कुछ उपाय करो मुझे कही छिपा दो!' सुन्दरी बोली—'कहाँ छिपाऊँ आपको? मेरा स्वामी बडा शक्की है! दरवाजा खोलने मे देर हो रही है। अत. उन्हे शक हो रहा होगा। वे आपको कही से भी खोज निकालेगे।'

बाहर से आवाज आती है—'अरे! अभी तक दरवाजा नही खोला!' वह बोली—'अभी खोलती हू।' फिर वह मन्त्री से बोली—'अरे हाँ! एक उपाय है! आपके आने से पहले मैंने सब सेवको को छुट्टी दी! उस समय मेरी एक दासी चक्की पीस रही थी। उसे भी छुट्टी दी। उसके कपडे आप पहन लो- तो बच सकते हो!'

मरता क्या न करता? उसने अपने कपडे उतारे। ऊँचा-ऊँचा घाघरा पहना। चोली पहनी। लुगडा पहना और लम्बा-सा घूंघट निकाला। सुन्दरी ने उसे चक्की के पास बिठा दिया। एक टोकरी मे गेहू रखे थे। अब मत्रीजी गेहू पीसने लगे।

सेठ बाहर से नाराज होकर बोल रहा था—'अरे! कित्ती देर हो गई है! अभी तक द्वार नही खोला। खोल जल्दी द्वार!'

स्त्री ने दरवाजा खोला। सेठ भीतर आया। चक्की चलती देखकर, वह बोला—'अभी रात मे चक्की क्यो चल रही है?' सेठानी बोली—'कल महमान आने वाले है। घर मे आटा नही है। सो गेहूँ पीसने को दासी को बिठाया है।'

मत्री ने कभी चक्की चलाई नही थी। औधी-सीधी चक्की चल रही थी। नीद आ रही थी। कभी-चक्की बन्द हो जाती-कभी चलती।

यह देखकर सेठ बोला—'यह कैसी फूहड दासी है ? कहाँ जंगल से पकड लाई हो !' सेठ ने जाकर उसे दो-चार लाते मार दी। मत्री को रोना-रोना आ गया। पर चक्की चलाये विना छुटकारा था नही।

सुन्दरी बोली—'अरे ! बेचारी को मत मारो ! यह भी मनुष्य है ? इसे नीद आ रही होगी ! छुट्टी दे दूँ इसे !'

सेठ—'हाँ ! हाँ ! निकाल दो इसे ! वहुत फूहड है यह ! फिर मुझे मुँह नही दिखाये !'

सेठानी मंत्री के पास आई और बोली—'जा, दासी ! जा। इन सेठों की नौकरी ऐसी ही होती है ? इनका क्या करो भला ! तुम अब फिर कभी यहाँ मत आना। जाओ वाई ! जाओ।' उसने दरवाजा खोल दिया। मत्री की जान मे जान आई। वह झटपट घर से वाहर हो गया।

मत्री बाहर निकला। परन्तु दूसरी समस्या उठ खडी हो गई। इस स्वांग मे वह घर कैसे जाये। वह सोचने लगा—'अरे ! सेठानी कितनी चालक निकली ? उसने मेरे वस्त्र भी नही दिये। चक्की पिसवाई और मार खिलाई सो अलग !'

(३)

मत्रीजी गली-कूचो मे छिपते हुए अपने घर पहुँचे। दरवाजा खटखटाया। स्त्री ने पूछा—'कौन है ?' मत्री ने कहा—'यह तो मैं हूं मत्री ! झटपट द्वार खोले !' स्त्री बोली—'अरे ! आप तो राज्य के किसी जरूरी कार्य से गये थे न !' यह कहते हुए उसने द्वार खोल दिया।

मंत्रीजी की पत्नी मंत्रीजी का स्वाँग देखकर, आश्चर्यचकित रह गई। मत्री भीतर आया। स्त्री वोली—'यह क्या स्वाग वनाया है ?' मत्री कडककर बोला—'देख, ज्यादा वोल-वोल मत कर ! राज्य के कार्य के लिये कभी ऐसा भी रूप वनाना पडता है।'

पत्नी वोली—'इतने खीज क्यो रहे हो ? आपके स्वर से तो

ऐसा नही लगता है कि आप राज्य के कार्य के लिये वहुरूपिये वने हो ! मालूम पडता है, कुछ न कुछ दाल मे काला है ! राज्य का सवसे वुद्धिमान मनुष्य कही किसी स्त्री से ठगा कर आया है और अपनी स्त्री पर उधर की खीझ निकाल रहा है ।'

मत्री ने कहा—'कटे पर नमक मत छिटको !'

आखिर मे स्त्री ने उसके मुँह से वात उगलवाही ली और उसे पर स्त्री गमन के त्याग करवाये ।

(४)

कुछ दिन वाद मत्री उस श्रेष्ठि के गृह के पास से गुजर रहे थे । श्रेष्ठि-पत्नी ने उसे देखा । उसने उसकी परीक्षा लेने के लिये दासी को भेजा ।

दासी ने मत्री से कहा—'आपको मेरी स्वामिनी याद कर रही है । उस दिन तो रंग मे भग हो गया । अव आप पधारो ! अव समय उपयुक्त है !'

मन्त्री ने कहा—'तुम्हारी स्वामिनी से कह देना कि मेरा मन तो उसी दिन से फट गया है । अव मुझे वहाँ आने से कुछ भी प्रयोजन नही है । हाँ ! यदि तुम्हारी स्वामिनी के घर का आटा खूट गया हो तो चक्की पीसने आ जाऊ ?'

यह कहकर मत्री वहाँ से आगे वढ गये ।

शिक्षा—(१) मनुष्य को परस्त्री पर लुब्ध नही होना चाहिये ।

(२) एक वार ठोकर खाकर व्यक्ति को सम्हल जाना चाहिये ।

(३) नैतिकता के लिये और समाज मे नैतिकता के रक्षण के लिये हृदय मे साहस होना चाहिये और पतन के मार्ग पर जाने वालो को समुचित शिक्षा देना चाहिये ।

(४) वुद्धिवल से वडो-वडो को मार्ग पर लाया जा सकता है ।



(६५) नृप युक्ति सुन बुझ्यो झट (कवित्त)

नृप-बोध देवा सती, भोजन विविध पात्र—
धरे, सभी एक रस, वर्ण न्यारे-न्यारे हैं।
जो-जो आहार करे नृप, सभी का स्वाद एक,
'स्वाद याँको एक-सा क्यों ?' भूप यों उचारे है, ॥
सती कहे—'ऐसे सब नारी भाँति-भाँति रंग
आकार निराले पर, भाव एक सारे हैं।'
कहै 'सूर्यमुनि' नृप युक्ति सुन बुझ्यो झट
जीते भीम काम ताको सौभाग्य अपारे हैं ॥६६॥

एक नगर का राजा अपने नगर के श्रेष्ठि की पत्नी के सौन्दर्य को देखकर, उसपर आसक्त हो गया। उसने सोचा-यह तो मेरे महल की शोभा हो सकती है—श्रेष्ठि के घर की नही। जब काम का आक्रमण प्रवल होता है, तब मनुष्य लज्जा-मर्यादा को बिलकुल ही भूल जाता है। राजा ने निर्लज्जता के साथ श्रेष्ठि के पास कहला भेजा कि तुम्हारी पत्नी को हमारे महल मे भेज दो। श्रेष्ठि वडा चिन्तित हो गया।

उसकी पत्नी से यह बात छिपी न रह सकी। जव सेठानी को इस बात का पता लगा, तब उसने श्रेष्ठि से कहा—'वल अपना यहाँ चल नही सकता है। यहाँ से भागकर जाना भी ठीक नहीं है। बुद्धि से ही काम लेना चाहिये।' श्रेष्ठि अकुलाता हुआ बोला—'बुद्धि भी कहाँ तक दौडाऊँ! मुझे कुछ समझ में नही आ रहा है।' पत्नी बोली—'लो, चिन्ता छोडो। चिन्ता से कुछ होना जाना नहीं है। राजा को अपने यहाँ भोजन के लिये निमन्त्रित करो। फिर आगे की बात मैं देख लूँगी।'

राजा को भोजन का निमंत्रण मिला। वह वडा प्रसन्न हुआ। वह वडी सजधज के साथ श्रेष्ठि के घर आया। श्रेष्ठि-पत्नी ने एक

ही स्वाद, परन्तु विविध आकार-प्रकार और विविध रंग के भोज्य पदार्थ बनाये। उसने उन्हे सोने, चाँदी और काँच के विविध आकार और रंग के पात्रों में रखा और जब राजा भोजन करने आया, तब उन्हें राजा के सामने रखा। राजा जिस किसी पात्र से निवाला लेता, उसे एक ही स्वाद आता था। राजा आश्चर्य मे पड गया-विविध पदार्थ, पर स्वाद एक! राजा से नही रहा गया। उसने पूछ ही लिया-'ये भाँति-भाँति के पदार्थ है। परन्तु इनका स्वाद एक-सा ही क्यों है?'

श्रेष्ठि-पत्नी ने निःसंकोच भाव से कहा—'ये एक ही पदार्थ से बने हैं। अतः इनका स्वाद एक-सा ही है। यह रंग और पात्र की भिन्नता इनके स्वाद मे भिन्नता उत्पन्न नही कर सकी। इसीप्रकार हे राजन्! सभी स्त्रियाँ हाड-मास की हैं। उनका वर्ण-भेद या साज-सज्जा का भेद उनमे किसी भी प्रकार का भेद उत्पन्न नही कर सकता है। भोग के स्वाद मे कोई भेद नही है। फिर आप अशुचि से उत्पन्न और अशुचिमय इस शरीर पर मुग्ध होकर, अपनी न्याय-नीति का परित्याग क्यो कर रहे हैं।'

राजा लज्जित हो गया और श्रेष्ठि-पत्नी को अपनी बहिन बनाकर घर लौट गया।

शिक्षा—(१) युक्ति-युक्त बातो को सुनकर शिक्षा ग्रहण करना चाहिये।
(२) काम-विकार बहुत भयकर विकार है जो इस विकार को जीत लेता है, वह महान् सौभाग्य शाली है।



(६६) निज नाक काट डाल्यो

पड़ोसी पै सम्पत्ति बढी है, तासे द्वेष करे—
'दुःखी होवे यह कैसे? टरे नहि टाल्यो है'।
पड़ोसी से पूछे—'किन का
कहे—'भैया! ते

'तेरे ही पसाय खूब, पाई यह लच्छी' सुन—
जल्यो—'दुष्ट कैसे यह बनत दिवाल्यो है'।
कहे 'सूर्यमुनि' तभी परकी करन हान
चाकू सेती मूढ निज नाक काट डाल्यो है ।।६७।।

साथ-साथ खेले थे और पढ़े थे-दो बालक। दोनों एक-दूसरे के पडोसी थे। परन्तु बड़े हुए तो दोनो मे बडा परिवर्तन हो गया। एक रह गया दीन-हीन झौपडी मे रहनेवाला और दूसरा बन गया धन-कुबेर महलो मे रहनेवाला। दोनो पडोसी थे—बालमित्र थे, परन्तु वे कभी साक्षात् मिल नही पाते थे। पहले को दूसरे के सौभाग्य पर ईर्ष्या होने लगी। वह जलन से मन ही मन सोचने लगा—'कितना सुखी है यह ? और मैं ? आज तो यह स्थिति है कि हम परस्पर मिल ही नही पाते है। कितना घमण्डी हो गया है यह! कैसे इसकी हेकडी मिटे ?' इस प्रकार वह दूसरे का बुरा सोचने लगा।

एक दिन उसने सोचा कि इसकी सफलता का रहस्य इसे ही पूछूँ न! वह अपने धनिक मित्र के पास पहुँच गया। उसने मित्र से पूछा—'तुम्हारी सफलता का रहस्य क्या है ?' उसने अपनी शिष्ट भाषा मे कहा—'भाई! यह तो तुम्हारी ही कृपा का फल है ?' पहले ने आश्चर्य से कहा—'मेरी कृपा का फल ?' दूसरे ने मुसकाते हुए कहा—'हाँ, भाई! तुम्हारी कृपा का तो फल है। रोज सुबह मे तुम्हारा ही मुँह देखता हूँ! जिससे सारे दिन लाभ ही लाभ रहता है!'

यह बात सुनकर पहला एकदम जल उठा अरे! इस दुष्ट ने मुझसे ही लाभ उठा लिया! मुझमे इसके तुल्य बनने की शक्ति तो है नही! परन्तु इसका नुकसान कैसे हो ? अरे! हाँ! नकटे का मुँह सुबह मे देखने से अपशकुन माना जाता है!

और उसने दूसरे का नुकसान करने के लिये अपना नाक काट डाला। परन्तु इससे दूसरे की कुछ भी हानि नही हुई और पहले को पछताना पड़ा।

शिक्षा—किसी के प्रति ईर्ष्या करना अच्छा नही है । ईर्ष्या से मनुष्य का मन विकृत हो जाता है । अत. दूसरे का बुरा करने जाकर, वह अपना ही बुरा कर बैठता है । अत ईर्ष्या से दूर रहना चाहिये ।

---

(६७) वह बलाय पैर लगी

एक कंजूस को गाना गाय के रिझाया खूब,
सूम सोया सोड़ तान, देने का विचार नां ।
नौकर दबावे पाँव, गया छोड और ठौर,
गवैया उठके करे, पैर की संभारना ।।
कंजूस ने पूछा—'वह बलाय गई के नहीं'
कहे कवि—'पैर लगी, टरे नहि टारनां' ।
सुनके लज्जित हुवा, कहे 'सूर्यमुनि' कभी
सूम का स्वभाव टले कोटि उपचार नां ।।६८।।

एक ठाकुर साहब बड़े कंजूस थे ।

एक बडा गवैया उस ठाकुर से कुछ पाने की आशा से वहाँ आ गया । लोगों ने कहा—'कहाँ आ गये आप ! बडे कजूस है ठाकुर साहब ! उनसे कुछ भी पाने की आशा दुराशा मात्र है । पत्थर की गाय को दूहने से यदि कुछ मिल सकता हो तो इन ठाकुर साहब से कुछ मिल सकता है !' गवैया ने कहा—मेरे गाने से पत्थर तक पसीज जाते हैं तो क्या यह हाड-मास का पूतला ठाकुर मेरी कला से नही पसीजेगा ?' यह बात सुनकर लोग हँस दिये ।

गवैये को यह हँसी बुरी लगी । उसने निर्णय किया कि अब तो इस ठाकुर से पुरस्कार लेकर ही रहूँगा । वह संगीत के सभी साज-बाज को लेकर ठाकुर सा के महल मे पहुँच गया । ठाकुर शिष्टाचार-वशात् कुछ कह न सका । अत गवैया अपनी कला बतलाने लगा ।

अत्युत्तम संगीत और गाने से ठाकुर मुग्ध हो गया। परन्तु ठाकुर का मन उसे पुरस्कार देने का नही था। इसलिये उसने थके होने का वहाना वनाया। वह सोड़ तानकर शय्या पर लेट गया। एक सेवक उसके पाँव दबाने लगा। गवैया ठाकुर की इच्छा को जान गया। लेकिन उसने सोचा कि यदि मैं बिना पुरस्कार लिये जाऊँगा तो लोगों मे मेरी हँसी होगी। इसलिये उसने अपने साज-वाज को तो समेट लिया। पर वह वहीं डटकर बैठ गया।

ठाकुर साहव खर्राटे भरने लगे। नौकर ठाकुर साहब को नींद आई हुई समझकर, वहाँ से उठकर चला गया। उस समय गवैया उचित अवसर समझकर, ठाकुर के पाँव दबाने के लिये बैठ गया। काफी देर हो गई। ठाकुर ने समझा कि अब गवैया चला गया होगा। उसने इसका पता चलाने के लिये मुँह खोले विना मन्द स्वर मे पाँव दबानेवाले सेवक से पूछा—'क्यो रे! वह बलाय गई या नही?' गवैये ने कहा—'वह बलाय कहाँ जा सकती है! वह टाले भी नहीं टल पा रही है। वह बलाय तो आपके पैर से चिपटी वैठी है!' ठाकुर एक-दम—'हैंऽऽ' कहते हुए उठ बैठे और गवैये को देखकर लज्जित हो गये।

'तुम्हे पुरस्कार चाहिये—' ठाकुर ने अपने जूतों की ओर सकेत करते हुए कहा—'तुम्हारे लिये ये पड़े है!'

'अच्छी वात है!'—गवैये ने कहा और वह जूते लेकर चल दिया।

शिक्षा—(१) 'सूम का स्वभाव........' कजूस का स्वभाव अति प्रयत्न से भी पलटना सहज नही है।

(२) कजूस से कुछ आशा नही करना चाहिये।

(३) अपने पास यदि विपुल सामग्री हो तो व्यक्ति को उदार वनना योग्य है।

(६८) नहि नार मैं मांगत (सवैया)

इक मंगत जायके द्वार पे माँगत—
'जो कुछ होय वही मुझ दीजे'।
घर-मालिक आय कहे—'सुन भिक्षुक !
नारी नहीं घरमें, कहा कीजे ?'
भिक्षु कहे—'नहि नार मैं मांगत,
सांच हमारी ये वात सुनीजे'।
मुनि 'सूर्य' कहे समझे नहि मूरख,
ऐसे किये कहा पुण्य वढ़ीजे ॥६९॥

एक सेठ वडा सम्पत्तिशाली था। परन्तु वह वहुत ही कजूस था। अपने निकट के सम्वन्धियो को भी कभी अपने द्वार पर नही बुलाता था। परिवार के लोग उससे विमुख थे। अपनी जाति या समाज में भी वह किसी के काम नही आता था। यदि कोई कुछ सहायता लेने आता तो उसे यो ही खाली हाथ लौटा देता था।

एक बार एक भिखारी द्वार पर आकर खड़ा हो गया। सेठजी को उसका यो द्वार पर आकर खडा रहना अच्छा नही लगा। सेठजी ने अपने आसन पर बैठे हुए ही कर्कश स्वर मे पूछा—'यह द्वार पर कौन खडा है ?' भिखारी ने दीन स्वर से कहा—'यह तो मैं दुखियारा हूँ।' सेठ ने कडककर कहा—'यहाँ क्यो खड़ा है ?' भिखारी ने प्रार्थना के स्वर में कहा—'सेठजी ! आपका भला हो। आप सुखी रहो। मै भूखा हूँ। कुछ इस भूखे को भी मिल जाय !' सेठ ने कहा—'अभी क्या यह समय है मागने का ?' भिखारी ने कहा—'सेठजी ! मुझे कोई पक्वान्न नहीं चाहिये। आपके यहाँ जो भी बचा-खुचा भोजन हो, उसमे से कुछ दे दो। जिससे मैं पेट की आग शान्त कर सकूँ ?' सेठजी गुस्से मे वोले—'इन भीखमगो से नाक मे दम आ गया है। क्या तुम्हारा वाप यहाँ कुछ कमाकर रख गया है जो यहाँ मांगने आ गये हो !' भिखारी

का शरीर दुर्बल था। वह बराबर खड़ा भी नही रह सकता था। उसे आगे जाना मुश्किल हो रहा था। इसलिये उसने अनुनय करते हुए कहा—'सेठजी ! आप ऐसा क्यों बोलते हो ! आप पुण्यशाली हो। आपके पास कुछ है। आप स्वयं भी खा सकते हैं और दूसरों को भी खिला सकते हैं और हम तो पुण्य को हारे हुए हैं। इसीलिये आप जैसों से आशा कर रहे हैं और आशा भी लम्बी-चौडी नही है मात्र, कुछ रोटी के टुकडो की । वे भी गरमागरम नही, ठडे-बासी।' सेठ उसकी बात सुनकर हार-सा गया। परन्तु वह कुछ देना तो चाहता था नही। इसलिये वह बहाना बनाते हुए बोला—'भाई ! तुम्हे क्या दूँ ? अभी सेठानी जी घर मे नही है !' भिखारी समझ गया सेठ बहाना बना रहा । तब उसने ढीठता से कहा—'सेठजी ! मैं सच कहता हूँ। आप विश्वास रखो कि मैं सेठानीजी को नहीं मांग रहा हूँ। मैं तो रोटी माग रहा हूँ।' यह बात सुनकर सेठ शर्मिन्दा हो गया।

शिक्षा—'समझे नहि मूरख, ऐसे किये कहा पुण्य वढीजे ?' अर्थात् कृपण मनुष्य मूर्ख बन जाता है। वह यह नही समझता है कि सब कुछ यही छोड-कर जाना है। इस नश्वर धन से पुण्य-उपार्जन करना चाहिये। परन्तु जो सत्कार्य करने मे बहाने बनाता है या बिना मन से देता है तो उसके पुण्य की वृद्धि कैसे हो सकती है ?



(६९) क्यों ये बेगार लखी हम लारे ?

तीरथ धाम अनेक किये,
तिरबेनी हु न्हाय के पाप विड़ारे।
'सूर्य' कहे मद मोह तज्यो नहि
आय चमार रह्यो निज द्वारे॥
राज-बिगार में लेय गये तब
खिन्न चमार यो चित्त विचारे–

'तीरथ धाम में त्याग्यो सबं फिर
क्यों ये बिगार लगी हम लारे' ? ॥७०॥

एक चमार तीर्थ-यात्रा करने गया।

उसने उत्तर मे वद्रीनाथ के दर्शन किये । जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ के रथ को खीचने में हाथ बँटाया। रामेश्वरम् में दर्शन करके गद्गद् हो गया। द्वारिकापुरी में आकर अपने जन्म को कृतार्थ माना। इसीप्रकार गगा-गोमती आदि पवित्र मानी जाने वाली नदियो में स्नान किया। प्रयाग की त्रिवेणी मे स्नान करके, वह यह समझा कि मेरे सब पाप धुल गये हैं। सब तीर्थ किये। उसने सोचा—मैंने मनुष्य जन्म सफल बना लिया।

वह वापिस अपने घर लौटा। उसका स्वागत किया गया। पर फिर वही कार्य करने लगा। उसका मोह जरा न छुटा था। अभिमान और बढ गया था। लोभ में जरा कमी न हुई थी। अपने धन्धे मे भी तृष्णा वैसी की वैसी थी।

एक वार राजा के यहाँ कुछ कार्य आया । पहले लोगो को राजा के यहाँ बेगार मे कार्य करना पडता था। उस चमार को भी बुलावा आया। पर वह नही गया। सिपाही फिर आया। उसे धमका कर चलने का कहा। चमार अधिकारी के पास गया। अधिकारी ने उसके नही आने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया—'मैं तीर्थयात्रा करने गया था। वहाँ वेगार करना छोड़ आया हूँ।' अधिकारी हँसकर बोला—'तूने बेगार करना छोडी है। परन्तु हमने वेगार लेना थोडेही छोडी है। चलो, जाओ काम करो।'

चमार दु:खी मन से काम करने लगा। वह मन ही मन सोचता जा रहा था—'मैंने तीर्थ किये। पवित्र नदियो में स्नान किया। वहाँ मैंने इन फालतू बातों को छोड दिया। फिर भी यह वेगार हमारे पीछे क्यों लगी हुई है ? हे भगवन्।.....' यह सोचते-सोचते उसकी आँखों मे आँसू आ गये। उसके साथी ने पूछ —'रो क्यो रहे हो ?' उसने

कहा—'मैंने वेगार नही करने का नियम लिया था—तीर्थधाम मे। परन्तु आज मेरा नियम टूट गया है। मुझे बेगार करना पड रही है।' साथी हँसकर बोला—'अपने वस का नियम करते तो पलता और पर-वश भी क्यो हो ? क्योकि तीर्थयात्रा तो की, किन्तु मोह-माया नही छोडी। जहाँ मोह-माया होगी, वहाँ बेगार करनी ही पड़ेगी। अपने छोडे से छूटेगी नही।'

शिक्षा—मनुष्य धर्म-करणी आदि करता है। किन्तु परिवार आदि का मोह छोड नही पाता है। पर अपने उत्तरदायित्व से हटना चाहता है। परन्तु यह उत्तरदायित्व छोडना अपने स्वाधीन नही है। मोह छोडना अपने स्वाधीन है। मोह छोडने पर ससार की बेगार भी छूट जाएगी।



(७०) नीच-शरीर अशौच अपावन

नहि हाथ हु से कछु दान दियो
न सुन्यो श्रुति से सत शास्त्र अलीना।
दृग से वर साधु लखे नहिं 'सूर्य' यों
साधु के द्वार पे पाँव न दीना॥
धन पाप हि से उर पूर्ण भर्यो
शिर से गुरू को नहि वंदन कीना।
तज दे सुन जंबुक ! नीच-शरीर
अशौच अपावन ज्ञान—विहीना ॥७१॥

एक था लक्ष्मीवल्लभ सेठ और सचमुच ही लक्ष्मी का वल्लभ था। लोग कहते थे कि उसकी निधि का कोई पार नही और उसके अचूक व्यापार-कौशल से कोष की निरन्तर वृद्धि होती रहती थी। परन्तु सबके सब दिन समान नही होते हैं। कोई अशुभ कर्म के उदय से लक्ष्मीवल्लभ के कुटुम्ब का क्षय प्रारम्भ हुआ। देखते ही देखते विशाल

परिवार काल के गाल मे समा गया। परन्तु लक्ष्मीवल्लभ की विचित्र ही स्थिति थी। कुटुम्ब के सदस्य ज्यों-ज्यो कम होते गये, त्यो-त्यो वह प्रसन्न होता गया। वह सोचता था—'अच्छा हुआ। खर्चा कम हुआ।' पूरा कुटुम्ब नष्ट हो गया। वह अकेला ही रह गया। अब वह था और उसकी चहेती लक्ष्मी! उसे लक्ष्मी ही वल्लभ लगती थी।

लोगों से वात करने की सेठजी को फुर्सत नही। परिजनो के यहाँ अत्यावश्यक कार्य के लिये जाने के लिये भी अवसर नही। गुरु-जन की वाणी श्रवण की वात तो वहुत दूर रही, किन्तु उनके दर्शन करने तक को समय नही। वस सेठजी को एक ही धुन थी-धन,-धन और धन! कोई भिक्षुक द्वार पर आ जाता तो उसे दुत्कार कर भगा देता।

एक वार नगर मे महामारी का प्रकोप हुआ। लोग नगर छोड़कर, नगर के वाहर डेरे वना-वनाकर, उनमे निवास करने के लिये जाने लगे। पडोसियो ने सेठ से कहा—'सेठजी! रोग का प्रकोप दिन-प्रतिदिन वढ रहा है। चलो, आप भी नगर के वाहर!' सेठजी ने यह वात सुनी तो उन्हे ऐसा लगा कि मानों किसी ने गाली दे दी हो! उन्होने मुँह वनाकर कहा—'तुम लोग भी कैसे पागल हो! मैं एक क्षण भर के लिये भी क्या घर छोड सकता हू?' किसी ने कहा—'सेठजी! क्यों हठ करते हो? यहाँ यो ही विना मौत मर जाओगे!' सेठ ने उन्हे घूरते हुए कहा—'मैं घर को सूना छोडकर नही जा सकता। मैं क्यो मरने लगा? मरोगे तो तुम मरोगे?' सेठ ने एक न मानी। वह कैम्प मे नही गया सो नही गया।

लोग कभी-कभी कार्यवश नगर मे आ जाया करते थे। गाँव सूना था। अकेला सेठ ही उस सूने नगर मे दीखता था। परन्तु कुछ दिन से सेठ का दरवाजा वन्द था। सेठ दिखाई नही दे रहा था। एक दिन एक पडोसी का ध्यान इस ओर गया। उसने दूसरे पडोसी से कहा। उसने उपेक्षा कर दी। दूसरे दिन और लोगो का भी ध्यान गया।

एक ने कहा—'क्या बात है कई दिनो से सेठजी दिखाई नही दे रहे हैं ?' दूसरे ने कहा—'कृपण को मरने भी दो !' तीसरे ने कहा—'अरे ! कही सचमुच ही मर गये न हो !' अब तो सबको कौतूहल हुआ। वे दरवाजे के छिद्र से भीतर झाँकने लगे। उन्हे आँखों से तो कुछ दिखाई नही दिया। परन्तु नाक से दुर्गन्ध आने लगी। उन्होने ज्यो-त्यो करके दरवाजा खोला। लोगो की आशंका सच निकली। सेठजी न जाने कब मर गये थे। उनकी लाश सड रही थी। चारों ओर दुर्गन्ध फैल रही थी। लोगो ने नाक पर कपड़ा लगा लिया और दूर-दूर हटने लगे।

लोग भाँति-भाँति की बाते कर रहे थे। सेठ के अग्नि-सस्कार की समस्या उठ खडी हुई। कौन ले जाये, उन्हे जलाने के लिये। सब को अपने-अपने प्राण प्यारे थे। आखिर मे भगी को सूचना दी गई। भगी भी लाश को उठाकर ले जाने को तैयार नही था। अन्त मे कुछ पैसो के लोभ मे वह लाश ले जाने के लिये तैयार हुआ। उसने पाँव मे रस्सी बाँधकर लाश को घसीट कर गाँव के बाहर एकान्त मे डाल दी। वही पर पास में एक महात्मा की कुटिया थी। महात्मा ने भगी से कहा—'अरे ! यहाँ यह लाश क्यो डाली ?' भगी ने कुछ नही सुना और वह वहाँ से चला गया। करोडो की सम्पत्ति का स्वामी यों ही पडा था।

एक सियार आया। वह लाश को खाने लगा। तब महात्मा उसे सम्बोधित करके कहने लगे—

हस्तौ दान विवर्जितौ श्रुतिपटौ, सार-श्रुति-द्रोहिणौ,
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते, पादौ न तीर्थं गतौ।
अन्यायार्जित–वित्तपूर्ण–मुदरं, गर्वेण तुङ्गं शिरो,
रे रे जम्बुक ! मुञ्च-मुञ्च सहसा नीचस्य निन्द्यं वपुः ॥

सियार ने हाथ खाना प्रारम्भ किया तो महात्मा बोले—'रे शृगाल ! इन हाथो ने कभी दान नही दिया है। ये अपवित्र है। इन्हे

मत खा।' सियार कान को सूँघने लगा तो महात्मा ने कहा—'अरे! ये कान अपवित्र है। इनसे कभी शास्त्र नही सुने गये है।' सियार आँखे निकालने को प्रवृत्त हुआ, तव महात्मा ने कहा—रे! इन आँखों ने साधु-दर्शन का लाभ कभी नही लिया है।' सियार आँखे न निकाल पाया तो उसने शव के शिर मे दाँत गड़ाये। तव महात्मा ने कहा—'यह शिर भी गर्व मे ऊँचा रहकर अपवित्र वन गया है!' सियार अकस्मात् पाँवो को खाने लगा। महात्मा वोले—'ये पैर भी अपावन है। चतुर्विध तीर्थ की सेवा या स्वागत के लिये ये पैर कभी आगे नही वढ़े।' सियार चौंका और पेट खाने गया तो महात्मा जोर से वोले—'यह पेट अन्याय से उपार्जित धन से भरा गया था। रे जम्वुक! यह पूरा शरीर ही निन्द्य है, अपवित्र है। छोड दे इसे!' शृगाल आवाज सुनकर भाग गया।

शिक्षा—मनुष्य का शरीर अशुचिमय है। उसकी सार्थकता धर्म की आराधना मे ही है।



(७१) यो आदर है धनको

धनवान-घरे नर दीन गयो,
नहि आदर-भाव दियो तिनको।
कुछ काल ही में धनवान वना
लख सेठ दे मान, जिमा जिनको॥
जर-जेवर भोजन पास धरे—
'यह खाइये भोजन है तुमको।'
'मुनिसूर्य' यो आदर है धनको,
पहले कहाँ आदर था हमको' ॥७२॥

गुणचन्द्र अपनी विषम बनती जा रही स्थिति से बहुत ही चिन्तित था। उसके अनेको प्रयत्न करने पर भी दरिद्रता उसका पिंड ही नही छोड रही थी। समाज मे लोग उसे हीनता की दृष्टि से देखते थे। उसे उसके मुँह पर ही लोग 'दीवालिया' कहते थे। उसे किसी से भी सहयोग नही मिल रहा था। जैसे दलदल मे फँसा हुआ हाथी विना किसी का सहारा पाये दलदल से नही निकल सकना है, गुणचंद्र दरिद्रता के दलदल मे अपनी वैसी ही स्थिति अनुभव कर रहा था। उसकी स्त्री ने कहा—' अपने नगर के धनी-मानी सेठ धन्ना से कुछ कहो न।'

वह धन्ना सेठ के वहाँ गया। परन्तु धन्ना सेठ ने उसकी बात सुनने से ही इन्कार कर दिया और उसे अपमानित करते हुए कहा— 'ऐसे कगले तो रोज मेरे यहाँ कई आया करते हैं। किन-किन की बात सुनूँ! कोई पैसे झाड के नही लगते हैं।' गुणचद्र अपमान का घूँट पीकर वहाँ से चला आया। अपनी पत्नी को उसके पिता के घर रखकर, योग्य साथ पाकर वह विदेश चला गया। उसका भाग्य पलटा। वहाँ उसने खूब धन कमाया और धनकुबेर बनकर अपने नगर मे प्रवेश किया। लोगो ने अपने नगर के सपूत को बधा लिया। लोग उसके धनार्जन करने के विक्रम की महिमा गाने लगे।

धन्ना सेठ ने भी उसका ठाठ देखा। उसने विचार किया कि 'यह गुणचन्द्र नया धनपति है। लक्ष्मी ने इसे तिलक किया है तो इसके साथ मैत्री-सम्बन्ध रखना ही श्रेष्ठ होगा।' ऐसा विचार करके, वह स्वय अभिनव श्रेष्ठि गुणचन्द्र के यहाँ भोजन का आमन्त्रण देने गया। गुणचन्द्र ने उसका समुचित सत्कार-सन्मान किया और उसके आने का प्रयोजन पूछा। धन्ना सेठ ने उसे भोजन का आमन्त्रण दिया। गुणचन्द्र ने स्वीकार करते हुए हँसकर कहा—'आप यह कष्ट क्यो कर रहे है ?' धन्ना सेठ भी हँसता हुआ बोला—'इसमे क्या कष्ट है ?'

गुणचन्द्र सज-धजकर और आभूषणो से अलकृत होकर, भोजन करने के लिये गया। इस अवसर पर सेठ के पारिवारिक जन और

मत खा।' सियार कान को सूँघने लगा तो महात्मा ने कहा—'अरे! ये कान अपवित्र है। इनसे कभी शास्त्र नही सुने गये हैं।' सियार आँखे निकालने को प्रवृत्त हुआ, तब महात्मा ने कहा—रे! इन आँखो ने साधु-दर्शन का लाभ कभी नही लिया है।' सियार आँखे न निकाल पाया तो उसने शव के शिर मे दाँत गड़ाये। तब महात्मा ने कहा—'यह शिर भी गर्व मे ऊँचा रहकर अपवित्र बन गया है!' सियार अकस्मात् पाँवो को खाने लगा। महात्मा बोले—'ये पैर भी अपावन है। चतुर्विध तीर्थ की सेवा या स्वागत के लिये ये पैर कभी आगे नही बढ़े।' सियार चौका और पेट खाने गया तो महात्मा जोर से बोले—'यह पेट अन्याय से उपार्जित धन से भरा गया था। रे जम्बुक! यह पूरा शरीर ही निन्द्य है, अपवित्र है। छोड दे इसे!' शृगाल आवाज सुनकर भाग गया।

शिक्षा—मनुष्य का शरीर अशुचिमय है। उसकी सार्थकता धर्म की आराधना मे ही है।



(७१) यो आदर है धनको

धनवान-घरे नर दीन गयो,
नहि आदर-भाव दियो तिनको।
कुछ काल ही में धनवान बना
लख सेठ दे मान, जिमा जिनको॥
जर-जेवर भोजन पास धरे—
'यह खाइये भोजन है तुमको।'
'मुनिसूर्य' यो आदर है धनको,
पहले कहाँ आदर था हमको' ॥७२॥

गुणचन्द्र अपनी विषम बनती जा रही स्थिति से बहुत ही चिन्तित था। उसके अनेकों प्रयत्न करने पर भी दरिद्रता उसका पिंड ही नही छोड रही थी। समाज मे लोग उसे हीनता की दृष्टि से देखते थे। उसे उसके मुँह पर ही लोग 'दीवालिया' कहते थे। उसे किसी से भी सहयोग नही मिल रहा था। जैसे दलदल मे फँसा हुआ हाथी विना किसी का सहारा पाये दलदल से नही निकल सकता है, गुणचद्र दरिद्रता के दलदल में अपनी वैसी ही स्थिति अनुभव कर रहा था। उसकी स्त्री ने कहा—'अपने नगर के धनी-मानी सेठ धन्ना से कुछ कहो न।'

वह धन्ना सेठ के वहाँ गया। परन्तु धन्ना सेठ ने उसकी बात सुनने से ही इन्कार कर दिया और उसे अपमानित करते हुए कहा— 'ऐसे कगले तो रोज मेरे यहाँ कई आया करते है। किन-किन की बात सुनूँ! कोई पैसे झाड के नही लगते हैं।' गुणचद्र अपमान का घूँट पीकर वहाँ से चला आया। अपनी पत्नी को उसके पिता के घर रखकर, योग्य साथ पाकर वह विदेश चला गया। उसका भाग्य पलटा। वहाँ उसने खूब धन कमाया और धनकुबेर वनकर अपने नगर मे प्रवेश किया। लोगो ने अपने नगर के सपूत को वधा लिया। लोग उसके धनार्जन करने के विक्रम की महिमा गाने लगे।

धन्ना सेठ ने भी उसका ठाठ देखा। उसने विचार किया कि 'यह गुणचन्द्र नया धनपति है। लक्ष्मी ने इसे तिलक किया है तो इसके साथ मैत्री-सम्वन्ध रखना ही श्रेष्ठ होगा।' ऐसा विचार करके, वह स्वय अभिनव श्रेष्ठि गुणचन्द्र के यहाँ भोजन का आमन्त्रण देने गया। गुणचन्द्र ने उसका समुचित सत्कार-सन्मान किया और उसके आने का प्रयोजन पूछा। धन्ना सेठ ने उसे भोजन का आमन्त्रण दिया। गुणचन्द्र ने स्वीकार करते हुए हँसकर कहा—'आप यह कष्ट क्यो कर रहे है?' धन्ना सेठ भी हँसता हुआ बोला—'इसमे क्या कष्ट है?'

गुणचन्द्र सज-धजकर और आभूषणो से अलकृत होकर, भोजन करने के लिये गया। इस अवसर पर सेठ के पारिवारिक जन और

प्रतीक्षा मे उसकी आराधना नही की। अत जीव आत्मवैभव से विहीन ही रहा।

शिक्षा–शुभ और लाभ का कार्य, कैसे भी वडे भोग के देने पर होता हो तो भी तत्काल करना चाहिये।



(७३) अरे कूप ! तू नीचा नहीं है (सवैया)

सुन कूप अरे ! मत खेद करे,
स्थित भाग अधो महि मे रहके।
परिपूर्ण महा गुण–गौरव है,
तु बुझावत प्यास तृषी नर के॥
कहा है भयो जो कुछ ऊँच हुए,
मन छिद्र हु औगुन आचर के।
महिमा गुण की लख 'सूर्य' सवै,
न विशेषण जाति सु पाकर के॥७४॥

एक राजा ने जगल मे डेरा डाला। पास मे ही एक मीठे जल का कुआ था। उसका पानी पीकर सवका मन प्रसन्न हो गया। राजा अनेक व्यसनो का घर था।

उधर से एक कवि निकला। वह विपन्न अवस्था में इधर-उधर भटक रहा था। उसने राजा से कुछ याचना करने की इच्छा की। परन्तु वहाँ सुरा-सुन्दरी का दौर चलते हुए देखकर पीछा लौट आया और आकर कुए की पालपर वैठ गया। उसने सोचा कि इस राजा का जीवन-सुधार हो जाय तो यह दु खियो के लिये कल्पवृक्ष वन सकता है। पर यह हो कैसे ?

कवि इस उधेड वुन मे था। कितना समय वीत गया-उसे पता

नही चला। इतने में राजा उधर आता हुआ दिखाई दिया। तब उसने कुए को सम्बोधन करके कहना प्रारम्भ किया—

'हे कूप ! तू खेद क्यों करता है ? तू खेद मत कर। भले ही तूं पृथ्वी के निचले भाग मे स्थित है, भले ही तू नीचा है, परन्तु फिर भी तू जल से परिपूर्ण है। तू प्यासो की प्यास बुझाता है। उनके मुरझाये हुए देह में चैतन्य भरता है। अत तू गुणी है। मेरी दृष्टि में तू ऊँचा है।'

राजा की आँखें खुल गई। वह कवि के पास आया और बोला—'धन्य है कविराज ! आपने इस कुए के बहाने मुझे ही उपदेश दिया है। सचमुच मे जाति की कुछ भी विशेषता नही है। ऊँचे कुल में जन्म लिया हो तो उससे क्या होना जाना है। उच्च कुलीन के मन मे विषयों के छिद्र हों, उसमें कुछ भी गुण न हो और वह दुराचार करता हो तो धिक्कार का पात्र ही है। अब मै ऐसा नहीं रहूँगा।' और राजा व्यसनो से मुक्त होकर, सचमुच मे कल्पवृक्ष के तुल्य बन गया।

शिक्षा—(१) मनुष्य गुणो मे ही ऊँचा होता है।
(२) अन्योक्ति भी शिक्षा का एक साधन है।
(३) दान मे मनुष्य उच्च बनता है।

—:—:—

(७४) क्यों ना मैं भी फल देऊँ ? (कविता)

नृप वन-बीच थके, सूतो बोर झाड़ तले,
बोर पाड़े एक नर देखत उमाय के।
नृप-शिर पत्थर पड्यो है, खून-धार बही,
पकड़ लगाई मार, भट झट धाय के।।

नगर के अन्य प्रमुख जन भी आमन्त्रित थे । धन्ना सेठ ने विशिष्ट तैयारी की थी । गुणचन्द्र भोजन करने के लिये बैठा । उसने भोजन-सामग्री को देखा तो लगा कि आज के इस व्यय से कई दीन जनो को सहायता मिल सकती थी । उसने आभूषण उतार कर भोजन के पास रख दिये और वह बोला—'आभूषणो ! यह भोजन खाओ !'

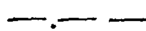
लोगो ने आश्चर्य से पूछा—'यह आप क्या कर रहे है !' उसने कहा—'यह आदर इस धन को ही मिला है, हमे नही । आपको विश्वास नही हो तो पूछ लीजिये धन्नाशाहजी से ।'

धन्ना सेठ लज्जित हो गया ।

शिक्षा—(१) दीन-दुखियो का निरादर नही करना चाहिये ।

(२) वृथा व्यय की अपेक्षा दीनो को सहयोग देना श्रेष्ठ है ।

(३) किसी को आदर-सत्कार या सहयोग देने मे अपना स्वार्थ नही देखना चाहिये ।



(७२) काहे को दरिद्री रह्यो (कवित्त)

एक विप्र जोगीस की भक्ति खूब-खूब करी,
दु:खी जान पार्स एक दियो प्रेम लावतो ।
यां को स्पर्श कियां लोह, छिनमे कनक होत,
जोगी गयो देय, विप्र हर्ष न समावतो ।।
लोह लेन गयो द्विज, बढ्यो भाव ताहि समै,
'भाव घटे लोह लेऊँ' लेन रोज जावतो ।
जोगी आयो 'सूर्य' कहे—'काहे को दरिद्री रह्यो ?'
'अरे महाराज ! नहि लोह भाव आवतो' ।।७२।।

एक ब्राह्मण बहुत ही गरीब था । गरीबी के कारण उसके मनोरथ मन में ही विलीन हो जाते थे और इसी कारण उसमे कृपणता भी बहुत आ गई थी । फिर भी वह महात्माओ, योगियो आदि की सेवा करता था ।

एक बार उस ग्राम मे एक बडे योगी का पदार्पण हुआ । परन्तु वह अपनी सिद्धियो के प्रदर्शन में विश्वास नही करता था । अत. लोगो की भीड भी कम ही जमा होती थी । परन्तु वह गरीब ब्राह्मण उनकी सेवा मे उपस्थित रहता था । उनकी छोटी से छोटी सेवा भी करने को तत्पर रहता था । योगी उसकी सेवा से बडे प्रसन्न हुए । वे वहाँ से जाते समय ब्राह्मण को पारसमणि दे गये और कहते गये—'यह है पारसमणि । इससे तुम ढेरो लोहे को सोना बना सकते हो । जब मैं वापिस आऊँगा, तब इस पारसमणि को लेता जाऊँगा ! इस बीच मे तुम अपने दारिद्रय को दूर भगा देना !'

योगी के जाने के वाद ब्राह्मण लोहा लेने के लिये बाजार मे गया । उस समय लोहे के भाव कुछ चढे हुए थे । उसने सोचा-अभी तो लोहा बहुत महँगा है । कुछ सस्ता हो जाय तो खरीद लूँ । कुछ समय वाद वह फिर वाजार मे गया । परन्तु उस समय तक लोहे के भाव और बढ गये थे । इसप्रकार वह कई बार बाजार मे गया, पर लोहा नही खरीद सका । योगी पुन ग्राम मे आये । उन्होंने ब्राह्मण से कहा—'तू अभी तक दरिद्री ही क्यो है ?'

ब्राह्मण खिन्नता के साथ बोला—'योगिन् ! क्या करूँ ? समय ही अनुकूल नही हुआ ! लोहे के भाव आसमान को छू रहे है । कुछ भाव बरावर हो तो लोहा खरीदूँ और फिर सोना बने !'

'तू दरिद्री ही रहने योग्य है'—यह कहकर योगी ने पारसमणि ले ली । ब्राह्मण वहुत ही गिडगिडाया । पर योगी ने एक न सुनी ।

उपनय—जीव को विशिष्ट पुण्योदय से पारसमणि के तुल्य 'केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म' प्राप्त हुआ है । परन्तु समय की अनुकूलता की

प्रतीक्षा मे उसकी आराधना नही की। अत: जीव आत्मवैभव से विहीन ही रहा।

शिक्षा—शुभ और लाभ का कार्य, कैसे भी बड़े भोग के देने पर होता हो तो भी तत्काल करना चाहिये।



(७३) अरे कूप ! तू नीचा नहीं है (सवैया)

सुन कूप अरे ! मत खेद करे,
स्थित भाग अधो महि में रहके।
परिपूर्ण महा गुण—गौरव है,
तु बुझावत प्यास तृषी नर के ॥
कहा है भयो जो कुछ ऊँच हुए,
मन छिद्र हु औगुन आचर के।
महिमा गुण की लख 'सूर्य' सवै,
न विशेषण जाति सु पाकर के ॥७४॥

एक राजा ने जगल मे डेरा डाला। पास मे ही एक मीठे जल का कुआ था। उसका पानी पीकर सवका मन प्रसन्न हो गया। राजा अनेक व्यसनो का घर था।

उधर से एक कवि निकला। वह विपन्न अवस्था में इधर-उधर भटक रहा था। उसने राजा से कुछ याचना करने की इच्छा की। परन्तु वहाँ सुरा-सुन्दरी का दौर चलते हुए देखकर पीछा लौट आया और आकर कुए की पालपर बैठ गया। उसने सोचा कि इस राजा का जीवन-सुधार हो जाय तो यह दु खियो के लिये कल्पवृक्ष बन सकता है। पर यह हो कैसे ?

कवि इस उधेड बुन मे था। कितना समय बीत गया-उसे पता

नही चला। इतने में राजा उधर आता हुआ दिखाई दिया। तब उसने कुए को सम्बोधन करके कहना प्रारम्भ किया—

'हे कूप ! तू खेद क्यों करता है ? तू खेद मत कर। भले ही तू पृथ्वी के निचले भाग मे स्थित है, भले ही तू नीचा है, परन्तु फिर भी तू जल से परिपूर्ण है। तू प्यासो की प्यास बुझाता है। उनके मुरझाये हुए देह मे चैतन्य भरता है। अत: तू गुणी है। मेरी दृष्टि में तू ऊँचा है।'

राजा की आँखे खुल गई। वह कवि के पास आया और वोला—'धन्य है कविराज ! आपने इस कुए के बहाने मुझे ही उपदेश दिया है। सचमुच मे जाति की कुछ भी विशेषता नही है। ऊँचे कुल में जन्म लिया हो तो उससे क्या होना जाना है। उच्च कुलीन के मन मे विषयों के छिद्र हो, उसमें कुछ भी गुण न हों और वह दुराचार करता हो तो धिक्कार का पात्र ही है। अब मै ऐसा नहीं रहूँगा।' और राजा व्यसनो से मुक्त होकर, सचमुच मे कल्पवृक्ष के तुल्य वन गया।

शिक्षा—(१) मनुष्य गुणों मे ही ऊँचा होता है।
(२) अन्योक्ति भी शिक्षा का एक साधन है।
(३) दान से मनुष्य उच्च बनता है।

—:—:—

(७४) क्यों ना मैं भी फल देऊँ ? (कवित्त)

नृप वन-बीच थके, सूतो बोर झाड़ तले,
बोर पाड़े एक नर देखत उमाय के।
नृप-शिर पत्थर पड्यो है; खून-धार बही,
पकड़ लगाई मार, भट झट धाय के।।

'मारो मत' नृप कहे, सुन हाल 'सूर्यमुनि'
लक्ष रुपै दिये नृप घर पे सिधाय के।
'मारे जड़ देत फल, क्यों ना मैं भी फल देऊँ?'
औगुन पे गुन करे, विरले दिखाय के ॥७५॥

एक राजा वन-विहार के लिये गया था। वह हरे-भरे जंगल को लाँघता हुआ एक ऐसे प्रदेश में पहुँच गया, जहाँ बेर के ही बड़े-बड़े झाड़ थे। राजा थक गया था। उसे विश्राम करना था। एक बेर के बड़े वृक्ष के नीचे उसने डेरा डाला। उसे कुछ निद्रा आ गई।

कुछ दूर पर एक भील वृक्षों से बेर गिरा रहा था। उसने वृक्ष पर पत्थर फेंका। वह अकस्मात् आकर राजा के सिर पर लग गया। सिर से खून की धारा बहने लगी। सैनिकों ने उस भील को पकड़ लिया। भील बेचारा थर-थर काँप रहा था। वे उसको पीटने लगे और पकड़कर राजा के पास ले आया।

राजा को भी बड़ा क्रोध आ रहा था। उसने सोचा-कैसा दुष्ट है? बिना देखे इधर-उधर पत्थर फेंकता है? इसे कड़ा दण्ड मिलना चाहिये। परन्तु भील को भयभीत देखकर, राजा को कुछ दया आ गई। उसने सैनिकों को संकेत से उसे मारने से मना किया। राजा ने उसे धमकाते हुए पूछा—'क्यों जी? तुमने पत्थर क्यों फेंका?' इतने ढीठ हो तुम कि अपने ही राजा पर पत्थर फेंकते हो?' भील ने डरते हुए कहा—'राजा साहब! मैंने आप पर पत्थर फेंका?' राजा ने आँखें तरेरते हुए कहा—'तो फिर किसपर फेंका?' भील ने रुआँसे होकर कहा—'मैं तो बोर गिराने के लिये बोर पर पत्थर फेंक रहा था। मुझे मालूम नहीं था कि इस काँटे वाले झाड़ के नीचे राजा साहब सोये हैं? एक पत्थर इधर आया और आपको लग गया। मैंने जान बूझकर इधर पत्थर नहीं फेंका!

'काँटेवाला झाड़' शब्द सुनकर राजा विचार में पड़ गया। 'यह काँटेवाला वृक्ष पत्थर खाकर खटमीठे बेर देता है और मैं इसे

दण्ड देने की सोच रहा हूँ। क्या इस स्थावर वृक्ष से भी मैं गया बीता हूँ। मैं भी इसे सुन्दर फल क्यो न दूँ ? इस बेचारे को अब फिर बेर बेचने के लिये बेर पर पत्थर न मारने पड़े, ऐसा सुन्दर फल इसे देना चाहिये।'

बाद मे राजा ने उसे सुशिक्षित बनाया और एक लाख रुपये का पुरस्कार देकर, उसके दारिद्रय को दूर कर दिया।

शिक्षा—(१) 'औगुन''''दिखाय के' अर्थात् अपकारी पर उपकार करनेवाले ससार मे विरले ही मनुष्य दिखाई देते हैं।

(२) किसी के अपराध करने पर, उस विषय पर आवेश से नही शान्ति से सोचना चाहिये।

(३) अपराधी के अपराध करने के मूल कारण को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।



(७५) रात का भोजन नहीं अच्छा

एक सुशीला का पति, आया था विदेश में से
रात रोटी खाई सुबै, मरा हुआ पाया है।
हाकिम ने पूछा, 'खाया रोटी सिवा कुछ नहि'
रोटी पर चींटी सँस देख भ्रम लाया है।।
चींटी दर खोद देखे, तामें अहि मरा पाया
चींटी-विष-लेप आई रोटी मै समाया है।
नारी मुक्त दोष हुई, सच्चा यह न्याय हुआ
रात का भोजन तज 'सूर्य' समझाया है।।७६।।

सुशीला प्रसन्न है। उसे आज ही एक पत्र मिला है, जिसे पढते ही उसका रोम-रोम विकसित हो गया। पत्र उसके पति का था। कई

महिनों बाद उसके रुठे हुए पति कल घर आ रहे हैं। जब उसके पति उससे रुठकर कही चले गये थे, तब पास-पड़ोस के लोगों को भी न जाने कहाँ से इस बात का पता लग गया था और उन लोगों ने उसके स्वभाव के विषय मे काना फूसी की थी और उसकी ननंद ने भी उसे बहुत जली-कटी सुनाई थी। परन्तु आज पति का प्रेम भरा पत्र पाकर, वह गौरव से फूली न समा रही है। वह सोच रही है–पतिदेव के आ जाने पर, उन लोगो को स्वयं ही उत्तर मिल जाएगा।' इस प्रकार विचार-मग्नता मे कब रात हो गई, इसका उसे पता ही नहीं चला। जब किसी ने द्वार खटखटाया, तब उसकी विचार-तन्द्रा टूटी।

वह उठी। उसने द्वार खोला तो उसने देखा कि सामने मुसकाते हुए पतिदेव खड़े है। वह आश्चर्य से बोल पडी—'अरे आप !'

पति ने हँसते हुए कहा—'तुम्हे पत्र नही मिला क्या ?'

उसने कहा–'आज ही तो मिला है ! उसीके विषय में विचार कर रही थी। किन्तु उसमे तो आपने कल आने का लिखा है !'

पति ने मुँह बनाते हुए कहा–'तो आज आना अपराध हो गया क्या ? लो, घर में आने भी दोगी कि यों दरवाजा रोके ही खडी रहोगी ?' सुशीला एकदम खिलखिलाकर हँस पडी। दरवाजे से हटकर, पतिका स्वागत करते हुए बोली—'क्यों न आने दूँगी भला ! जिस क्षण के लिये कितनी रातें उनीदी खोई है ! वह क्षण अनायास ही आ गया और मै आपके स्वागत करने के सपने ही संजोती रह गई ! स्वागत की तैयारी ही न कर सकी। बस, इसीलिये ठिठक गई थी। वह पति को भीतर ले गई। उसने उसके चरण छुए। पतिका क्षेम-कुशल पूछा। दोनों बातें करने लगे। अतीत का स्मरण करते हुए, सुशीला की आँखें मे आसूँ आ गये।

तब पति बोला—'हर्ष मे यह विषाद कैसा !

कुछ खिलाओगी–पिलाओगी कि बातों से ही पेट भरोगी—' उसने सुशीला के आँसू पोछते हुए कहा।'

सुशीला एकदम चौंकती हुई उठी और बोली—'अरे ! मैं भी कैसी हू ! आप दूर से आ रहे हैं। भूख लग रही होगी। अभी भोजन तैयार करती हू !'

'नही, रोटी नही बनाना है। सुबह का कुछ पड़ा होगा तो मैं खा लूँगा !'

'क्या देर लगती है रोटी बनाने में। अभी बना देती हूँ।'

'नही-नही, कुछ मत बनाना। मेरी सौगध। दूध तो गरम होगा ही। सुबह की रोटी तो पडी ही होगी। सच, तुम्हारे हाथ की ठडी रोटी भी बढिया लगती है। दूध के साथ रोटी खा लूँगा !'

उसने रोटी नही बनाने दी। सुशीला टिमटिमाते हुए दीपक को लेकर, रसोई घर में गई। वह गिलास में दूध भरन लगी। पति ने कटोरदान खोला और उसमे से रोटी निकाल ली। उसने दूध के साथ रोटियाँ खा ली।

इधर-उधर की बाते करते हुए दोनो सो गये।

पौ फटी। पूर्व दिशा रक्तवर्ण हो गई। सुशीला की आँखे खुली। वह प्रसन्नता से गृहकार्य मे लग गई। सूर्योदय हो गया। पति अभी तक नही उठे हैं। सुशीला ने सोचा—'इतनी देर तक तो पति-देव नही सोते है ! क्यो नही जागे अभी तक ! अरे ! थके हुए आये हैं !' लेकिन उसका मन नही माना। वह उन्हे जगाने के लिये आई। 'कमरा एकदम सुनसान है। जरा भी आवाज नही आ रही है। उनके साँस की भी आहट नही आ रही है ? क्या बात है ?'

वह समीप गई। शय्या पर पतिदेव सोये हुए हैं। 'कैसी गाढ निद्रा मे सोये हैं !' वह कुछ क्षण उस ओर देखती रही। फिर उसने स्वामी को पुकारा। परन्तु कुछ भी प्रत्युत्तर न मिला। वह सन्मुख गई। यह क्या मक्खियाँ नाक मे घुस रही हैं ! सुशीला एकदम आशकित हो गई।

'स्वामी ! स्वामी !'—उसने पुकारते हुए पति को झिझोडा !

हा ! वज्रपात ! यह क्या ? पति की मृत देह ही उसके हाथ मे रह गई है। हंस कहाँ रवाना हो गया ? विधि की यह कैसी क्रूर विडम्बना ! कैसी-कैसी वाते की थी रात में ! कैसे-कैसे सपने संजोये थे ? हा ! इसीलिये आये थे ! क्या इसीलिये—दारुण दुःख देने के लिये ही यह क्षणिक सुख की झलक दिखाई। हे परमात्मन् ! हे प्रभो !

उसने देखा—स्वामी के मुखपर वही चिर-परिचित मुसकान विराजमान है। वह सोचती है—मैं भी कैसे अनिष्ट विचार कर रही हूँ ! स्वामी तो मुसका रहे है। परन्तु स्वामी वोलते क्यों नही हैं ! उसने पति को उठाने के लिये प्रयत्न किया। परन्तु शव उसके हाथ से लुढक गया। शरीर पर नीली झाई दिखाई दे रही थी। वह एक-दम चीख उठी—'हा ! स्वामी !' अनजाने ही उसके गले से रुदन फूट पडा। आवाज सुनकर, पास-पडोस के लोग इकट्ठे हो गये। सव के मुँह से ये ही शव्द निकल रहे थे—'कव आया यह ? वीमार था क्या ! कैसे मर गया ?' सुशीला ने वड़ी कठिनाई से वताया—'कल रात को आये। हँसी-खुशी मे थे। आनन्द मे सोये। अभी उठाने आई तो यह हालत पाई ! हे राम ! मेरा तो सर्वस्व लुट गया !' वह जोर-जोर से रोने लगी।

ग्राम मे जो सुशीला के सम्वन्धी थे, उनके पास सूचना पहुँची। वे भी आ गये। सुशीला की ननंद भी आई। उसने वात जानी। वह रोती हुई वोली—'हा ! मेरा भैया ! मेरे पीहर का एक ही कुल-दीपक ! आज वूझ गया रे राम ! हे भैया ! कहाँ-कहाँ भटका तू ! भाभी का तुझपर प्रेम था ही नही ! हाय ! यह रण्डा मेरे भाई को खा गई ! जहर दे दिया इसने ! दीखता नही तुम लोगो को ! नीली कच पड रही है मेरे भैया की देह !' इसप्रकार प्रलाप करती हुई वह जोर-जीर से छाती पीटने लगी। लोगो का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ। अव यह निर्णय हो गया कि यह स्वाभाविक मौत से नही मरा है। इसे जहर दिया गया है। दूसरा घर मे कोई है नही ! सुशीला ने ही जहर दिया होगा। लोग भी उसे धिक्कार ने लगे।

इस आरोप से सुशीला इतनी आहत हुई कि वह रोना ही भूल गई। उसकी आँखे फटी ही रह गई। उसके दु.ख का पार नही रहा। हे भगवन् ! यह कैसा पाप का उदय हुआ है ! लोग आवेश मे थे। ननन्द चिल्ला-चिल्ला कर कह रही थी—'अरे राम रे ! क्या किया इस डाकिन ने ! जला दो इस रडी को भी भैया के साथ !'

सुशीला से अव नही रहा गया। वह अपनी छाती पीटती हुई बोली—'हे भगवन् ! तू देख रहा है ! तुझसे कुछ छिपा नही है ! मैंने स्वामी को जहर नही दिया है ! क्या हुआ—यह मैं नही जानती ? मुझे मरने का डर नही है' फिर लोगो की ओर देखकर कहा—'मेरे जीवन मे रस तो पहले से ही उड़ गया था । अब तो जीने की तनिक भी इच्छा नही है। चलो, मुझे भी स्वामी में संग जला दो ! परन्तु यह वात झूठी है कि मैंने स्वामी को जहर दिया है।' इतना कहकर वह उठ खडी हुई। उसका रोना वन्द हो गया। वह पागल-सी दौड़ी हुई अपने बक्स के पास गई और बोली—'चलो, शृंगार सज लूँ ! मैं सती हो ऊँगी !'

उधर ननन्द अलग चीख रही थी–'देखो राँड ! धणी को मार के सती होने चली है ?'

सुशीला के घर के सामने ही ग्राम के मुख्य न्यायाधीश रहते थे। वे सुशीला केसच्चारित्र्य से बड़े प्रभावित थे। जब उन्होने सारी बातें जानी, तव वह आश्चर्य चकित रह गये। एक ही क्षण मे उनके मस्तिष्क में कई विचार दौड गये। परन्तु उन्हे इस घटना में कुछ रहस्य प्रतीत हुआ। सुशीला उन्हे निर्दोष प्रतीत हुई। उनसे नहीं रहा गया। वे स्वय ही सुशीला के घर पहुँच गये। लोग सकपका गये।

न्यायाधीश सीधे सुशीला के पास पहुँचे। सव लोग आश्चर्य से उस ओर देखने लगे। सुशीला की ननन्द भी चुप हो गई और 'यह क्या हो रहा है ?' यह जानने को उत्सुक हो गई। वह अपने पल्ले से आँसू पोंछ रही थी। उधर सुशीला ने नये वस्त्र पहन लिये थे। उसके

मुख पर वेदना की छाया होते हुए भी एक विचित्र तेज प्रतीत हो रहा था। न्यायाधीश ने सुशीला से कहा—'बेटी ! सच-सच बताओ ! तुमने रात को अपने पति को क्या-क्या खिलाया-पिलाया था ?'

सुशीला भय, लज्जा, त्रास आदि आवेगों से ऊपर उठ चुकी थी। वह निर्भयता से बोली—'हे महानुभाव ! आप मेरे पिता के तुल्य हैं और आप न्याय को तुलापर तोलने वाले न्यायाधीश हैं। मैं आपके समक्ष असत्य नही कहूंगी। रात मे मेरे स्वामी अचानक ही आये। बड़े प्रसन्न थे वे ! मैने भोजन बनाने का आग्रह किया। परन्तु उन्होंने भोजन नही बनाने दिया। उन्होने दूध के साथ, कटोरदान से अपने हाथ से ही सुबह की रोटियाँ निकालकर खाई। इसके सिवाय उन्होने यहाँ कुछ भी खाया-पीया नही। परन्तु उनकी नीली पड़ी हुई देह से पता चल रहा है कि उनकी मृत्यु जहर से हुई है। मै यह नही जानती कि उनके पेट मे जहर कैसे पहुँचा ? पेट में जहर पहुँचा है—यह सत्य है। लेकिन मैंने जहर नही दिया है। मै निर्दोष हूँ !'

न्यायाधीश ने कहा—'बेटी ! वह कटोरदान कहाँ है ? लाओ मुझे बताओ तो ! रोटियों मे कुछ मिला हुआ तो नही है ? देखना होगा यह !' सुशीला तेजी से रसोई घर मे गई। वह क्षणभर मे हाथ में कटोरदान लेकर उपस्थित हो गई। उसने न्यायाधीश के हाथ मे कटोरदान थमा दिया। लोग साँस रोके हुए यह सब देख रहे थे।

न्यायाधीश ने कटोरदान खोला। उन्होने उसमे लाल कीडियाँ चलती हुई देखी। न्यायाधीश ने एक रोटी ली। उसकी पोरी खोली तो कीड़ियो का छत्ता जमा हुआ दिखाई दिया। न्यायाधीश ने उसे बताकर, रहस्य का भेद करते हुए कहा—'मालूम पड़ता है—रात मे बिना देखे ही चीटियों वाली रोटी तुम्हारा पति खा गया है और इन चीटियों के द्वारा ही उसके पेट मे जहर पहुँचा है। देखो, इन चींटियो के बिल में कुछ और वस्तु तो नही है !' न्यायाधीश ने रहस्य की अगली कडी को खोला।

लोग शब्बल ले आये। कीडियों का बिल ढूँढकर खोदा गया। उस समय लोगो के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा, जब उन्होने खुदाई करने पर, एक मरे हुए भयकर विषधर को पाया ! वहाँ उपस्थित जन समुदाय समझ गया कि मृतक शरीर में जहर कैसे पहुँचा ? सुशीला निर्दोष सिद्ध हो गई।

सुशीला ने न्यायाधीश के चरण पकड लिये । उसके कपोलो पर आँसूओ की धारा बहने लगी। वह हिचकियाँ लेती हुई बोली—'मैं आपका किन शब्दो मे उपकार मानूँ ! आप धन्य है ! आप सच्चे न्यायाधीश हैं। मेरे सिर का कलक आपने धो दिया···' न्यायाधीश ने उसे उठा लिया और कहा—'बेटी ! मैंने कुछ नही किया है ! यह सब तेरे शुभ कर्मो ने ही मुझसे अनायास ही करवा दिया है। बेटी ! अब तुम सती होने का विचार त्याग दो और पुण्य कार्य मे अपना जीवन व्यतीत करो ! मुझे वचन दो कि तुम····'

सुशीला की ननन्द पश्चाताप के स्वर मे बीच में ही बोल उठी 'आप ठीक कह रहे हैं । मुझ पापिनी ने ही भाभी पर यह लाछन लगाया था। आपने हमारा भ्रम भगा दिया। मै किसी भी हालत मे भाभी को सती नही होने दूँगी····'

आखिर मे शव का अग्नि-सस्कार किया गया !

शिक्षा—(१) रात्रि भोजन अहितकर है। इहलोक और परलोक मे दुःख-दायी है। अत रात्रि भोजन का परित्याग करना चाहिये और वस्तुओ को बिना देखे उपयोग मे नही लेना चाहिये।

(२) बिना विचारे किसी पर सहसा दोषारोपण नही करना चाहिये।

(३) किसी पर होते हुए अन्याय का समुचित उपायो मे प्रतिकार करना चाहिये।



मुख पर वेदना की छाया होते हुए भी एक विचित्र तेज प्रतीत हो रहा था। न्यायाधीश ने सुशीला से कहा—'बेटी ! सच-सच वताओ ! तुमने रात को अपने पति को क्या-क्या खिलाया-पिलाया था ?'

सुशीला भय, लज्जा, त्रास आदि आवेगों से ऊपर उठ चुकी थी। वह निर्भयता से बोली—'हे महानुभाव ! आप मेरे पिता के तुल्य हैं और आप न्याय को तुलापर तोलने वाले न्यायाधीश हैं। मै आपके समक्ष असत्य नही कहूंगी। रात में मेरे स्वामी अचानक ही आये। बड़े प्रसन्न थे वे ! मैने भोजन बनाने का आग्रह किया। परन्तु उन्होंने भोजन नही बनाने दिया। उन्होने दूध के साथ, कटोरदान से अपने हाथ से ही सुबह की रोटियाँ निकालकर खाई। इसके सिवाय उन्होंने यहाँ कुछ भी खाया-पीया नही। परन्तु उनकी नीली पड़ी हुई देह से पता चल रहा है कि उनकी मृत्यु जहर से हुई है। मैं यह नही जानती कि उनके पेट मे जहर कैसे पहुँचा ? पेट मे जहर पहुँचा है—यह सत्य है। लेकिन मैने जहर नही दिया है। मै निर्दोष हूँ !'

न्यायाधीश ने कहा—'बेटी ! वह कटोरदान कहाँ है ? लाओ मुझे बताओ तो ! रोटियों में कुछ मिला हुआ तो नही है ? देखना होगा यह !' सुशीला तेजी से रसोई घर मे गई। वह क्षणभर मे हाथ में कटोरदान लेकर उपस्थित हो गई। उसने न्यायाधीश के हाथ मे कटोरदान थमा दिया। लोग साँस रोके हुए यह सब देख रहे थे।

न्यायाधीश ने कटोरदान खोला। उन्होने उसमे लाल कीडियाँ चलती हुई देखी। न्यायाधीश ने एक रोटी ली। उसकी पोरी खोली तो कीड़ियों का छत्ता जमा हुआ दिखाई दिया। न्यायाधीश ने उसे बताकर, रहस्य का भेद करते हुए कहा—'मालूम पड़ता है—रात मे बिना देखे ही चीटियो वाली रोटी तुम्हारा पति खा गया है और इन चीटियो के द्वारा ही उसके पेट मे जहर पहुँचा है। देखो, इन चींटियो के बिल मे कुछ और वस्तु तो नही है !' न्यायाधीश ने रहस्य की अगली कडी को खोला।

करूँगा।' धोबी ने उससे कुछ रुपये में हाथी खरीद लिया। वह हाथी पर कपड़े लादकर जलाशय पर धोने जाता।

वह राज धोबी था । एक दिन वह राजमहल के वस्त्रो को हाथी पर लादकर, महल से जा रहा था। राजा ने उसे देखा और उसे अपने पास बुलाया। उससे राजा ने हाथी पाने की कहानी जानी। अन्त मे राजा ने उससे हाथी खरीद लिया !

राजा ने हाथी को सुशिक्षित करवाया। उसे अत्युत्तम शृंगार से मंडित किया और पट्टहस्ति के रूप मे अभिषिक्त किया।

शिक्षा—'आदर स्थान समान मिले' अर्थात् सन्मान दाता का जैसा स्तर होता है, उसके अनुसार ही वह सन्मान करता है। अत व्यक्ति को सभ्य, शिष्ट और उच्च चारित्र्यवान के समीप ही रहना चाहिये या उन्ही की सगति मे रहना चाहिये।



(७७) शूली टली काँटो लाग (कवित्त)

एक मित्र गणिका पे गयो, रति-केलि कियो,
दूजो मित्र गयो मुनि-दर्शन उमाय के।
मारग में काँटो लागे, तासे खून-धार छूटी,
मिले दोनों मित्र कही बीतक सुनाय के॥
मुनि ने निर्णय कीनो—'जातो न गणिका-द्वार
राज पातो, भ्रष्ट कियो वेश्या घर जाय के।
मुनिपद 'सूर्य' भेंट शूली टली काँटो लाग,
भलो-बुरो संगत को ऐसो फल पाय के॥७८॥

दो मित्र थे। एक का नाम धर्मचन्द्र और दूसरे का नाम कर्मचन्द्र। धर्मचन्द्र था आस्तिक और कर्मचन्द्र नास्तिक। धर्मचन्द्र धर्म की आराधना में मानव-जन्म की सार्थकता मानता था, तो कर्मचन्द्र पाँचो

(७६) आदर, स्थान समान मिले (सवैया)

कजली वन से गज भील लही,
तिन पै घर इंधन जान भले।
तव धोबी कुलाल हु मोल लियो,
मृतिका पट को धर भार चले ॥
नृप लेकर मोल, सिंगार सजाय—
कियो वर कुंजर सैन्य झिले।
'मुनिसूर्य' कहे सब को जगमें इम
आदर स्थान समान मिले ॥७७॥

कजली वन मे हाथी के झुण्ड के झुण्ड फिरते थे।

हाथी यों पकड मे नही आते थे। परन्तु एक भील ने एक हाथी के बच्चे को पकड लिया। वह उत्तम जाति का हाथी था। भील ने सोचा—मै लकडियो का भार ढोते-ढोते थक गया हूँ। अव मुझे यह हाथी मिल गया है इसपर लकडियो का बोझ बेचने के लिये गाँव मे ले जाऊँगा। अव वह हाथी पर लकड़ियाँ ला–लाकर गाँव में वेचने लगा।

एक कुम्हार ने यह दृश्य देखा। उसने सोचा—'यह भील इस हाथी पर इधन ढोता है! मैं इससे इसे मोल ले लूँ! मुझे कितने गधे रखने पडते है—मिट्टी लाने के लिये और बर्तन नगर मे ले जाने के लिये! इस एक हाथी से सब काम हो जाएगा!' और उसने भील से कुछ ही तावे के सिक्के मे उस हाथी को खरीद लिया। अव वह हाथी पर मिट्टी लाने लगा।

एक वार धोवी ने कुम्हार को हाथी पर मिट्टी लाद कर ले जाते हुए देखा। वह मन ही मन में वड़बडाने लगा 'कैसा मूर्ख है यह! हाथी पर मिट्टी ढोता है। मैं ले लूँ इसे। इस पर कपड़े लादा

करूँगा।' धोबी ने उससे कुछ रुपयों में हाथी खरीद लिया। वह हाथी पर कपड़े लादकर जलाशय पर धोने जाता।

वह राज धोबी था। एक दिन वह राजमहल के वस्त्रों को हाथी पर लादकर, महल से जा रहा था। राजा ने उसे देखा और उसे अपने पास बुलाया। उससे राजा ने हाथी पाने की कहानी जानी। अन्त मे राजा ने उससे हाथी खरीद लिया!

राजा ने हाथी को सुशिक्षित करवाया। उसे अत्युत्तम शृंगार से मंडित किया और पट्टहस्ति के रूप मे अभिषिक्त किया।

शिक्षा—'आदर स्थान समान मिले' अर्थात् सन्मान दाता का जैसा स्तर होता है, उसके अनुसार ही वह सन्मान करता है। अत व्यक्ति को सभ्य, शिष्ट और उच्च चारित्र्यवान के समीप ही रहना चाहिये या उन्ही की संगति मे रहना चाहिये।



(७७) शूली टली काँटो लाग (कवित्त)

एक मित्र गणिका पे गयो, रति-केलि कियो,
दूजो मित्र गयो मुनि-दर्शन उमाय के।
मारग में काँटो लागे, तासे खून-धार छूटी,
मिले दोनो मित्र कही बीतक सुनाय के॥
मुनि ने निर्णय कीनो—'जातो न गणिका-द्वार
राज पातो, भ्रष्ट कियो वेश्या घर जाय के।
मुनिपद 'सूर्य' भेंट शूली टली काँटो लाग,
भलो-बुरो संगत को ऐसो फल पाय के॥७८॥

दो मित्र थे। एक का नाम धर्मचन्द्र और दूसरे का नाम कर्मचन्द्र। धर्मचन्द्र था आस्तिक और कर्मचन्द्र नास्तिक। धर्मचन्द्र धर्म की आराधना में मानव-जन्म की सार्थकता मानता था, तो कर्मचन्द्र पाँचो

इन्द्रियों के विषयो के सेवन में। वे दोनो एक-दूसरे को अपने मत की युक्ति युक्तता समझाते थे।

रात्रि का समय था। कर्मचन्द्र वेश्या के कोठे पर जाने के लिये निकला। रास्ते मे धर्मचन्द्र मिल गया। धर्मचन्द्र ने पूछा—'कहाँ जा रहे हो?' कर्मचन्द्र ने कहा—'स्वर्ग का सुख भोगने और तुम कहाँ जा रहे हो?' धर्मचन्द्र ने भी वैसा ही उत्तर दिया—'नरक के दु ख और स्वर्ग के सुख दोनों को छोडने!' प्रसग तो ऐसा था कि उन दोनों मे जोरो की बहस छिड़ जाती। परन्तु दोनो के पास समय नही था। अत दोनो अपने-अपने रास्ते पर चले गये।

धर्मचन्द्र ने मुनिदर्शन किये-धर्मस्थान में जाकर और उनका रात्रि-प्रवचन सुना। वह बडा आनन्दित हुआ। उसे अपने मित्र की याद आई। उसने सोचा कि वह इस आनन्द से वचित रह गया। वह घर लौट रहा था। रास्ते मे कॉटा लगा। जिससे पॉव मे सूजन आ गई। कर्मचन्द्र वेश्या के यहाँ गया। वहाँ बडा आनन्द आया उसे। उसे भी अपना मित्र अयाद आया। जब वह घर पर लौट रहा था, तब उसे जड़ाऊ सरपेंच मिला।

दोनों मित्र मिले। अपनी-अपनी बीतक बात सुनाई। तब कर्मचन्द्र ने व्यग से कहा—'दोस्त! तुम्हारे हिसाब से तो मुझे कॉटा लगना चाहिये था और तुम्हे सरपेच मिलना चाहिये था। परन्तु काम हुआ है, उलटा। वस्तुतः हुआ है प्रकृति के नियमानुसार ही। सुख का फल सुख ही है और दु ख का फल दु ख।' धर्मचन्द्र ने कहा—'मित्र! पुण्य का फल भौतिक सुख है और पाप का फल दुःख। उसी के अनुसार हमे फल मिला है। यहाँ विराजमान मुनिराज तीन ज्ञान के धारक हैं। चलो, उनके पास निर्णय कराये?'

दोनो मुनि महाराज के पास पहुँचे। मुनिराज ने सचोट निर्णय दिया—'भाई कर्मचन्द्र! यदि आज तुम वेश्या के यहाँ न गये होते तो तुम्हारे ऐसे शुभ कर्म का उदय होनेवाला था कि तुम्हे राज्य प्राप्त

होता और यदि धर्मचन्द्र धर्मस्थान में जाकर, धर्मक्रिया और प्रवचन मे लीन न होता तो इसे आज शूली मिलती। काँटा लगा और शूली टली—यह है धर्म का प्रताप!' 'सो कैसे' कर्मचन्द्र ने आश्चर्य से पूछा।

मुनि महाराज ने कहा-'जब तुम गणिका के यहाँ आनन्द में लीन थे, उस समय तुम्हे यहाँ पर स्थित अपने मित्र की याद आई थी क्या?' कर्मचन्द्र ने कहा—'हाँ।' मुनिराज ने कहा—'तो अब समझ लो कि जिस समय तुम्हारी अशुभ भावना मे लीनता के कारण शुभ कर्म क्षीण हो रहा था, उस समय तुम्हे शुभ भावना में स्थित अपने मित्र की याद आने से अशुभ भाव-धारा खण्डित हो गई, जिससे शुभ कर्म थोड़ा-सा क्षय होने से बच गया और उसी का फल तुम्हे मला है। और' मुनि महात्मा ने धर्मचन्द्र से पूछा—'क्या तुम्हे यहाँ पर गणिका के यहाँ स्थित अपने मित्र की याद आई थी?' धर्मचन्द्र सविनय बोला—'हाँ' भन्ते?' मुनि महात्मा ने मुसकाते हुए कहा—'बस, तुम भी यही समझो। तुम्हारा उस ओर ध्यान जाने से तुम्हारी शुभ भाव-धारा खण्डित हो गई। जिससे तुम्हारा अशुभ कर्म क्षय होने से बच गया और तुम्हे काँटा लगा।'

दोनो मुनि महात्मा के चरणो मे श्रद्धा से विनत हो गये।

शिक्षा—(१) भले सग का फल भला है और बुरे सग का बुरा।

(२) शुभ-भावना से अशुभ कर्म क्षीण होते है और अशुभ भावना से शुभ कर्म क्षीण होते है।



इन्द्रियो के विषयों के सेवन में। वे दोनों एक-दूसरे को अपने मत की युक्ति युक्तता समझाते थे।

रात्रि का समय था। कर्मचन्द्र वेश्या के कोठे पर जाने के लिये निकला। रास्ते मे धर्मचन्द्र मिल गया। धर्मचन्द्र ने पूछा—'कहाँ जा रहे हो ?' कर्मचन्द्र ने कहा—'स्वर्ग का सुख भोगने और तुम कहाँ जा रहे हो ?' धर्मचन्द्र ने भी वैसा ही उत्तर दिया—'नरक के दु.ख और स्वर्ग के सुख दोनों को छोडने !' प्रसग तो ऐसा था कि उन दोनो में जोरो की वहस छिड़ जाती। परन्तु दोनो के पास समय नही था। अत. दोनो अपने-अपने रास्ते पर चले गये।

धर्मचन्द्र ने मुनिदर्शन किये-धर्मस्थान में जाकर और उनका रात्रि-प्रवचन सुना। वह वडा आनन्दित हुआ। उसे अपने मित्र की याद आई। उसने सोचा कि वह इस आनन्द से वंचित रह गया। वह घर लौट रहा था। रास्ते मे काँटा लगा। जिससे पाँव में सूजन आ गई। कर्मचन्द्र वेश्या के यहाँ गया। वहाँ वडा आनन्द आया उसे। उसे भी अपना मित्र अयाद आया। जब वह घर पर लौट रहा था, तब उसे जडाऊ सरपेच मिला।

दोनो मित्र मिले। अपनी-अपनी वीतक वात सुनाई। तव कर्मचन्द्र ने व्यग से कहा—'दोस्त! तुम्हारे हिसाव से तो मुझे काँटा लगना चाहिये था और तुम्हे सरपेच मिलना चाहिये था। परन्तु काम हुआ है, उलटा। वस्तुतः हुआ है प्रकृति के नियमानुसार ही। सुख का फल सुख ही है और दु ख का फल दु ख।' धर्मचन्द्र ने कहा—'मित्र ! पुण्य का फल भौतिक सुख है और पाप का फल दु:ख। उसी के अनुसार हमे फल मिला है। यहाँ विराजमान मुनिराज तीन ज्ञान के धारक है। चलो, उनके पास निर्णय कराये ?'

दोनो मुनि महाराज के पास पहुँचे। मुनिराज ने सचोट निर्णय दिया—'भाई कर्मचन्द्र ! यदि आज तुम वेश्या के यहाँ न गये होते तो तुम्हारे ऐसे शुभ कर्म का उदय होनेवाला था कि तुम्हे राज्य प्राप्त

(७८) बड़ो न तजे अपनी बड़पाई

नृप से इम नोकर पूछत है—
'तुमको जो सलाम करे जब आई।
इक हाथ उठाय सलाम करे
फिर क्यों तुम दोय हु हाथ उठाई ?'
'यदि एक हि हाथ सलाम करूँ
उनमें हममें कह अन्तर पाई ?'
इम उत्तम-मध्यम-भेद है 'सूर्य'
बड़ो न तजे अपनी बड़पाई ॥७९॥

एक राजा बडा न्यायी और नीति-सम्पन्न था। उसके चारित्र्य की महक से सारा राज्य महक रहा था। वह स्वयं विद्वान था और विद्वानों का सन्मान करता था। इतना ही नही, वह मनुष्य मात्र को सन्मान का पात्र समझता था। यद्यपि दुर्जनो को दण्ड देता था, तदपि उन्हे सुधरने का अवकाश भी देता था। इसलिए उसकी कठोर से कठोर नीति मे भी कोमलता के दर्शन होते थे। उसका अभिवादन कई लोग एक हाथ से करते थे। किन्तु वह उनके अभिवादन का प्रत्युत्तर दोनों हाथ जोड़कर देता था।

उस राजा का एक अंगरक्षक था। उसने राजा को अपने विनय से प्रसन्न कर लिया था। वह राजा के विश्वास और प्रेम का पात्र बन गया था। राजा अधिकतर उसे अपने साथ रखता था। वह लोगो के अभिवादन का प्रत्युत्तर, राजा को दोनो हाथ जोडकर, देते हुए देखता तो उसे बडा विचित्र लगता—'इतना बडा आदमी इन अदने लोगो को हाथ जोडता है।' एक दिन उससे नही रहा गया। उसने राजा से पूछ ही लिया—'राजन् ! आपको ये एक हाथ से सलाम करते हैं और आप इन्हे दोनो हाथ जोड़ते है ! ऐसा क्यों करते हैं, आप इतने वड़े आदमी होकर !'

पारस्परिक व्यवहार [७८ से १०१]

[क्रम की समझ—]

७८. बडों का छोटो के प्रति व्यवहार,
७९-८०. दुर्जनों के प्रति,

सामान्य जनके प्रति—८१. विश्वास, ८२. सौजन्य,
८३. व्यापार में दया, ८४. पीडित के प्रति सेवावृत्ति,
८५ रोगी और वैद्य, ८६. किसी को तुच्छ न समझना,

पारिवारिक—८७ कलि-परिवार, ८८. पारिवारिक वैचित्र्य,
८९. स्वार्थभरा प्रेम, ९०. नैतिकता की उपेक्षा,
९१ अनैतिकता को प्रोत्साहन, ९२–९३. पिता पुत्र,
९४. पारिवारिक एक सूत्रता, ९५. वडो के प्रति आदर,
९६–९७. स्वामी और सेवक,

प्रकीर्णक—
९८. देश जाति के प्रति,
९९ अन्य से क्या ग्रहण करें,
१००. गुरु–शिष्य,
१०१. धर्म और सघ की रक्षा,

तर्जनी बतावे पंथ कहे सुन अंगुष्ठ यों--
'कैसे नारी बड़ी होय, यांका भाग फूटा है।
थापण हजम करूं, आँख मैं बताय कर---'
कहे पंच-'सब ही में बड़ा तूं अंगूठा है' ॥८०॥

(अ)

अंगुलियों और अंगूठे मे अपने बडप्पन के विषय में परस्पर विवाद छिड गया। सब अपने आपको बडा वताने की होड कर रहे थे। जब झगडा बहुत वढ गया, तब वाद पचो के पास पहुँचा। उन्होने पचो से कहा—'आप क्षीर-नीर-सा न्याय देना।'

सबसे पहले कनिष्ठिका वोली—'भले ही मैं आकार में छोटी हूँ। परन्तु इन सबसे पदमे वडी हूँ।' पचो ने पूछा—'तुम कैसे बडी हो?' कनिष्ठिका ने कहा—'आप दुनिया के लोगो की ओर देखिये? वे शरीर के अन्य किसी हिस्से को भूषण से अलकृत करे या न करे। परन्तु मुझे तो भूषण से प्राय सजाते ही हैं। इसलिये जो भूषण से भूषित हो, वह जगत् का भूषण हो इसमे आश्चर्य ही क्या?'

अनामिका जोर से वोली—'अव रहने भी दो। भूषण पहन लेने से कोई गुणी या वडा नही वन जाता है! तुम छोटी हो सो खोटी भी हो। इसीलिये तुम्हे वच्चो ने लघुशंका-निवारण के सकेत का काम सौंप रखा है। बडी तो मैं हूँ। क्योकि लोग देव की पूजा करने के लिये मेरा ही उपयोग करते है। देवो की पूजा करनेवाला वडा नही होगा तो फिर वडा कौन होगा?'

मध्यमा उसे चुप करती हुई वोली—'कैसी वात करती हो? अपने मुँह मियाँ मिट्ठू वनने मे क्या लगता है? वच्चे तक तेरी वेइज्जती करते हैं! तुझे घृणित इशारा करने का कार्य सौप रखा है। यह तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि मैं सव से बडी हूँ। हाथ-कगन को आरसी क्या? जो प्रत्यक्ष दिखाई दे वही सत्य है।'

तर्जनी गर्ज कर वोली—'लम्बू वन जाने से कोई वडा नही वन

राजा ने मुसकाते हुए कहा—'मैं तुमसे उत्तर देने के पहले एक बात पूछता हूँ कि किसान धरती मे अनाज के कुछ दाने डालता है—किस लिये ?' अङ्गरक्षक बोला—'किसान एक से अनेक दाने पाने के लिये दाने डालता है धरती में।' राजा—'वह धरती को क्या समझता है ?' अगरक्षक—'माता'। राजा ने अपने विषय पर आते हुए कहा—'ये लोग मुझे क्या समझकर सलाम करते है ?' अगरक्षक ने कहा—'अपने अन्नदाता राजा समझकर।' राजाने उसे समझाते हुए कहा—'तुम बिलकुल ठीक कहते हो। ये मुझे बडा समझकर एक हाथ से सलाम करते है। यदि मै एक हाथ से ही उनके सलाम का जवाब दूँ तो यह समझना गलत हो जाएगा। क्योंकि बडो का यह कर्त्तव्य है कि जितना वह ले, उससे अधिक दे। इसीलिये मै उनके सलाम का उत्तर दोनो हाथ जोडकर देता हूँ।'

शिक्षा—'इम उत्तम-मध्यम-भेद है' अर्थात् जघन्य मनुष्य किमी से कुछ लेकर लौटाना नही है, मध्यम मनुष्य जितना लेता है उतना ही लौटाता है और उत्तम पुरुष जितना लेता है, उससे अधिक लौटाता है। 'बडो न तजे अपनी बडपाई' अर्थात् बडा मनुष्य निम्न मनुष्य का अपने प्रति निम्न व्यवहार पाकर, उसके प्रति अपनी सदाशयता कम नही करता है। वह उसके प्रति अपना व्यवहार अपने गौरव के अनुरूप उसके गौरव की वृद्धि करनेवाला ही रखता है।



(७९) बड़ा तू अंगूठा है

वाद हुवो अंगुली में, गई मिल पंच पास
आप-आप गुण 'सूर्य' कहत अनूठा है।
कनिष्ठा भूषण पेरे, अनामिका देव पूजे,
मध्यमा प्रत्यक्ष बड़ी, यांमे कौन झूठा है ॥

तू और अगूठा दोनों मिलकर नाक का मैल साफ करने के सिवाय और काम ही क्या करते हो ?'

अव अनामिका वोली—'तुम सबसे मैं अधिक गुणवाली हूँ। इसलिये मैं तुम सबके लिये पूज्या हूँ। मैं देवादि की पूजा करने मे, मगल-कार्य मे स्वास्तिक करने में, नन्द्यावर्तादि करने मे, मत्र-मालादि गिनने मे तथा और भी ऐसे शुभ कार्यों के करने में अग्रपद भोगती हू।'

कनिष्ठिका बोली —'मैं सवसे दूबली-पतली हूँ। परन्तु मैं गुण मै किसी से भी कम नही हूँ, वरन् अधिक ही हूँ। कान की खुजली दूर करने के कार्य मै मेरा ही उपयोग होता है। और भी बारीक कार्यों में तथा भूत-प्रेतादि को दूर करने मे प्रधान पद मैं ही भोगती हूँ।'

इस प्रकार चारो अंगुलियाँ गर्व के साथ अपने-अपने गुणो का बखान कर रही थी। उस समय अगूठा बोला—'तुम अभिमान क्यो कर रही हो ? तुम सब मेरी स्त्रियाँ हो और मै तुम्हारा पति हूँ। तुममे जो भी गुण हैं, वे मेरी सहायता के बिना तुममे प्राय नही रह सकते हैं। जैसे तुम्हारे लेखन करने, भोजन के समय ग्रास बाँधने और ग्रहण करने, गाँठ लगाने, शस्त्र चलाने, दाढी सँवारने आदि कार्यो मे मेरी सहायता चाहिये ही। इसी प्रकार कतरना, लोच करना, पीजंना, धोना, कूटना, दलना, पीसना, परोसना, काँटा निकालना, दूध दूहना, जाप करना, सख्या गिनना, केश गूँथना, शत्रु की गर्दन पकडना, तिलक करना आदि कार्यो मे मै ही प्रधान हूँ। और तो और पर देवाधिदेव तीर्थंकर भगवान के बाल्यावस्था मे उनकी वृद्धि के लिये, देवों के द्वारा अमृत का सचार मुझमे ही किया जाता है अर्थात् वे भगवान् मेरे माध्यम से ही अमृत-पान करते है। वोलो, अव मैं प्रधान हूँ या नही।'

सभी अगुलियो ने अगूठे की वात मानी और परस्पर सम्प करके, उसकी पत्नियो के रूप से रही । जिससे सभी का सुखपूर्वक निर्वाह होने लगा। इसलिये सम्प रखने मे ही कार्य की शोभा होती है।

जाता है। लोगो मे चिढाने के लिये तुम्हारा ही उपयोग होता है। वडी तो मै ही हू। मैं भूले हुए पथिको को राह दिखाती हूँ।'

अंगूठा गुर्राकर वोला—'अहो! वडी वनने चली है, लोगों की तर्जना करनेवाली! तुम कोई भी वडी नही वन सकती हो। तुम्हारे भाग्य फूटे है। क्योकि तुम स्त्रियाँ हो। स्त्रियाँ वडी कैसे हो सकती हैं? मैं पचो के तिलक करता हूँ और चाहूँ तो लोगो की पूँजी हजम कर सकता हूँ। कहो तो तुमको और इन सवको अगूठा वता सकता हूँ?'

पचो ने डरते हुए कहा—'अच्छे भाई अगूठा! तुम्ही सवसे वड़े हो!' पचो को डर था कि कही यह हमे ही अंगूठा न वता दे!

वस्तुत निर्लज्ज से सभी डरते है।

(आ)

श्री रत्न शेखर सूरिकृत 'श्राद्ध विधि प्रकरण' ग्रन्थ की टीका मे पंचाअगुलियो का सवाद इस प्रकार दिया गया है—

अगूठे के समीप की पहली तर्जनी अगुली वोली—'मैं सव मे प्रधान हूँ। चित्रकला, लेखनकला आदि कलाओ और अन्य कार्यो मे भी मेरी प्रमुखता रहती है। सकेत से वस्तुएँ मेरे द्वारा ही वताई जाती हैं। भूले हुए पथिको को मार्ग वताने मे मेरा ही उपयोग होता है। निशानी करने मे और वर्जना-तर्जना मे मैं ही अग्रेसर रहती हूँ।'

तव मध्यमा वोली—'वाह री मूर्खे! इससे तू कैसे गुणवती हो गई? मेरे गुण भी तो सुन। वीणा और सितार के वजाने मे, सारगी सितार के तारो के मिलाने मे और अय भी ऐसे उत्तम कार्यो मे मेरी ही मुख्यता रहती है। चुटकी वजाकर अनर्थ के कार्य अटकाने या भूत-दोषादि छल को दूर करने और मुद्रादि रचना को दिखलाने मे मेरी ही प्रधानता है। तेरे वतलाये हुए चिह्नो से उत्पन्न हुए दोषो को रोकने के लिये वतलाये जानेवाले चिह्नो मे मेरी ही आगेवानी रहती है। तू व्यर्थ की वडाई क्यो हाँकती है? तुझमे अवगुण के सिवाय है ही क्या?

तू और अंगूठा दोनों मिलकर नाक का मैल साफ करने के सिवाय और काम ही क्या करते हो ?'

अब अनामिका बोली—'तुम सबसे मैं अधिक गुणवाली हूँ। इसलिये मैं तुम सबके लिये पूज्या हूँ। मैं देवादि की पूजा करने मे, मगल-कार्य मे स्वास्तिक करने में, नन्द्यावर्तादि करने में, मंत्र-मालादि गिनने मे तथा और भी ऐसे शुभ कार्यों के करने में अग्रपद भोगती हू।'

कनिष्ठिका बोली—'मैं सबसे दूबली-पतली हूँ। परन्तु मैं गुण मै किसी से भी कम नही हूँ, वरन् अधिक ही हूँ। कान की खुजली दूर करने के कार्य मैं मेरा ही उपयोग होता है। और भी बारीक कार्यों में तथा भूत-प्रेतादि को दूर करने में प्रधान पद मैं ही भोगती हूँ।'

इस प्रकार चारो अगुलियाँ गर्व के साथ अपने-अपने गुणो का वखान कर रही थी। उस समय अगूठा बोला—'तुम अभिमान क्यो कर रही हो ? तुम सब मेरी स्त्रियाँ हो और मै तुम्हारा पति हूँ। तुममे जो भी गुण हैं, वे मेरी सहायता के बिना तुममे प्राय नही रह सकते हैं। जैसे तुम्हारे लेखन करने, भोजन के समय ग्रास बाँधने और ग्रहण करने, गाँठ लगाने, शस्त्र चलाने, दाढी सँवारने आदि कार्यो मे मेरी सहायता चाहिये हो। इसी प्रकार कतरना, लोच करना, पीजना, धोना, कूटना, दलना, पीसना, परोसना, काँटा निकालना, दूध दूहना, जाप करना, सख्या गिनना, केश गूँथना, शत्रु की गर्दन पकडना, तिलक करना आदि कार्यो मे मै ही प्रधान हूँ। और तो और पर देवाधिदेव तीर्थंकर भगवान के बाल्यावस्था मे उनकी वृद्धि के लिये, देवो के द्वारा अमृत का सचार मुझमे ही किया जाता है अर्थात् वे भगवान् मेरे माध्यम से ही अमृत-पान करते है। बोलो, अब मैं प्रधान हूँ या नही।'

सभी अगुलियो ने अगूठे की बात मानी और परस्पर सम्प करके, उसकी पत्नियो के रूप से रही। जिससे सभी का सुखपूर्वक निर्वाह होने लगा। इसलिये सम्प रखने मे ही कार्य की शोभा होती है।

शिक्षा—निर्लज्ज दुर्जनों को ज्यादा नहीं छेड़ना चाहिये। इसीलिये नीतिकारों ने कहा है—

दुर्जनं प्रथमं वंदे, सज्जनं तदनन्तरम्।
मुख-प्रक्षालनात् पूर्वं, गुदा-प्रक्षालनं यथा ।।

---

(८०) यह आठ आना अब आप लियो (सवैया)

नर एक के जूते लगाय दई,
नृप आठ आना तस दंड कियो।
रुपया तिन एक निकाल लई,
झट जूत से राय को मार दियो ।।
'अब दीजिये आठ आना इनको,
यह आठ आना अब आप लियो।'
'मुनिसूर्य' कहे नर नीच ही से
टल-दूर सदा रहियो-वसियो ।।८१।।

धनचन्द्र बड़ा घमण्डी था। उसके पिता के पास काफी धन था। उसके मरने के बाद वह धन उसके हाथ में आया। उसमें विवेक की भी कमी थी। धन हाथ में आते ही वह अपने आपको एक बहुत बड़ा बादशाह समझने लगा। बढ़िया खाना, फैशन से रहना, अकड़कर चलना और दूसरे को तुच्छ समझना-यही उसकी वृत्ति थी।

एक बार वह सज-धजकर, अकड़ता हुआ बाजार मे जा रहा था। वह कभी-कभी अपनी अकड़ मे किसी के पैर को कुचलता चलता तो कभी किसी को टक्कर मार देता। वह सामने से आते हुए अपने ही जैसे किसी सज्जन से जान-बूझकर टकरा गया। उन सज्जन ने कहा—'जरा देखकर चला करो।' उसने ऐंठते हुए कहा—'अन्धे बनकर तो तुम चलते हो, मैं नहीं।' उन सज्जन को क्रोध आ गया। वे झल्लाकर

बोले—'एक तो जान-बूझकर टकराये और ऊपर से मुझे अंधा बना रहे हो ! कैसे बेवकूफ हो । धनचन्द्र जोर से चिल्लाया-तुम बेफकूफ ! तुम्हारा बाप बेवकूफ ! क्या समझ रखा है तुमने ?' वह व्यक्ति बोला—'उलटा चोर कोटवाल को डाँटे । मुँह सम्हाल कर बोलो ।' धनचन्द्र ने आव देखा न ताव ! पाँव से जूता निकाला और उसके सिर पर जोर से मार कर बोला—'लो, चखो मेथीपाक ।' उस व्यक्ति ने उसका हाथ पकड लिया और उसे घसीट कर राज-दरवार मे ले गया ।

उसने राजा से शिकायत की । राजा ने सारी बात शान्ति से सुनी । राजा ने इसे स मान्य झगडा समझकर, धनचन्द्र को आठ आने का दण्ड दिया । धनचन्द्र ने अपनी जेब से एक रुपया निकाला और राजा के पास पहुँच गया । अपने पैर से जूता निकालकर, एक जूता राजा को टिका दिया और रुपया राजा के पास फेककर वह बोला—'आठ आने इस महाशय को दे देना और आठ आने आप ले लेना । हिसाव वरावर हो जायेगा ।' राजा क्रुद्ध होकर, सैनिक से सकेत करते हुए बोला—'ले जाओ इन्हे । ये महानुभाव जेल मे वन्द रहने योग्य है ! वाहर रहेगे तो और उत्पात करेंगे ।'

शिक्षा—(१) निम्न प्रकृति के लोगो से वाद-विवाद नही करना चाहिये ।
(२) 'नर नीच…… वमियो' अर्थात् नीच मनुष्यो से टलकर रहना चाहिय और निवास भी उनसे दूर ही करना चाहिये ।



(८१) मूर्ख गिनकर लाओ

नृप ने सौदागर को दिये पैले लाख रुपै—
'घोड़ा लेय जल्द आना' कहे—'झट आऊँगा' ।
नृप कहे–'मत्री से यो–'मूर्ख गिनकर लाओ
नहितर सजा होगी, फाँसी पै चढ़ाऊँगा' ॥

शाह-नाम पैले लिखा, पूछे शाह–'कैसे लिखा ?'
'विना जाने रुपै दिये याते मै गिनाऊँगा'।
'यदि घोड़ा लाय देवे ? मूर्ख कैसे रहूं ?' सूर्य
'आप नाम काटकर, ताहि को लिखाऊँगा' ।।८२।।

किसी युग में घोडो का वहुत मूल्य था। क्योकि राजाओ की सेना मे एक दल अश्वारोहियो का होता था। अत राजा लोग भी घोडो के वहुत शोकीन होते थे। ऐसा ही घोडो का शोकीन एक राजा था। उसे स्वय भी अश्वारोहण मे रुचि थी। वह वढिया से वढिया घोडो को ढूंढता रहता था। कई व्यापारी भी वहाँ अश्वो के विक्रय के लिये आते थे।

एक बार घोडो का एक सौदागर उस राज्य मे आया परन्तु उस समय उसके पास एक भी घोडा नही था। वह राजा के पास आया। राजा से बातचीत की। घोडो के लक्षण आदि की चर्चा चलाई। राजा को लगा कि मेरे अश्व-परीक्षा-ज्ञान मे वहुत कुछ वृद्धि हुई। सौदागर ने एक श्रेष्ठ जाति के अश्व का वर्णन किया। राजा ऐसे अश्व को पाने के लिये बहुत लालायित हो गया। उसने कहा—'मुझे भी ऐसा अश्व चाहिये।' सौदागर ने कहा—'कोई वडी वात नही। मैं आपके लिये ऐसा अश्व ला सकता हूँ। किन्तु....' राजा ने उत्सुकता से पूछा—'किन्तु क्या ?' सौदागर ने राजा के मुखपर दृष्टि गड़ाते हुए कहा—'किन्तु उसके लिये लाख रुपये की आवश्यकता होगी ?' राजा ने हर्षित होकर कहा—'वस इतनी ही वात है न ! जाओ, ले जाओ लाख रुपये और अश्व ले आओ।' सौदागर वड़ा प्रसन्न होकर बोला—'हाँ, महाराज ! जल्दी ही आऊँगा।'

वह एक लाख रुपये लेकर रवाना हो गया।

एक वार राजा ने तरग मे आकर, मत्री से कहा–'मत्री! राज्य मे कितने मूर्ख है—इसकी गिनती कर लाओ।' मंत्री को यह वृथा कार्य अच्छा नही लगा। उसने अरुचि से कहा—'महाराज! मूर्खो

की गिनती ?' 'हाँ, मूर्खों की गिनती'–राजा को मन्त्री के रुखे रुख से कुछ तैश आ गया अत वह आदेश के स्वर मे बोला–'हाँ' ! सभी मूर्खों की गिनती होना चाहिये। नही, तो तुम्हे फाँसी मिलेगी।' मत्री ने आज्ञा स्वीकार की।

दूसरे दिन मन्त्री मूर्खों के नाम की लिस्ट लेकर आया और उसे राजा के हाथ मे थमा दी। राजा ने देखा कि सबसे पहले उसी का नाम लिखा है। राजा ने आश्चर्य से पूछा––'इसमे मेरा भी नाम ?' मन्त्री ने अति सक्षिप्त उत्तर दिया–'हाँ !' राजा ने पूछा––'क्यो ?' मन्त्री ने स्पष्टीकरण दिया–'एक तो आपने सौदागर को बिना जान-पहचान के लाख रुपये दे दिये। क्या वह घोड़ा लाकर देगा ! दूसरा; आपने मुझे यह वृथा काम सौंपा।' राजा ने कहा––'यदि वह घोडा लाकर दे देगा तो फिर इस स्थान पर किसका नाम लिखोगे ?' मत्री ने चट उत्तर दिया–'उस सौदागर का–जो लाभ के अवसर को यो ही खो देगा !' राजा ने लिस्ट फाड़कर फेक दी।

शिक्षा—(१) किसी पर बिना-जान-पहचान के सहसा विश्वास करना योग्य नही-यह हुई ससार की बात। धार्मिक दृष्टि से देव, गुरु और धर्म की परीक्षा किये बिना उनपर विश्वास करना योग्य नही है।

(२) ससार मे अवसर का लाभ नही उठानेवाला मूर्ख कहलाता है। इसी प्रकार अवसर होते हुए भी धर्माराधना नही करनेवाला भी मूर्ख ही है।



(८२) ऊँचा नीचे आता है

बैठो नर रेंट पै पहरी कोट-पतलून–
घड़ी-छड़ी-बूट, जाने मेरे जैसा सूत ना।
नीचे एक वृद्ध बैठो, तापै पान-पीक डाले,
नम्रताई करी वृद्ध, आई समझूत ना॥

तब वृद्ध ऊँचो आयो, दाव जान एकदम–
मूतने लग्यो है तभी, युवा करी सूचना।
'वस्त्र हो खराब मेरे' सुनी वृद्ध 'सूर्य' कहे–
'तुझे आया थूकना तो मुझे आया मूतना' ॥८३॥

मेला देखने आये थे--जवान, बच्चे, बूढे, भील, साहूकार, बाबू आदि। भाँति-भाँति के लोग थे मेले मे। कही खिलौने की दुकाने थी तो कही आभूषणों की ! कही मिठाइयो की दुकानो पर मिठाई वाले मिठाइयाँ-नमकीन तोल रहे थे तो कही कपडो की दुकानो पर कपड़े जाँचे-परखे जा रहे थे। लोग अपनी-अपनी पसन्द की चीजे ले रहे थे।

एक तरफ मेले का खास आकर्षण था झूले। कई प्रकार के झूले थे। उनमे बैठकर लोग झूलने का मजा ले रहे थे। झूले की चर्र-चूँ की आवाजऔर लोगो की खिलखिलाहट-किलकारियाँ के मिलने से एक अजीव ही समाँ बंध रही थी। झूलो मे सभी प्रकार के लोग झूल रहे थे।

एक अपटुडेट बाबू भी झूले मे सवार थे। वह समझ रहे थे– मेरे जैसा सपूत कोई नही। उनके पेंट-बूट की छटा ही निराली थी। हाथ मे लगी हुई घडी को बारबार देख रहे थे। मुँह मे पान का बीडा दबाये हुए थे। वे अपने को सबसे निराला ही समझ रहे थे। झूले के ऊपर के पलडे पर वे बैठे हुए थे। कुछ क्षण के लिये झूला ठहर गया। नीचे के पलड़े पर एक वृद्ध सवार हुए।

बाबू के मुँह मे पान का पीक भर रहा था। वे थूकने को उद्यत थे। वृद्ध की दृष्टि ऊपर गई तो उसने नम्रता से कहा–'देखो, बाबूजी ! अभी थूँकना मत। नही तो, हमारे कपड़े खराब हो जाएँगे।' पर बाबूजी ने नही सुनी–उसकी बात और उस वृद्ध पर पीक थूँक दिया। फिर बोले—'क्या किसी का थूँकना भी रुक सकता है ?'

अब ऐसा मौका आया कि वृद्ध का पलडा ऊँचा था और बाबू का नीचे, वृद्ध ने आव देखा न ताव। उसने बाबू पर पेशाब

कर दी। बाबू नाराज होकर बोले—'कितने बेशर्म हो! मेरे कपड़े खराब कर दिये।' वृद्ध बोला—'बाबूजी! आपका थूँकना नही रुक सकता है तो मेरा मूतना कैसे रुक सकता है? मैं तो वृद्ध आदमी हूँ।'

शिक्षा—संसार रहँट के झूले के समान है। इसमे कोई साधन सम्पन्न होता है तो कोई दीन-हीन। परन्तु कभी रक राव हो जाता है तो राव रक। अत अभिमान नही करना चाहिये और ऐश्वर्य के नशे मे चूर होकर, किसी पर अत्याचार नही करना चाहिये।



(८३) ऐसी दया तेरे उर क्यों ना आई

सोनैया करोड़ नृप मांगता था सेठजी से
देवे नहि ताको दियो खोड़े मे रखाई है।
'घर-बार-पुत्र-नार बेचकर लेवें कर्ज'
नम्रताई करी मास अवधि दिलाई है॥
सेठ एक दीन पास, कर्ज रुपै मांगे शत,
नहि देवे, मारे ताको, कारागृह ठाई है।
लूटे ताको नृप 'सूर्य' कहे—'मैने दया करी
ऐसी दया तेरे उर, क्यों ना अब आई है'॥८४॥

एक सेठ बडा दुखी हो रहा था। उसे व्यापार मे कुछ भीड आ गई थी। वह बडी तग हालत मे आ गया। इज्जत जाने का समय आ रहा था। राजा के पास जाकर, उसने बात सुनाई। राजा ने उसे मदद की। सेठ का सब कर्ज चुका दिया। उसने राजा का उपकार माना और कहा कि आपका कर्ज मै योग्य समय मे चुका दूँगा।

समय बीतता गया। सेठ की स्थिति सुधरती गई। राजा के एक करोड़ सोनैये उसे देने थे। राजा की ओर से ऋण चुकाने की माग होने लगी। परन्तु सेठ उससे कुछ दिन और लाभ उठा लेना

चाहता था। अत वह किस्तो मे राज को-ऋण नही चुका रहा था। राजा की ओर से माग होती रही और वह सुना-अनसुना करता रहा अन्त मे एक दिन राजा क्रुद्ध हो गया और उसने सेठ को कारागृह मे डलवा दिया। उसने राजा से नम्रता-पूर्वक निवेदन किया—'मै आपके ऋण का भार जरा भी रखना नही चाहता हूँ। मै पाई-पाई चुका दूँगा। भले, मैं घर-वार, पुत्र, स्त्री आदि को वेचकर भी ऋण चुकाऊँगा। परन्तु मुझे कुछ अवधि चाहिये।' राजा ने उसे एक मास की अवधि दी। धीरे-धीरे सेठ ने राजा का वहुत-कुछ कर्ज अदा कर दिया और थोडा-वहुत शेप रह गया।

सेठ एक गरीव मनुष्य से सौ रुपये मांगता था। वह उघराणी करने गया। उसने कहा—सेठजी ! अभी मेरे पास रुपये नही है। मैं आपको रुपये फिर दे दूँगा।' परन्तु सेठ गुस्से मे आ गया। उसने उसे मारा-पीटा और जेल मे विठा दिया। यह वाद राजा के पास पहुँचा। राजा ने सारी वाते जानी। राजा ने सेठ से कहा—'इसे कुछ समय देना चाहिये।' सेठ ने आवेश से कहा—'नही राजन् ! मुझे रुपयो की अति आवश्यकता है।' राजा ने सेठ को समझाया। परन्तु जव वह नही माना तो राजा ने कहा—'तेरे कर्ज को अदा करने के लिये तूने मुझसे दया चाही थी और मैंने तुझपर दया की थी। परन्तु तू कितना निप्ठुर है! तेरे हृदय मे इस दोन के लिये दया क्यो नही आ रही है ? वस्तुत तू दया का पात्र नही है।'

राजा ने सेठ की सम्पत्ति को अपने कर्ज के वदले मे ले ली—उसे लूट लिया।

शिक्षा—(१) व्यापार मे मनुष्य के हृदय मे कोमलता होनी चाहिये।

(२) अपने प्रति जैसा दया के व्यावहार की चाह रखी जाती है वैसा, ही व्यवहार अन्य के प्रति भी करना चाहिये।



(८४) ऐसी आप कीजिये उदारता

वार-द्वार दीन-स्वर मांगता था दुःखी नर,
'निकालो' ठाकुर कहे—'काहे को पुकारता ?'
उदास होय चल्यो; कभी ठाकुर शिकार गयो,
प्यास लगी, झूँपी देख, पास जा उचारता।
आदर से अन्न-जल दियो, वह खुश हुवो,—
'मांग देऊँ' कहे—'नहि लेन मे विचारता'।
कहे 'सूर्य'—'वही हू मै, द्वार से निकाला मार,
मैने कीनी ऐसी आप कीजिये उदारता'।।८५।।

एक देहाती एक बडे ग्राम मे पहुँच गया। वहाँ उसका कोई भी परिचित नही था। उसे भूख लग रही थी और प्यास के मारे कठ सूख रहा था। उसने एक वडा महल जैसा मकान देखा। उसने सोचा, कि 'इस मकान का मालिक कोई वडा आदमी होगा और जैसा वडा यह मकान है वैसा ही वडा उसका दिल होगा। यहाँ से यदि मुझे कुछ छाछ मिल जाय तो भूख और प्यास दोनो से राहत मिले।' यह सोचकर वह मकान मे प्रविष्ठ हुआ।

वह मकान ठाकुर साहब का था। ठाकुर साहव दरीखाने मे वैठे हुए थे। आस पास कुछ और व्यक्ति भी बैठे हुए थे। गपशप चल रही थी। गर्मी का मौसम था। अत. सेवक पखा झल रहा था। शीतल पेय पदार्थ का उपयोग हो रहा था। देहाती को अन्दर प्रवेश करते ही ठाकुर साहव दिखाई दिये। वह खँखारकर गले को साफ करते हुए वडी कठिनाई से वोला---साहव! यदि कुछ छाछ हो तो मिल जाय। वडी प्यास और भूख लगी है!' ठाकुर साहव उसकी बेअदवी से नाराज हो गये। वे कडकते हुए बोले—'नालायक! किसको पूछकर भीतर आया। वदतमीज, कही का! निकल जा यहाँ से!'

चाहता था। अत वह किस्तो मे राज को-ऋण नही चुका रहा था। राजा की ओर से माग होती रही और वह सुना-अनसुना करता रहा अन्त मे एक दिन राजा क्रुद्ध हो गया और उसने सेठ को कारागृह मे डलवा दिया। उसने राजा से नम्रता-पूर्वक निवेदन किया—'मै आपके ऋण का भार जरा भी रखना नही चाहता हूँ। मै पाई-पाई चुका दूँगा। भले, मै घर-वार, पुत्र, स्त्री आदि को वेचकर भी ऋण चुकाऊँगा। परन्तु मुझे कुछ अवधि चाहिये।' राजा ने उसे एक मास की अवधि दी। धीरे-धीरे सेठ ने राजा का वहुत-कुछ कर्ज अदा कर दिया और थोडा-वहुत शेप रह गया।

सेठ एक गरीब मनुष्य से सौ रुपये मागता था। वह उघराणी करने गया। उसने कहा—सेठजी! अभी मेरे पास रुपये नही है। मैं आपको रुपये फिर दे दूँगा।' परन्तु सेठ गुस्से मे आ गया। उसने उसे मारा-पीटा और जेल मे विठा दिया। यह वाद राजा के पास पहुँचा। राजा ने सारी वाते जानी। राजा ने सेठ से कहा—'इसे कुछ समय देना चाहिये।' सेठ ने आवेश से कहा—'नही राजन्! मुझे रुपयो की अति आवश्यकता है।' राजा ने सेठ को समझाया। परन्तु जव वह नही माना तो राजा ने कहा—'तेरे कर्ज को अदा करने के लिये तूने मुझसे दया चाही थी और मैंने तुझपर दया की थी। परन्तु तू कितना निष्ठुर है! तेरे हृदय मे इस दीन के लिये दया क्यो नही आ रही है? वस्तुत तू दया का पात्र नही है।'

राजा ने सेठ की सम्पत्ति को अपने कर्ज के वदले मे ले ली—उसे लूट लिया।

शिक्षा—(१) व्यापार मे मनुष्य के हृदय मे कोमलता होनी चाहिये।

(२) अपने प्रति जैसे दया के व्यावहार की चाह रखी जाती है वैसा, ही व्यवहार अन्य के प्रति भी करना चाहिये।



(८४) ऐसी आप कीजिये उदारता

वार-द्वार दीन-स्वर मांगता था दुःखी नर,
'निकालो' ठाकुर कहे–'काहे को पुकारता ?'
उदास होय चल्यो; कभी ठाकुर शिकार गयो,
प्यास लगी, झूँपी देख, पास जा उचारता।
आदर से अन्न-जल दियो, वह खुश हुवो,–
'मांग देऊँ' कहे–'नहि लेन मे विचारता'।
कहे 'सूर्य'–'वही हू मैं, द्वार से निकाला मार,
मैने कीनी ऐसी आप कीजिये उदारता' ॥८५॥

एक देहाती एक बड़े ग्राम मे पहुँच गया। वहाँ उसका कोई भी परिचित नही था। उसे भूख लग रही थी और प्यास के मारे कठ सूख रहा था। उसने एक वडा महल जैसा मकान देखा। उसने सोचा, कि 'इस मकान का मालिक कोई वडा आदमी होगा और जैसा वडा यह मकान है वैसा ही वडा उसका दिल होगा। यहाँ से यदि मुझे कुछ छाछ मिल जाय तो भूख और प्यास दोनो से राहत मिले।' यह सोचकर वह मकान मे प्रविष्ठ हुआ।

वह मकान ठाकुर साहब का था। ठाकुर साहव दरीखाने मे बैठे हुए थे। आस पास कुछ और व्यक्ति भी वैठे हुए थे। गपशप चल रही थी। गर्मी का मौसम था। अत सेवक पखा झल रहा था। शीतल पेय पदार्थ का उपयोग हो रहा था। देहाती को अन्दर प्रवेश करते ही ठाकुर साहव दिखाई दिये। वह खँखारकर गले को साफ करते हुए वडी कठिनाई से वोला—'साहव! यदि कुछ छाछ हो तो मिल जाय। वडी प्यास और भूख लगी है!' ठाकुर साहव उसकी वेअदवी से नाराज हो गये। वे कडकते हुए बोले–'नालायक! किसको पूछकर भीतर आया। वदतमीज कही का! निकल जा यहाँ से!'

वह देहाती बहुत गिड़गिड़ाया। पर ठाकुर साहब ने उसे धक्के दिला-कर बाहर निकलवा दिया।

एक बार ठाकुर साहब शिकार के लिये जंगल मे गये। शिकार के पीछे घोड़ा दौड़ाते हुए वे दूर निकल गये। साँझ होने आई थी। वे पसीने से तर हो रहे थे। प्यास अलग लग रही थी ठाकुर सा. व्यथित हो रहे थे। उन्हे दूर पर एक झोंपड़ी दिखाई दी। उन्होने उधर घोड़ा बढ़ाया और झोंपड़ी के पास आकर पुकारा। उससे एक किसान बाहर निकला। किसान ने ठाकुर साहब का स्वागत किया। उन्हे घोड़े से नीचे उतारा और सुराही से मिट्टी के प्याले मे ठंडा जल उँडेल कर पिलाया। घोड़े का सामान उतारा। घोड़े को खूँटे से बाँधा और उसे भी जल पिलाकर घॉस डाली। ठाकुर ने कहा—'मुझे भूख लग रही है।' देहाती सकोच से बोला—'आपके लायक तो भोजन यहाँ नही हैं। पर सुबह मे जब घर से खेत की इस मड़ैया पर आया था तब मक्का की दो रोटियाँ लेता आया था। उसमे से एक रोटी बची है!' उसने वह रोटी ठाकुर के सामने रख दी। ठाकुर को वह रोटी बहुत स्वादिष्ट लगी।

रात हो गई थी। किसान ने अपनी चटाई पर ठाकुर साहब को सुलाया। उसके पैर दबाये और वह उनकी सुरक्षा के लिये सारी रात पहरा लगाता रहा। प्रात काल ठाकुर साहब अपने ग्राम जाने के लिये घोड़े पर सवार हुए। किसान कुछ दूर पहुँचाने के लिये आया। ठाकुर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होने उसे कुछ मागने का कहा। किसान ने कहा—'मुझे कुछ भी नही चाहिये।' जब ठाकुर ने बहुत आग्रह किया तब किसान ने कहा—'ठाकुर साहब! आप मुझे पहचा-नते हो?' ठाकुर ने उसकी ओर निर्निमेष देखते हुए कहा—,हाँ, तुम्हे कही देखा तो है?' किसान बोला—'ठाकुर साहब! मैं वही देहाती हूँ, जिसे आपने अपने यहाँ से धक्के मारकर निकलवाया था।' ठाकुर साहब उसे पहचान कर लज्जा के मारे धरती मे गड़-से गये। किसान

ने कहा —'मैं आपको लज्जित करने के लिये अपनी पहचान नही दे रहा हूँ। आप मुझे मांगने का कह रहे है तो मैं आपसे यही मागता हूँ कि जैसा दुर्व्यवहार आपने मेरे साथ किया, वैसा और किसी के साथ मत करना ?' ठाकुर साहब कुछ भी नही बोल सके।

शिक्षा—(१) किसी के साथ बुरा व्यवहार नही करना चाहिये।

(२) अपने प्रति बुरा व्यवहार करनेवालो के प्रति भी अच्छा व्यवहार ही करना चाहिये।

—·—:—

(८५) इसे आँख में लगा लो

कहे एक हकीम से 'काची रोटी खाई कल,
दुखे मेरा पेट, दीजे हाजमा सुधार के।'
सुरमां दिया, कि-'इसे आँख में लगा लो' देख-
कहै रोगी-'नैन स्वस्थ, दीजिये विचार के।।'
'आँख ठीक होती तो न खाते कच्ची रोटी कभी,
यातें दिया सुरमां है, आँख में विगार के।'
काची रोटी खाते न तो पेट में न दर्द होता'
'सूर्य' कहै—भान कहाँ होवत गिवाँर के ?।।८६।।

एक व्यक्ति के पेट मे दर्द हो रहा था। उसने दर्द का कारण जानने के लिये सोचा तो उसे लगा कि कल मैंने कच्ची रोटी खाली, इसीलिये पेट मे दर्द हो रहा है। वह पेट पकड़कर, दौडा-दौडा हकीमजी के पास आया। हकीमजी ने पूछा-'क्यों भाई ! क्या बात है ?' उसने कराहते हुए कहा—'अरे हकीमजी ? क्या कहूँ ? मेरे पेट मे बहुत दर्द हो रहा है। कल मैंने कच्ची रोटी खा ली थी। इससे मेरा हाजमा विगड़ गया है। मेरा हाजमा सुधर जाय-ऐसी दवा दीजिये।'

हकीम ने विचार किया-यह वहमी जीव लगता है। फिर भी

हकीमजी ने उसे ठीक तरह से देखा-भाला। ऐसी कोई खास बात थी नही। हकीमजी को जरा-जरा-सी बात के लिये तग करनेवाले कई लोग आया करते थे। रोगी जल्दी कर रहा था—'आप मेरी ओर कुछ ध्यान नही दे रहे है। मुझे जल्दी ही दवा दीजिये न।' हकीम ने उसके हाथ मे सुरमे की शीशी पकडा दी और कहा—'इसे आँखो मे लगा लो!' रोगीने कहा—'मेरा तो पेट दुःख रहा है!' हकीमजी ने कहा 'हाँ! मुझे मालूम है। पर आँखो मे यह सुरमा लगा लो!' रोगी आश्चर्य से बोला—'मेरी आँखे तो अच्छी है। आँखो और पेट मे क्या सम्बन्ध है?' हकीमजी ने मुसकाते हुए कहा—'अरे भाई! सम्बन्ध है। तुम्हारी आँखे ठीक होती तो तुम कच्ची रोटी नही खाते और कच्ची रोटी नही खाते तो पेट मे भी दर्द नही होता। इसलिये मुझे लगता है कि तुम्हारी आँखो मे ही बिगाड है।'

यह बात सुनकर वह व्यक्ति भडक गया और नाराज होता हुआ वहाँ से चला गया।

शिक्षा—(१) व्यक्ति को खान-पान मे विवेक रखना चाहिये।

(२) बात-बात मे शकाशील नही बनना चाहिये।

(३) 'भान....गिवाँर के' अर्थात् जो मनुष्य विचारशील नही होता है वही वहमी होता है। वहमी मनुष्य को अनेक प्रकार के विकल्प सताया करते है और जो विकल्पो के चक्र मे फँसा हुआ होता है वह अपना भान भूल जाता है। वस्तुत सही ढग से विचार नही करने वाला मनुष्य बेभान ही होता है।



(दोहा)

इक्षु साथ कीटक पिले, रहता जो सुख मान।
ऐसे जग-सुख जानिये, आखिर दुःख की खान॥

(८६) तुम्हें देख शूली मिली

नृप सुन्यो–'एक नर, ताको मुख प्रात देखे
मिले नहीं अन्न' सत्य कैसे ये पिछानिये।
सवेरा बुलाय झट, राय मुख देख्यो ताको,
सारे दिन भूखे रहे, इत्तिफाक जानिये।।
दुष्ट जान शूली दंड देवे, अपराधी कहे–
'मुझे देख भूखे रहे, बात यही आनिये।
तुम्हें देख शूली मिली, यामें सजावार कौन ?'
कहे 'सूर्यमुनि' किसी को न तुच्छ मानिये ॥८७॥

राजसभा मे एक बार चर्चा चल पडी कि किसी का मुँह अच्छा होता है तो किसी का बुरा। प्रात काल किसी का मुँह देखने पर सारा दिवस आनन्द में व्यतीत होता है तो किसी का मुँह देखने से सारे दिन भोजन ही नही मिलता । जब राजा ने इस विषय मे अविश्वास प्रकट किया, तब एक उमराव ने कहा—'यदि आपको विश्वास न हो तो अमुक सेठ का मुँह प्रात काल मे देख ले। आपको इस बात की सत्यता का अनुभव हो जाएगा। मै तो कई बार भुगत चुका हू।'

राजा ने उस सेठ को रात मे अपने महल मे बुला लिया और किसी बहाने से उसे अपने पास ही रोक लिया । सवेरे पहले उसका ही मुँह देखा। सेठ अपने घर रवाना हो गया। अकस्मात् उस दिन ऐसा हुआ कि कई उलझन भरी बाते राजा के सामने आई। उन्हे सुलझाने मे ही सारा दिन बीत गया। राजा कार्य मे ऐसा उलझा रहा कि उस दिन वह भोजन कर ही नही सका । राजा को सुबह मे सेठ के मुँह को देखने की बात याद आई। उसे सेठ पर बडा क्रोध आया। 'अरे ! इस दुष्ट का मुँह देखने पर कितने लोगो को भूखा रहना पडता होगा ? इसे कडी सजा मिलनी चाहिये।'

राजा ने सेठ को बुलाकर सजा सुना दी-शूली की। सेठ स्तब्ध रह गया। उसने साहस करके पूछा—'स्वामिन् ! मुझे यह तो पता लगे कि मेरा अपराध क्या है ?'

राजा ने क्रोध से तमतमाते हुए कहा—'अपराध को पूछते हो ! तुम्हारा मुँह बहुत ही खराब है। तुम्हारा मुँह देखने के कारण आज पूरे दिन मुझे भूखा रहना पडा। न जाने कितनों को इस प्रकार भूखा रहना पडता होगा !'

सेठ चतुर था। उसने नम्रता से कहा—'स्वामिन् ! आपका अनुभव सत्य ही होगा। परन्तु मुझे भी अनुभव हुआ है। क्या उसे कहने की इजाजत होगी !'

राजा ने आश्चर्य से कहा—'क्या है तुम्हारा अनुभव ?' सेठ ने निर्भयता से कहा—'राजन् ! मेरा मुँह देखने से आपको भोजन नही मिला ! परन्तु आज मैने सुबह मे जिसका मुँह देखा, वह और भी खराब लगता है। उसी मुख के दर्शन से आज मुझे शूली मिल रही है !'

राजा लज्जित हो गया और सेठ की सजा माफ कर दी।

शिक्षा—'किसी को न तुच्छ मानिये' अन्ध विश्वास से किसी को भी तुच्छ नही समझना चाहिये। जो दूसरे को तुच्छ समझता है, उससे उसकी स्वय की तुच्छता प्रकट होती है।



(८७) ऐसी खूबी कलि-परिवार की

पुत्र थाल खीर जादा धरी देख कंथ कहे—
पति तेरा मै कि यह ? रांड ! बदकार की'।
पुत्र सुन कहे—'माता मेरी कि तुम्हारी यह ?
तुम्हें जादा कैसे देवे, बात कही खार की'॥

झुंझला के नारी कहे—'क्या हो मेरे पुत्र तुम ?
मेरा सुत जांको देऊं, वात नां विचार की' ।।
वानी के विचार विना कैसे गृही सुखी बने ?
कहे 'सूर्य' ऐसी खूबी कलि-परिवार की ।।८८।।

घर में कुल तीन प्राणी थे—पति, पत्नी और एक पुत्र । पति को हमेशा शिकायत रहती थी कि जब से पुत्र हुआ है, तब से पत्नी उसकी ओर ध्यान कम देती है । पुत्र कुछ बडा हो गया था । पिता उसे वृथा धमकाते—यह उसे अच्छा नही लगता था । पत्नी भी पति पर कुढा करती थी । इस प्रकार तीनो ही साथ में रहते हुए, भी, एक दूसरे से असन्तुष्ट थे ।

गृहस्वामी को खीर बहुत पसन्द थी । एक दिन उसने दूध खरीदा और पत्नी को खीर बनाने का कहा । पत्नी ने खीर बनाई । उसने पति और पुत्र के थाल परोसे । परन्तु उसने पुत्र के थाल मे खीर ज्यादा परोस दी । पिता-पुत्र दोनो भोजन करने बैठे । पुत्र के थाल मे खीर ज्यादा देखकर पिता जलभुन गया । उसने सोचा कि यह मेरी पत्नी होकर, मेरे साथ ऐसा भेद भरा बरताव करती है । उसे क्रोध मे कुछ भान रहा नही । वह जोर से अपनी स्त्री से बोला—'रंडे! तू कैसा बुरा कार्य करने वाली है । तूने इसे ज्यादा खीर परोसी है, तो बता कि तेरा पति मैं हूँ कि यह छोकरा है ?....'

यह बात सुनकर पुत्र से नही रहा गया । वह भी ईर्श्या से जल उठा और पिता की नकल करते हुए बोला—'आप माँ को गाली क्यो दे रहे हो ? आप वडे खारखूँदे हो ! कैसी खार की वात करते हो ! आपको यह खीर ज्यादा कैसे देगी ! मैं आपसे पूछता हूँ—यह माँ मेरी है कि आपकी है ?' पिता आँखे तरेरकर बोला—'चुप रह । अहमक कही का !'

यह बात सुनकर पत्नी को भी क्रोध आया । वह भी गुस्से मे बोली—'तुम्हे लाज नही आती है—ऐसी वातें करते ! कहाँ गई

तुम्हारी अक्कल ! इसमें कौन-सी अचरज भरी बात है ! क्या तुम मेरे बेटे हो जो तुम्हे ज्यादा खीर दूँ ! यह बात तो दुनियाँ में प्रसिद्ध है कि माँ अपने बेटे को दुलार करती है। इसमे कौन-सी बडी विचारने की बात हो गई है !'

इस प्रकार घर मे कलह का वातावरण हो गया।

शिक्षा—'बानी के विचार बिना कैसे गृही सुखी बने, कहे 'सूर्य' ऐसी खूबी कलि-परिवार की' अर्थात् जिस परिवार मे परस्पर ईर्ष्या-द्वेष रहता है, वह परिवार कलि-परिवार है। ऐसे परिवार मे मानसिक सन्तुलन के अभाव के कारण वाणी पर नियन्त्रण नही रहता है। अत. ऐसे गृही का ससार सुखमय नही रह सकता है। परिवार मे क्या-किसी भी समूह मे एक-दूसरे के लिये त्याग करने की भावना होगी, तो वहाँ सुखशान्ति का सागर ठाठें मारने लग जाएगा।

—:—:—

(८८) हरि ! कैसे सुख पाऊँ मैं

पूछे हरि शिव से यों—'कैसे हुए कृश तन ?'
कहे शिव—'मैं हू दुःखी हाल को सुनाऊँ मै।
मेरे है आसन बैल, वाहन उमा के सिह
परस्पर धरे वैर, क्यो कर मिटाऊँ मै॥
मेरे गले अहि और, गणेश-वाहन चूहा,
कँठ बीच विष रह्यो, कहाँ लों जताऊँ मै।
शीस वहे गंग 'सूर्य' ताकी पारवती शोक,
ऐसे दुःख माँहि हरि ! कैसे सुख पाऊँ मैं' ॥८९॥

एक बार हरि से शिवजी मिलने गये। हरि ने शिवजी से कुशल क्षेम-पूछने के बाद कहा—'शिवजी! आपका शरीर बहुत दूबला हो गया है! आपको ऐसी क्या चिन्ता सता रही है, जो आपकी ऐसी दुरवस्था हो रही है।'

शिवजी खिन्नता से बोले—'क्या कहूँ हरे ! मैं तो बड़ा दु:खी हो रहा हूँ।'

आश्चर्य से हरि ने कहा—'आप महादेव हैं और आप दु:खी ?'

'मत पूछो हरे ! मेरे कुटुम्ब मे विचित्र स्थिति हो रही है ! इसलिए मुझे चैन नही है । मेरे छोटे पुत्र गणेश का वाहन चूहा है और मेरे गले मे सर्प है । सर्प चूहे को निगलना चाहता है। मेरे गले के सर्प को मेरे बड़े पुत्र कार्तिकेय का वाहन मयूर भयभीत करता रहता है ! मेरा वाहन वृषभ है और भवानी का वाहन सिह ! सिह मेरे वाहन का भक्षण करना चाहता है ! तीसरे नेत्र के अनल और चन्द्रकला मे अलग द्वन्द्व मचा रहता है । इधर गगा और पार्वती मे कलह मचा रहता है । ऐसी कौटुम्बिक स्थिति के कारण मैं सदैव चिन्तित बना रहता हूँ । सुख तो सपने मे भी नही है । इसलिये मैने तग आकर, देवो पर उपकार करने के लिये विषपान कर लिया । परन्तु वह भी गले मे अटका बैठा है । बाहर निकले तो भी चिन्ता और पेट मे पहुँचे तो भी चिन्ता ! ऐसे हाल हो रहे हैं हरि ! लोग कहते है कि मैंने इसीलिये हलाहल पी लिया है ।'

यह सुनकर हरि ने नि श्वास डाला । शिव को आश्चर्य हुआ । उन्होने हरि से पूछा—'आपने ऐसा गहरा नि श्वास क्यों छोडा ? क्या आपको भी कुछ कष्ट है ?'

हरि उदास होकर बोले—'अरे ! कुछ मत पूछो, शङ्कर ! इसी दु ख से तो मैं लक्कड हो गया हूँ ?'

शिव ने कहा—'आपको क्या दु ख ! आप तो विश्व के पालक कहे जाते है !'

हरि ने अपना अन्तरग रहस्य खोलते हुए कहा—'मुझे और कुछ दु:ख नही है । जैसा आपको कौटुम्बिक दु ख है, मुझे भी वैसा ही दु ख है । क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ?—यही सोच रहा हूँ । परन्तु आपने अपना हृदय खोला दिया तो मैं भी अपनी बात आप से नही छिपा-

तुम्हारी अक्कल ! इसमें कौन-सी अचरज भरी बात है ! क्या तुम मेरे बेटे हो जो तुम्हे ज्यादा खीर दूँ ! यह बात तो दुनियाँ मे प्रसिद्ध है कि माँ अपने बेटे को दुलार करती है । इसमे कौन-सी बडी विचारने की बात हो गई है !'

इस प्रकार घर मे कलह का वातावरण हो गया ।

शिक्षा—'बानी के विचार बिना कैसे गृही सुखी बने, कहे 'सूर्य' ऐमी खूबी कलि-परिवार की' अर्थात् जिस परिवार मे परस्पर ईर्ष्या-द्वेष रहता है, वह परिवार कलि-परिवार है । ऐमे परिवार मे मानसिक सन्तुलन के अभाव के कारण वाणी पर नियन्त्रण नही रहता है । अत ऐमे गृही का समार सुखमय नही रह सकता है । परिवार मे क्या-किसी भी समूह मे एक-दूसरे के लिये त्याग करने की भावना होगी, तो वहाँ सुखशान्ति का सागर ठाठें मारने लग जाएगा ।

—·—·—

(८८) हरि ! कैसे सुख पाऊँ मैं

पूछे हरि शिव से यों—'कैसे हुए कृश तन ?'
कहे शिव—'मै हूं दुःखी हाल को सुनाऊँ मैं ।
मेरे है आसन बैल, वाहन उमा के सिंह
परस्पर धरे वैर, क्यों कर मिटाऊँ मै ।।
मेरे गले अहि और, गणेश-वाहन चूहा,
कंठ बीच विष रह्यो, कहाँ लों जताऊँ मै ।
शीस वहे गंग 'सूर्य' ताकी पारबती शोक,
ऐसे दुःख मांहि हरि ! कैसे सुख पाऊँ मैं' ।।८९।।

एक बार हरि से शिवजी मिलने गये । हरि ने शिवजी से कुशल क्षेम-पूछने के बाद कहा—'शिवजी ! आपका शरीर बहुत दूबला हो गया है ! आपको ऐसी क्या चिन्ता सता रही है, जो आपकी ऐसी दुखस्था हो रही है ।'

शिवजी खिन्नता से बोले—'क्या कहूँ हरे! मैं तो बड़ा दु खी हो रहा हूँ!'

आश्चर्य से हरि ने कहा—'आप महादेव है और आप दु खी?'

'मत पूछो हरे! मेरे कुटुम्ब मे विचित्र स्थिति हो रही है। इसलिए मुझे चैन नही है। मेरे छोटे पुत्र गणेश का वाहन चूहा है और मेरे गले मे सर्प है। सर्प चूहे को निगलना चाहता है। मेरे गले के सर्प को मेरे बड़े पुत्र कार्तिकेय का वाहन मयूर भयभीत करता रहता है। मेरा वाहन वृषभ है और भवानी का वाहन सिंह! सिंह मेरे वाहन का भक्षण करना चाहता है! तीसरे नेत्र के अनल और चन्द्रकला मे अलग द्वन्द्व मचा रहता है। इधर गगा और पार्वती में कलह मचा रहता है। ऐसी कौटुम्बिक स्थिति के कारण मैं सदैव चिन्तित बना रहता हूँ। सुख तो सपने मे भी नही है। इसलिये मैंने तग आकर, देवो पर उपकार करने के लिये विषपान कर लिया। परन्तु वह भी गले मे अटका बैठा है। बाहर निकले तो भी चिन्ता और पेट मे पहुँचे तो भी चिन्ता! ऐसे हाल हो रहे हैं हरि! लोग कहते है कि मैंने इसीलिये हलाहल पी लिया है।'

यह सुनकर हरि ने नि श्वास डाला। शिव को आश्चर्य हुआ। उन्होने हरि से पूछा—'आपने ऐसा गहरा नि श्वास क्यों छोडा? क्या आपको भी कुछ कष्ट है?'

हरि उदास होकर बोले—'अरे! कुछ मत पूछो, शङ्कर! इसी दु ख से तो मै लक्कड हो गया हूँ?'

शिव ने कहा—'आपको क्या दु ख! आप तो विश्व के पालक कहे जाते है!'

हरि ने अपना अन्तरग रहस्य खोलते हुए कहा—'मुझे और कुछ दु ख नही है। जैसा आपको कौटुम्बिक दु ख है, मुझे भी वैसा ही दु ख है। क्या कहूँ? कैसे कहूँ?—यही सोच रहा हूँ। परन्तु आपने अपना हृदय खोला दिया तो मैं भी अपनी बात आप से नही छिपा-

ऊँगा और मेरी बात छिपी हुई है भी कहाँ । मेरी दो पत्नियाँ है—एक तो अत्यधिक वाचाल है और दूसरी की बात क्या कहूँ ? वह अत्यधिक चञ्चल है। वह कही भी स्थिर नही रहती है। एक ही पुत्र है—मन्मथ। वह भुवन-विजयी है। परन्तु दुर्निवार है। वह अनङ्ग हो गया है। मेरी शय्या भी कैसी भयङ्कर है—शेप की ? और मेरा शयन-कक्ष भी कौन-सा है—समुद्र ! सर्पराज मेरी शय्या और सर्पो का शत्रु गरुड़ मेरा वाहन ? कैसा है मेरा गृह-सुख ! इसीलिये कवि लोग कहते हैं कि मैं अपने घर के चरित का स्मरण कर-करके दारुभूत हो गया हूँ, हर !'

हरि—हर एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

(हर का कुटुम्ब)—

अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी,
तं च क्रोञ्चपतेः शिखी च गिरिजा सिंहोऽपि नागाननम् ।
गौरी—जह्नुसुता—मसूयति कलानाथं कपालानलो,
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्ब-कलहादीशोऽपि हालाहलम् ॥

(हरि का कुटुम्ब)—

एका भार्या, प्रकृति-मुखरा, चञ्चला च द्वितीया,
पुत्र—स्त्वेको, भुवन-विजयी, मन्मथो दुर्निवारः ।
शेषः शय्या, शयनमुदधौ, वाहनं—पन्नगारिः,
स्मारं-स्मारं, स्व-गृह-चरितं, दारु—भूतो मुरारिः ॥

शिक्षा—(१) गृह-कलह बहुत ही दुःखद है, जिससे सामर्थ्य-शाली मनुष्य भी सामर्थ्य-हीन हो जाते है।

(२) मनुष्य को गृह-कलह मे उलझकर अपने कल्याण-मार्ग मे विरत नही होना चाहिये।

(३) संसार मे जो बडे कहे जाते हैं, वे भी दुःख मे नही छूट सकते है तो छोटे का कहना ही क्या ? अतः मनुष्य को वृथा के आर्त-रौद्र ध्यान का निवारण करना चाहिये।

(८९) विधुर हुआ स्नें

सेठ कहे—'सुनो प्रिया ! स्वप्न एक मैंने देखा,
कहूँ नहीं बात पर मन अकुलात है।'
आग्रह त्रिया का जान, कहे—'किससे न कैना,
रंडवा हुवा मैं निशि, उर दुःख आत है' ।।
'अरे पति ! यामे कहा, भले मैं ही रांड बनूं,
आप मत होवें, स्वप्न अफल दिखात है।'
'सूर्यमुनि' ऐसे सब संसार के स्नेह लख,
मरण अप्रिय सभी जीव को लखात है ।।९७।।

युवक सेठ को अपनी युवा पत्नी पर गाढी आसक्ति थी और युवा सेठानी का भी सेठ पर वैसा ही प्रेम था । वे एक दूसरो का वियोग कुछ समय के लिये भी सहन नही कर पाते थे । युवा पति कहता—'मै तुम्हारे प्रेम के लिये सभी कुछ न्यौछावर करने को तैयार हू !' पत्नी स्वामी की वलैया लेते हुए कहती—'मैं नो निंहाल हो गई ऐसे स्वामी को पाकर ! मै आपके लिये बडा से वडा त्याग करने को तैयार हूँ।' दोनो वडे प्रसन्न थे।

एक वार एक मुनि महात्मा नगर मे पधारे । उनके प्रवचन सुनने के लिये जनता उमड पडी । युवा सेठ भी उनका उपदेश सुनने के लिये गया। प्रवचन का विपय था—'ससार के नाते क्षणिक है' 'सभी जीवो को जीवन प्रिय है' आदि । उसे यह उपदेश सुनकर हँसी आ गई—'हम पति-पत्नी अपने प्रेम-सम्वन्ध के लिये प्राण तक देने को तत्पर हैं ! मालूम पडता है, ये बचपन मे ही साधु वन गये हैं।' वह प्रवचन को अरुचि से सुनता रहा ।

एक दिन प्रात काल मे वह वहुत ही खिन्न था । उसे रह-रह-कर स्वप्न की वात याद आ रही थी । उसकी पत्नी ने पूछा—'आज उदास क्यो हैं ?' वह सुस्ती से बोला—'आज रात को एक स्वप्न आ

गया था ?'—इतना कहकर वह चुप हो गया। पत्नी बोली—'ऐसा क्या सपना आ गया ?' पति—'क्या कहूं ? कुछ कह नहीं सकता। मेरा जी अकुलाता है ?' पत्नी ने आग्रह करते हुए कहा—'कहो भी तो सही ?' पत्नी का अत्यधिक आग्रह देखकर बोला—'आज स्वप्न में ऐसी बात हो गई कि उसे कहते जीभ शर्माती है। अरे ! मैंने देखा—मैं विधुर हो गया। रोते-रोते मेरी आँखें सूज गई।' पत्नी बोली—'स्वामी ! आप दुःखी न होवें। आपका स्वप्न अफल हो। आपके लिये मैं त्याग करने को तैयार हूं। भले मैं विधवा बन जाऊँ, पर आप विधुर न बनें ? मैं मरण पर्यन्त वैधव्य सहने को तैयार हूं—आपके लिये।'

पति चौंक गया। उसके स्वप्न ने उसकी आँखें खोल दी। मुनि के प्रवचन की सत्यता का उसे साक्षात्कार हो गया।

शिक्षा—(१) संसार के स्नेह-सम्बन्ध स्वार्थ से भरे हुए हैं। उनमें मुग्ध होकर अपने कर्त्तव्य को नहीं भुलाना चाहिये।

(२) मरण सभी को अप्रिय है। मरण के सामने सभी स्नेह मन्द हो जाते हैं।



(९०) पाप - फल छाया है

धनी नर विदेश में रहा, कई बीते वर्ष,
पत्र आया घर से कि-पुत्ररत्न जाया है।
पत्र देख उदासी हो, बाप को सुनाया हाल,
कहे बाप—'यामें तुम्हें रंज कैसे आया है ?
जब तुम और तुम्हारे बहिन-भाई हुये,
बारा वर्ष घर तो गया, यहीं बिताया है।'
कहे 'सूर्यमुनि' जहाँ ऐसी रीत-धर, तहाँ—
सुधरे सन्तान कैसे, पाप फल छाया है ॥३१॥

गुमानचन्द विदेश मे कमाने के लिये जाना चाहता था। अपने वडे पुत्र को भी साथ ले जाने की इच्छा थी। पुत्र की सगाई हो चुकी थी। समधी अपनी लडकी के हाथ पीले करने की उतावल कर रहा था। गुमानचन्द ने भी सोचा कि विदेश मे निकल जाने बाद न जाने कितने वर्षों मे फिर लौटना हो। इसलिये लडके की शादी करके, जाना ही ठीक रहेगा।

योग्य मुहूर्त देखा गया। दोनो घर बाजे बजे। धूम-धाम से बारात गई। प्रीति-भोज हुए और नई बहू अपने ससुराल आ गई।

अब सेठ को एक दिन की भी देर करना अच्छा नहीं लग रहा था। लडके को भी पिता की आज्ञा से अनमने मन से पिता के साथ रवाना होना पडा। बाप-बेटे देशान्तर मे पहुँचे और परिश्रम के साथ व्यापार मे जुड गये। कार्य के चक्र मे ऐसे फँसे कि काल-चक्र कितना घूम गया, इसका उन्हे पता ही नही लगा।

कुछ दिन बेटे के नाम खुशखबरी का एक पत्र आया। बेटे ने देखा—पत्र तो घर का ही है। उसे उत्सुकता हुई कि इसमे मेरे लिये क्या खुश खबर है। उसने पत्र फाडा और उसे पढा। परन्तु पत्र पढते ही उसके मुखपर उदासीनता छा गई। उसके लिये खुशखबर दु:ख खबर हो गई। वह पिता के पास गया और पत्र उसके हाथ मे थमा दिया। पिता ने पत्र पढकर प्रसन्न होकर कहा—'बेटा! तुझे पुत्र-रत्न और मुझे पौत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है।' पुत्र बोला—'पिताजी! हमे यहाँ वर्षो हो गये और वहाँ पुत्र कैसे आ गया!'

पिता पुत्र के आशय को समझकर बोला—'बेटा! तू रज क्यो करता है? जब तू पैदा हुआ और तेरे बहिन-भाई पैदा हुए, तब मै भी घर पर नही था। मैं बाहर वर्ष तक यही रहा था, तभी तुम्हारा जन्म हुआ था!'

पिता की बात सुनकर पुत्र का मन ग्लानि से भर गया? शील-सदाचार की बाते करनेवाले घरो की यह हालत है? वह धीमे स्वर मे बुदबुदाया—'हाय धन!'

शिक्षा—(१) अपने घर के शील-सदाचार की रक्षा करना चाहिये।
(२) धन के पीछे पागल नहीं बनना चाहिये।
(३) कुल मे आये हुए कुशील का उच्छेदन न करने पर उसकी परम्परा चल पडती है।



(९१) फाँसी तुझसे पाई है

एक बाल पडोस से चोर कर चीज लाया,
लेय दीनी मात हु को, प्रेम तापै लाई है।
मना करे मात नहीं, नित्य नई चोरी करे,
करी चोरी भारी, गयो चोर पकड़ाई है॥
फाँसी सजा हुई, तब मात मिलने को आई
मात-नाक काट डाल्यो, क्रोध उर छाई है।
पहले मिटाय देती चोरी ऐब 'सूर्य' कहे
फाँसी नहीं होती, फाँसी तुझसे ये पाई है॥९२॥

एक बालक अपने पडोसी के घर खड़ा था। वह एकटक कुछ देख रहा था। पडोसी के हाथ में सुन्दर नया चाकू था। उसकी ललचाई हुई नजर उसी चाकू पर थी—'कल माँ चाकू के गुम हो जाने से नाराज हो रही थी। यह चाकू हमारे चाकू से बहुत बढ़िया है। इसे पाकर माँ खुश हो जाएगी। पर यह मिले कैसे?' वह यह सोचता जा रहा था और खेलते हुए चाकू को हथिया लेने की तरकीब खोजने लगा। पडोसी ने काम करके चाकू को आले मे रखा और वह किसी गृहकार्य मे लग गया। बालक ने घर वालो की नजर चुराकर चाकू उठा लिया और जल्दी ही अपने घर आ गया। उसका हृदय धड़क रहा था। उसने चाकू माँ को दे दिया। माँ चाकू पाकर बड़ी खुश हुई और बच्चे को चूम लिया। बच्चे का भय मिट गया।

अब बच्चा नित्यप्रति इधर-उधर से वस्तुएँ चुराकर लाने लगा और माँ को देने लगा। माँ भी खुश होती । इस प्रकार बालक को चोरी करने की आदत हो गई । युवावस्था मे पहुँचते-पहुँचते वह पक्का चोर हो गया । एक दिन उसने बहुत बडी चोरी की। वह चोरी का माल पचा न सका और आखिर मे माल समेत पकड लिया गया। उसपर कई चोरियो के आरोप सिद्ध हो गये। राजा को उस-पर बड़ा क्रोध आया। राजा ने उसे फाँसी की सजा सुना दी।

उसे फाँसी पर चढाया जा रहा था। लोग भी झुण्ड के झुण्ड खड़े थे। उसकी माँ भी एक तरफ खडी आँसू बहा रही थी। उस चोर को फाँसी का तख्ता देखकर अपना पिछला जीवन याद आ रहा था। उसे जिजीविषा सता रही थी। उसे माँ दिखाई दी और अपनी पहली चोरी याद आ गई । उसे उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गई। उसने अपनी माँ से मिलने की इच्छा प्रकट की। माँ पास मे लाई गई। वह नीचे झुका और उसने माँ की नाक काट खाई । माँ खून से लथपथ हो गई और चिल्लाती हुई बेटे को गालियाँ देने लगी। लोग कहने लगे—'आखिर चोर है । मरते-मरते माँ की नाक चुराने से भी बाज न आया।'

चोर ने अपनी आत्मकथा सुनाई और कहा—'यदि माँ मेरी चोरी को बढावा न देती तो आज मुझे फाँसी पर न चढना पडता।'

सब माँ को धिक्कारने लगे।

शिक्षा—अभिभावक को अपने बच्चो के दोषो का बढावा न देना चाहिये। बचपन से ही उनके दोषो को दूर करने के लिये सावधान रहना चाहिये।



(दोहा)

जब विपत्ति गिरि हो गिरा, युद्ध घटा बरसाय।
कीमत सुख अरु, सुलह की, सच्ची तब समझाय ॥

(९२) वार-वार हमीं वोलें ?

एक सेठ निज पुत्र चारों को वुलाय कहे–
'कौन लेगा जो कि मेरे पास यह ऋद्धि है ?'
तामे एक पुत्र वोला–'लूँगा मै सम्पत्ति सव'
ऐसे कई वात ही मे हाँ-हाँ भर वदि है।
'चढ़ा कर्ज मेरे सिर, ऋण को चुकावे कौन ?'
कहे पुत्र–'मेरी यामे चले नहि वुद्धि है ?
वार-वार हमीं वोलें ? अव कोई और कहो।'
'सूर्य' कहे ऐसे किये कहा कार्य सिद्धि है ?' ॥९३॥

एक सेठ थे। उनके चार पुत्र थे चारो पुत्र वड़े हुए। सेठ ने उनकी शादी कर दी और उन्हें दुकाने करवा दी। फिर चारो को अलग-अलग मकान दे दिये! चारो अलग-अलग रहने लगे। इधर सेठ और सेठानी भी अलग रहते थे और सेठ अपना व्यापार-वन्धा अलग करते थे। सेठ के पास काफी पूँजी थी। भव्य भवन था। वहु-मूल्य आभूपण थे और कई दासी-दास थे।

सेठ को वृद्धावस्था ने घेर लिया। सेठानी उनसे पहले ही ससार से विदा हो गई। सेठ ने विचार किया मेरे पास जो पूँजी है, इसके लिये ये लडके आपस मे लडेगे। इसलिये इस विपय मे पहले से ही कुछ व्यवस्था कर देना चाहिये। सेठ ने उनके विचार जानने के लिये एक युक्ति सोची। उसने चारो पुत्रों को अपने पास वुलाया और वह वोला— देखो, अव मेरी उमर किनारे लग रही है।'

वडा लडका वोला—'इसकी आप चिन्ता मत करो। हम आपको अच्छी तरह से पहुँचा देगे।' सेठ को उनकी वात सुनकर कुछ वुरा लगा। पर उसने अपनी वात आगे वढाई—'पर मुझे एक चिन्ता है। भव्य भवन का क्या होगा ?' लडका वोला–'आप वृथा ही चिन्ता क्यो कर रहे हैं। इसमे मै रहने लग जाऊँगा।' सेठ—'आभूपणों का

क्या होगा ?' लड़का—'क्या-क्या होगा ? इन्हे मैं अच्छी तरह से सम्हाल कर रख लूँगा ।' 'दास-दासी·····' 'इनको छुट्टी दे दूँगा ?' सेठ ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा—'मेरी सम्पत्ति·····' बडा लडका हँसकर बोला—'इसमे चिन्ता जैसी क्या बात है ? सदा से यह होता आया है कि बडा पुत्र ही घर का मालिक बनता है। मै ही आपकी सम्पत्ति का मालिक बनूँगा !' पिता ने घोर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा—'पर मुझपर पचास हजार रुपये का कर्ज है। इसे कौन चुकाएँगा ?' बडे पुत्र ने अपना सिर खुजलाते हुए कहा—'पिताजी ! इस बात मे मेरी बुद्धि नही चलती है।' वह अपने भाइयो की ओर देखकर बोला—'बोलो, बोलो भाई ! सभी बात का मैं ही उत्तर देता रहूँगा क्या ? तीन-तीन जने यहाँ बैठे हो ! कुछ उत्तरदायित्व तुम भी लो न !' तीनो भाई चिढकर बोले—धन-सम्पत्ति लेने के समय तुम और कर्ज के समय हम ?'

सेठ ने कहा—'जाओ भाई ! हो गई तुम्हारी परीक्षा। स्वार्थ के पूतले ही हो तुम ? मेरी व्यवस्था मै कर लूँगा, जाओ।'

सेठ ने अपनी सम्पत्ति सुकृत मे लगा दी।

शिक्षा—'ऐसे किये कहा काज सिद्धि है' अर्थात् सिर्फ स्वार्थ की ओर ही दृष्टि रखने से कार्य की सिद्धि नही होती है। सेवा भाव मे भी दक्षता रखना चाहिये।



(९३) जरा बाजी अधूरी है

शतरंज खेल रहा ताको एक नर कहे—
'तेरा बाप अचानक कुए बीच पड़ा है'।
खिलाड़ी ने कहा—'जरा बाजी अधूरी है' 'अरे !
मर रहा बाप तेरा खिलाड़ी तू बड़ा है' ॥

आनन्द था। लेकिन अपने पुत्रो का वैमनस्य उनके हृदय मे कांटे की तरह कसकता रहता था।

अव सेठ वहुत वृद्ध हो गये थे। वे पक्के पान थे, न जाने कव खिर जायँ-वे इस दुनिया के वृक्ष से ! उन्होने अपने पुत्रो को अपने पास वुलाया और उन्हे एक रस्सी का टुकडा दिया और कहा—'इसे तोड़ो !'

चारो ने क्रमश. उस रस्सी के टुकड़े पर वल आजमाया। पर वह नही टूटी। पिता के सकेत पर चारो ने मिलकर जोर लगाया। परन्तु रस्सी नही टूटी सो नही टूटी। फिर वृद्ध ने उन्हे एक-एक सूत का तार देकर उसे तोडने का आदेश दिया। एक ही झटके से सूत टूट गया। वृद्ध ने पूछा—'रस्सी क्यो नही टूटी और सूत क्यो टूट गया ?'

पुत्र—'रस्सी वँटी हुई है और सूत कच्चा है !'

सेठ—'परन्तु रस्सी भी तो सूत से ही वनी हुई है !'

पुत्र—'पिताजी ! सूत एक-एक थे, इसलिये टूट गये और रस्सी मे सव सूत वँटे जाकर एक वन गये है। अत वे नही टूट सकते है।'

सेठ—पुत्रो ! अव समझो कि कच्चे सूत भी इकट्ठे होकर कितने शक्तिशाली हो जाते है। जो विरल होकर एक झटके मे टूट जाते हैं, वे ही इकट्ठे होकर हाथी को वांध सकते है। इसी प्रकार मनुष्य भी सम्प से शक्तिशाली वन सकता है। सम्प है वही सम्पत्ति है।'—चारो ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की।

शिक्षा—'सम्प जहाँ सम्पदा रहत है।'

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।
तृणै-र्गुणत्व-मापन्नै-र्वध्यन्ते मत्त-दन्तिनः ॥

अल्प (थोडे या तुच्छ) पदार्थों की भी एकता कार्य को सिद्ध करनेवाली वन जाती है। जैसे तृण जव मिलकर रस्सी वन जाते हैं, तव मत्त हाथियो को भी वांध देते हैं।



(९५) वृद्ध से जवान पूछे

वृद्ध से युवान पूछे—'उजाड़ या बन बीच
स्नान समैं हमे मुँह कौंन दिशि रखना ?'
वृद्ध कहे—'निज वस्त्र बाजू ध्यान रखो ताकि
वस्त्र न उठाय कोई, हो न नग्न फिरना' ।।
ऐसे गाम-बन बीच, पाप-वृत्ति छाय उर
तबै हुशियार होय जिन-बैन धरना ।
ले न कोई धर्म-वस्त्र, नंगा हो न फिरे यांते,
कहै 'सूर्य' पाप रूप तस्कर से डरना ।।९६।।

एक वृद्ध सज्जन थे । उनका शरीर थक गया था । बाल सफेद हो गये थे । आँखो का वल भी अल्प हो गया था । यद्यपि उनके पास शास्त्रज्ञान तो विशेष नही था, तदपि उनके अनुभव का भण्डार बहुत ही समृद्ध था । वे अपने अनुभव की ज्ञान-राशि से ऐसे अनमोल रत्न लोगो को निकाल कर देते कि लोग निहाल हो जाते । इसलिये वे आवाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषो के लिये समान रूप से श्रद्धा के भाजन बन गये थे । कभी-कभी तो लोग उन्हे बिलकुल साधारण वाते पूछा करते । परन्तु वृद्ध का स्वभाव ऐसा था कि वे प्रेम से उन वातो का उत्तर देते और उस साधारण-सी वात को भी अपने अनुभव के वल से गौरव पूर्ण वना देते थे ।

एक वार कुछ नवयुवक आकर उन सज्जन के पास वैठ गये । ऐसे वातो ही वातो मे एक नवयुवक पूछ वैठा—'मान लो, हम जंगल मे जा रहे हो या कोई निर्जन स्थान पर पहुँच गये हो, और हमे स्नान करना हो तो हम किस ओर मुख रखकर स्नान करें ?' दूसरे नव-युवको को लगा कि इसने भी क्या प्रश्न फेका है ! क्या यह भी कोई पूछने की वात है ? वृद्ध मुसकराये । फिर वे वोले—'वहुत अच्छा प्रश्न पूछा भैया ! स्नान करते समय अपने वस्त्र उतारने पडते हैं ।

आनन्द था। लेकिन अपने पुत्रों का वैमनस्य उनके हृदय में कांटे की तरह कसकता रहता था।

अब सेठ बहुत वृद्ध हो गये थे। वे पक्के पान थे, न जाने कब खिर जायँ-वे इस दुनिया के वृक्ष से! उन्होने अपने पुत्रो को अपने पास बुलाया और उन्हे एक रस्सी का टुकडा दिया और कहा—'इसे तोड़ो!'

चारो ने क्रमशः उस रस्सी के टुकड़े पर बल आजमाया। पर वह नही टूटी। पिता के संकेत पर चारो ने मिलकर जोर लगाया। परन्तु रस्सी नही टूटी सो नही टूटी। फिर वृद्ध ने उन्हे एक-एक सूत का तार देकर उसे तोडने का आदेश दिया। एक ही झटके से सूत टूट गया। वृद्ध ने पूछा—'रस्सी क्यो नही टूटी और सूत क्यो टूट गया?'

पुत्र—'रस्सी बँटी हुई है और सूत कच्चा है!'

सेठ—'परन्तु रस्सी भी तो सूत से ही बनी हुई है!'

पुत्र—'पिताजी! सूत एक-एक थे, इसलिये टूट गये और रस्सी मे सब सूत बँटे जाकर एक बन गये हैं। अतः वे नही टूट सकते हैं।'

सेठ—पुत्रो! अब समझो कि कच्चे सूत भी इकट्ठे होकर कितने शक्तिशाली हो जाते हैं। जो विरल होकर एक झटके मे टूट जाते हैं, वे ही इकट्ठे होकर हाथी को बाँध सकते है। इसी प्रकार मनुष्य भी सम्प से शक्तिशाली बन सकता है। सम्प है वही सम्पत्ति है।'—चारो ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की।

शिक्षा—'सम्प जहाँ सम्पदा रहत है।'

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।
तृणै-र्गुणत्व-मापन्नै-र्बध्यन्ते मत्त-दन्तिनः॥

अल्प (थोडे या तुच्छ) पदार्थों की भी एकता कार्य को सिद्ध करनेवाली बन जाती है। जैसे तृण जब मिलकर रस्सी बन जाते है, तब मत्त हाथियो को भी बाँध देते है।



(९५) वृद्ध से जवान पूछे

वृद्ध से युवान पूछे--'उजाड़ या बन बीच
स्नान समै हमे मुँह कौन दिशि रखना ?'
वृद्ध कहे--'निज वस्त्र बाजू ध्यान रखो ताकि
वस्त्र न उठाय कोई, हो न नग्न फिरना' ।।
ऐसे ग्राम-बन बीच, पाप-वृत्ति छाय उर
तबै हुशियार होय जिन-बैन धरना ।
ले न कोई धर्म-वस्त्र, नंगा हो न फिरे यांते,
कहै 'सूर्य' पाप रूप तस्कर से डरना ।।९६।।

एक वृद्ध सज्जन थे । उनका शरीर थक गया था । बाल सफेद हो गये थे । आँखो का बल भी अल्प हो गया था । यद्यपि उनके पास शास्त्रज्ञान तो विशेष नही था, तदपि उनके अनुभव का भण्डार बहुत ही समृद्ध था । वे अपने अनुभव की ज्ञान-राशि से ऐसे अनमोल रत्न लोगो को निकाल कर देते कि लोग निहाल हो जाते । इसलिये वे आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषो के लिये समान रूप से श्रद्धा के भाजन बन गये थे । कभी-कभी तो लोग उन्हे बिलकुल साधारण बातें पूछा करते । परन्तु वृद्ध का स्वभाव ऐसा था कि वे प्रेम से उन बातो का उत्तर देते और उस साधारण-सी बात को भी अपने अनुभव के बल से गौरव पूर्ण बना देते थे ।

एक बार कुछ नवयुवक आकर उन सज्जन के पास बैठ गये । ऐसे बातो ही बातो मे एक नवयुवक पूछ बैठा—'मान लो, हम जगल मे जा रहे हो या कोई निर्जन स्थान पर पहुँच गये हो, और हमे स्नान करना हो तो हम किस ओर मुख रखकर स्नान करे ?' दूसरे नव-युवको को लगा कि इसने भी क्या प्रश्न फेंका है ! क्या यह भी कोई पूछने की बात है ? वृद्ध मुसकराये । फिर वे बोले—'बहुत अच्छा प्रश्न पूछा भैया ! स्नान करते समय अपने वस्त्र उतारने पडते हैं ।

खिलाड़ी कहे यों—'अरे ! कैसा तू है जल्दबाज ?
पिता-मित्र है तो तूं निकाल तेरे अड़ा है' ।
कहे 'सूर्यमुनि' ऐसे पुत्र हुए कहा लाभ
ऐसे नर ही से महा भूमि-भार चढ़ा है ।।९४।।

एक युवक शतरज के खेल का बहुत शौकीन था। उसने अपने मोहल्ले मे खिलाड़ियो की एक मडली जमा ली थी । खेल की एक-एक वाजी मे उनका कितना ही समय वीत जाता था। उस युवक का पिता उसे वहुत ही समझाता था। परन्तु वह एक भी नही सुनता था। घर के कार्य की ओर उसका कुछ भी ध्यान नही था।

एक दिन शतरज की वाजी जम रही थी। वह युवक खेलने मे अत्यन्त तल्लीन था। वह एक-एक चाल गभीरता से चल रहा था। उधर उसका पिता घर का काम देख रहा था। वह अति वृद्ध था। उसका शरीर धूजता रहता था। उसे स्नान करना था। घर में पानी था नही। अत वह कुएँ पर चला गया। पानी खीचते समय अपने शरीर का वोझ नही सम्हाल सकने के कारण वह कुएँ मे गिर पडा। लोग इकट्ठे हो गये।

एक व्यक्ति दौडा हुआ उस युवक के पास आया और बोला—'अरे! चलो, जल्दी चलो! तुम्हारे पिता कुएँ मे गिर गये हैं।' खिलाडी चाल चलते हुए बोला—'गिर गया तो मैं क्या करूँ?' व्यक्ति—'क्या करो! चलो, उन्हे निकालो!' खिलाडी निश्चिन्तता से वोला—'जरा ठहर जाओ। अभी वाजी अधूरी है!' व्यक्ति आश्चर्य से बोला—'तुम कैसे हो। उधर तुम्हारा वाप मर रहा है और इधर तुम्हे खेल की सूझ रही है! तुम वड़े खिलाड़ी हो! तुम्हारी वाजी पूरी होगी वहाँ तक क्या तुम्हारा वाप वैठा रहेगा?' युवक क्रुद्ध होकर वोला—'अरे? तुम वडे जल्दवाज हो? हमारे खेल का मजा किरकिरा कर रहे हो। तुम्हारे मेरे वाप के विना कुछ अड रहा हो तो जाओ तुम्ही उसे निकाल लो न! तुम भी उसके मित्र हो!' व्यक्ति यह कहते हुए

चला गया कि—'ऐसे पुत्रो से क्या लाभ है ? ऐसे मनुष्यों से ही भूमि का भार वढ रहा है।'

शिक्षा—(१) मनुष्य प्रमाद मे भान भूल जाता है और आत्मकर्त्तव्य से चूक जाता है। अत· प्रमाद नही करना चाहिये।

(२) अत्यधिक क्रीडारत रहना अच्छा नही है। क्रीडारत मनुष्यो के जीवन की बाजी अधूरी ही रह जाती है।



(९४) सम्प में शक्ति

एक सेठ के थे चार-पुत्र, हुए हुशियार,
करे मिल तकरार, नहि समझत है।
सेठ समझावे, नहि माने, देय रस्सी हाथ
'अरे ! चारो तुम तोड़ो'-तोड़ी न टूटत है ।।
काचो सूत दियो तबै, टूक झट कर दिये
ऐसे सम्प फूट माहि, भेद यो परत है।
पिता-सीख सुन सब, समझे हैं पुत्र चहुँ,
कहे 'सूर्य' सम्प जहाँ सम्पदा रहत है ।।९५।।

एक थे सेठ। वडे बुद्धिमान । ऐश्वर्य अखूट था उनका और अनुभव की पूँजी भी कम नही थी।

उनके चार बेटे थे। चारो वुद्धि के पिटारे और स्वतन्त्र विचारक। उनमे परस्पर जरा भी नही पटती थी। सबको अपनी-अपनी बुद्धि का गर्व था। अत. प्रत्येक वात मे वे एकमत नही हो पाते थे। इस कारण उनमे तकरार होती रहती थी और वैमनस्य वना रहता था।

सेठ को यह दृश्य देखकर मनमे वडी पीडा होती थी। वे उन्हे समझाते थे। परन्तु परिणाम शून्य ही होता था। सेठ को और सब

आनन्द था। लेकिन अपने पुत्रों का वैमनस्य उनके हृदय मे काँटे की तरह कसकता रहता था।

अव सेठ बहुत वृद्ध हो गये थे। वे पक्के पान थे, न जाने कव खिर जायँ-वे इस दुनिया के वृक्ष से! उन्होने अपने पुत्रो को अपने पास वुलाया और उन्हे एक रस्सी का टुकडा दिया और कहा—'इसे तोडो!'

चारो ने क्रमश उस रस्सी के टुकड़े पर बल आजमाया। पर वह नही टूटी। पिता के सकेत पर चारो ने मिलकर जोर लगाया। परन्तु रस्सी नही टूटी सो नही टूटी। फिर वृद्ध ने उन्हे एक-एक सूत का तार देकर उसे तोडने का आदेश दिया। एक ही झटके से सूत टूट गया। वृद्ध ने पूछा—'रस्सी क्यो नही टूटी और सूत क्यो टूट गया?'

पुत्र—'रस्सी वँटी हुई है और सूत कच्चा है!'

सेठ—'परन्तु रस्सी भी तो सूत से ही वनी हुई है!'

पुत्र—'पिताजी! सूत एक-एक थे, इसलिये टूट गये और रस्सी मे सव सूत वँटे जाकर एक वन गये हैं। अतः वे नही टूट सकते है।'

सेठ—पुत्रो! अव समझो कि कच्चे सूत भी इकट्ठे होकर कितने शक्तिशाली हो जाते हैं। जो विरल होकर एक झटके मे टूट जाते हैं, वे ही इकट्ठे होकर हाथी को बाँध सकते है। इसी प्रकार मनुष्य भी सम्प से शक्तिशाली वन सकता है। सम्प है वही सम्पत्ति है।'—चारो ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की।

शिक्षा—'सम्प जहाँ सम्पदा रहत है।'

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।
तृणै-र्गुणत्व-मापन्नै-र्बध्यन्ते मत्त-दन्तिनः॥

अल्प (थोडे या तुच्छ) पदार्थो की भी एकता कार्य को सिद्ध करनेवाली वन जाती है। जैसे तृण जव मिलकर रस्सी वन जाते है, तव मत्त हाथियो को भी बाँध देते हैं।



(९५) वृद्ध से जवान पूछे

वृद्ध से युवान पूछे--'उजाड़ या बन बीच
स्नान समै हमें मुँह कौंन दिशि रखना ?'
वृद्ध कहे—'निज वस्त्र बाजू ध्यान रखो ताकि
वस्त्र न उठाय कोई, हो न नग्न फिरना' ॥
ऐसे गाम-वन बीच, पाप-वृत्ति छाय उर
तबै हुशियार होय जिन-बैन धरना।
ले न कोई धर्म-वस्त्र, नंगा हो न फिरे यांते,
कहै 'सूर्य' पाप रूप तस्कर से डरना ॥९६॥

एक वृद्ध सज्जन थे। उनका शरीर थक गया था। बाल सफेद हो गये थे। आँखों का बल भी अल्प हो गया था। यद्यपि उनके पास शास्त्रज्ञान तो विशेष नही था, तदपि उनके अनुभव का भण्डार बहुत ही समृद्ध था। वे अपने अनुभव की ज्ञान-राशि से ऐसे अनमोल रत्न लोगो को निकाल कर देते कि लोग निहाल हो जाते। इसलिये वे आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषो के लिये समान रूप से श्रद्धा के भाजन बन गये थे। कभी-कभी तो लोग उन्हे बिलकुल साधारण बाते पूछा करते। परन्तु वृद्ध का स्वभाव ऐसा था कि वे प्रेम से उन बातो का उत्तर देते और उस साधारण-सी बात को भी अपने अनुभव के बल से गौरव पूर्ण बना देते थे।

एक बार कुछ नवयुवक आकर उन सज्जन के पास बैठ गये। ऐसे बातो ही बातो मे एक नवयुवक पूछ बैठा—'मान लो, हम जंगल मे जा रहे हो या कोई निर्जन स्थान पर पहुँच गये हों, और हमे स्नान करना हो तो हम किस ओर मुख रखकर स्नान करें?' दूसरे नवयुवको को लगा कि इसने भी क्या प्रश्न फेंका है! क्या यह भी कोई पूछने की बात है? वृद्ध मुसकराये। फिर वे बोले—'बहुत अच्छा प्रश्न पूछा भैया! स्नान करते समय अपने वस्त्र उतारने पड़ते हैं।

उन्हे दूर रखने होते हैं। अतः स्नान करते समय मुँह अपने वस्त्रों की ओर रखना चाहिये । जिससे वस्त्र सुरक्षित रहे और हमे नग्न न रहना पड़े'—कुछ क्षण वृद्ध रुके और बात को मोड देते हुए बोले—'भैया ! ऐसे ही जीव इस भव-वन मे रह रहा है। उसे भी आराधना रूप स्नान करते समय, सदा जिनेन्द्र देव के वचनों की ओर लक्ष्य रखना चाहिये । जिससे वह पाप रूपी तस्करो से अपने धर्म-रूपी वस्त्रो को बचा सके और क्रियानुष्ठान करते हुए धर्म से रहित न बन जाए। हमे पाप रूपी चोरों से सदा डरते रहना चाहिये।'

नवयुवकों का मन प्रसन्नता से भर गया । सामान्य-सी बात को भी वृद्ध ने कितनी गरिमामयी बना दिया। उनका मस्तक श्रद्धा से झुक गया।

शिक्षा—(१) वृद्धो के अनुभव मे लाभ उठाना चाहिये ।
(२) पापो से भीति रखना चाहिये ।



(९६) हम नौकर पालकी के (सवैया)

कहा सेठ ने या विधि नौकर से,
'तुम जाय बजार से साक ले आओ।'
'हम नौकर हैं इस पालकी के,
न बजार के नौकर, काम दिखाओ' ॥
हर एक जगे शाह पालकी में,
गए बैठ हु नौकर म्हा दुःख पायो।
'मुनिसूर्य' ठिकाने सो आय गयो,
सब फैल-फितूरन को विसरायो ॥९७॥

एक सेठजी थे। वह जमाना पालखियो का था। पालखी की सवारी करना उस जमाने मे बढिया समझा जाता था। सेठजी भी पालखी मे बैठकर इधर-उधर जाया करते थे। उन्होने पालखी ढोने के लिये नौकर रखे थे। वे नौकर जहाँ भी सेठ जाते, वहाँ सेठजी को पालखी मे उठाकर ले जाते।

सेठजी के घर मे पालखी उठाने वाले नौकरों के सिवाय और भी घर का काम-काज करनेवाले नौकर थे। घर के भीतर काम करनेवाला नौकर कुछ दिन से छुट्टी पर गया था। आज घर मे कोई साग लाने वाला नही था। सेठजी को आज कही जाना नही था। पालखी वाले नौकर बैठे हुए थे। सेठ ने उनसे कहा—'जाओ, बाजार से साग ले आओ!' उन्होने उत्तर दिया—'सेठजी! यह हमारे साथ अन्याय है। हमने आपकी पालखी उठाने की नौकरी की है। हम पालखी के नौकर है, बाजार के नही। इसलिये हम साग नही ला सकते हैं। पालखी उठाने का काम हो तो बताओ ?'

सेठ ने यह बात सुनी। उसे बुरा लगा। परन्तु उसने उन्हे कुछ नही कहा। वह सिर्फ मुसकरा दिया और इतना ही बोला—'अच्छा!' सेठ ने यह बात गाँठ बाँध ली। अब सेठ उन्हे किसी दूसरे काम के लिये कहता ही नही था।

पहले सेठ रोज पालखी मे एक-दो बार ही इधर-उधर जाता था। परन्तु अब उसकी पालखी मे जाने-आने की सख्या बढने लगी। अब उन नौकरो को क्षण भर की फुरसत नही मिलती। प्रात काल से आधी रात तक उन्हे पालखी ढोना पडती थी। अब वे घबरा गये। वे समझ गये कि हमारी उस दिन की बात का ही यह परिणाम है। परन्तु वे कुछ बोल नही सकते थे।

एक दिन उनसे रहा गया नही। वे सेठ से बोले—'अब तो कुछ दया करो!' सेठ ने कहा—'क्यो भैया! मैं तो पालखी उठवाने के सिवाय तुमसे कुछ काम ही नही करवाता हूँ!' नौकर—'हाँ, यह

बात तो सही है। पर काम की भी कुछ हद होती है!' सेठ—'जैसे हमने तुम्हे बाजार के लिये नौकर नही रखा, वैसे ही हमने पालखी के लिये नौकर रखते समय कुछ हद तो बाँधी नही थी।' नौकर—'पर सेठजी! मानवता भी तो कोई चीज है।' सेठजी—'मै तो तुम्हारे साथ दया के या मानवता के सभी सम्बन्ध रख रहा था। परन्तु जब तुम सिर्फ पालखी के ही नौकर बने, तब यह नौबत आई।' नौकर बोला—'सेठजी! अब हमे माफ करो। वह हमसे भूल हो गई थी।'

शिक्षा—(१) व्यावहारिक सम्बन्धो मे कतर-ब्योन करने से गलत परिणाम आता है।

(२) थोडे से श्रम से जी चुराने से अधिक श्रम करना पडता है।



(९७) मूर्ख सेती सुज्ञ कहा फल पाय के

सबको सुनाय चिट्ठी लिख ठाकुर ने दई,
दूत भेज्यो अन्य गाम—'दीजे झट जाय के।'
कुछ दूर गयो दूत, चिट्ठी को निकाल कहै—
'कहो मेरे खाने काज बात क्या? सुनाय के'॥
'बोलती थी ठाकुर पे, बोले नहि कुछ अब!'
क्रोध बसे टुक कीना धज्जियाँ उड़ाय के'।
जाय कहै ठाकुर से 'सूर्य' कहै रुष्ट भये
ऐसे मूर्ख सेती सुज्ञ कहा फल पाय के॥९८॥

ठाकुर ने एक नया सेवक रखा। न योग्यता की परख की और न योग्य बनाया।

ठाकुर को अन्य ग्राम के ठाकुर से कुछ काम था। अत वहाँ सदेशा भेजना था। ठाकुर ने पत्र लिखा। अपने परिवार के लोगो को सुनाया। वह सेवक भी बाहर बैठा हुआ सुन रहा था। ठाकुर ने

चिट्ठी उस सेवक को दी और कहा—'जाओ, जल्दी और यह चिट्ठी ठाकुर साहब को दे देना।'

सेवक कुछ दूर गया। उसे विचार आया कि मेरे खाने का वहाँ क्या प्रबन्ध होगा ? उसने चिट्ठी निकाली। उसे पढ़ना तो आता था नही। उसने चिट्ठी खोली और जैसे ठाकुर ने उसे मुँह के सामने रखी थी और जिससे ठाकुर का मुँह ढँक गया था, वैसे ही उसने भी चिट्ठी रखी। फिर उससे पूछने लगा—'बोलो, मेरे खाने का वहाँ क्या प्रबध होगा ?' उसने ऐसे तीन बार पूछा। परन्तु चिट्ठी से क्या उत्तर मिलता ! उसे बड़ा क्रोध आया। वह तेवर चढ़ाकर जोर से बोला—'क्यो री ! मुझसे बोलती क्यो नही है ?' फिर भी उत्तर न मिला। अब तो आग-बबूला हो गया, वह और उबलता हुआ बोला—'ठाकुर से तो मजे मे बोलती थी ! और अब क्या हो गया है तुझे, जो बोलती नही है। ले, अब तुझे मजा चखाता हूँ !' उसने चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े करके, फेक दिये। फिर ठाकुर के पास पहुँचा। ठाकुर न पूछा—'क्यो जी ! तुम अभी तक नही गये ?' नौकर बोला—गया था। पर पीछा आ गया !' ठाकुर—'क्यो आ गये वापिस ?' सेवक रुखे स्वर मे बोला—'कैसी नालायक चिट्ठी दी आपने ! आपसे तो वह बोल रही थी खूब ! और मैंने एक बात पूछी तो उसका उत्तर भी नही दिया !'

ठाकुर ने पूरी बात जानी तो उसे उसकी मूर्खता पर हँसी आई और नाराजी भी।

शिक्षा—(१) काम योग्य व्यक्ति को सौंपने से ही इष्ट फल की प्राप्ति हो सकती है।

(२) अयोग्य व्यक्ति से कार्य करवाने पर हानि ही उठानी पड़ती है।

(३) अच्छी तरह से समझे बिना कार्य नहीं साधा जा सकता है। इसीलिये कहा गया है कि पहले ज्ञान है और बाद मे क्रिया।

(४) अपने अधीनस्थ व्यक्ति को योग्य न बनाने पर स्वय के कार्य मे ही हानि होती है।

(५) गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्य को योग्य बनाये।

—:—:—

(९८) खाओ फूट और वैर

अंग्रेज ने फलों की दुकान देख नाम पूछा,
सब ही फलो का नाम दिया है गिनाय के।
जामे वैर और फूट नाम सुन खुश हुआ—
'वाह रे! अमूल्य मेवे, हिंद में विभाय के'॥
हिन्दुओ में दो ही मेवे मुबारिक रहों, यांसे—
विदेशी की दाल गली, राज करे आय के।
दुःख है कि तो भी हिन्दू, छोड़े फूट-वैर नाहि,
'सूर्यमुनि' दिये याने गुलाम बनाय के॥९९॥

उस समय की बात है, जब भारत मे अंग्रेजों का शासन जम ही रहा था। एक अंग्रेज भारत के एक शहर मे घूम रहा था। उसने मेवो की दुकान देखी, वहाँ मेवे खरीदे। फिर आगे गया तो उसे फलों की दुकान दिखाई दी। वहाँ फल खरीदने वालो की भीड़ लगी हुई थी। वहाँ से लोग दो प्रकार के फल ही ज्यादा खरीद रहे थे।

अंग्रेज भी आकर्षित हुआ। जब भीड़ कुछ कम हुई तब वह भी उस दुकान पर पहुँचा और उसने फलो के नाम पूछे। दुकानदार ने सभी फलो के नाम बता दिये। फिर उसने बहुत बिकनेवाले फलो के नाम पूछे। तब दुकानदार ने एक फल का नाम बताया फूट (खरबूजे जैसा एक फल) और दूसरे फल का नाम बताया वैर।

अंग्रेज ने नाम दुहराया—'फूट और वैर?'—फिर वह खुश होता हुआ बोला—'ये यहाँ बहुत पैदा होते हैं क्या?' दुकानदार बोला—'हाँ, बहुत होते है! आपको जितने चाहिये, उतने दे सकता

हूँ !' अंग्रेज बोला—'वाह भाई ! ये हिन्द के अमूल्य मेवे हैं। यहाँ के मेवो को यही शोभायमान होने दो ! हमे नही चाहिये।'

एक कथावाचकजी खडे थे वही। उन्होने सारा संवाद सुना। उन्हे अग्रेज की वात में 'फूट' और 'वैर' शब्द मे श्लेष लगा। उन्होने सोचा-सचमुच ही हिन्दुओ मे यो दोनो फल मुबारिक हो रहे है। इन्हीं के कारण इन मुट्ठी भर विदेशियो ने करोडो भारतवासियो पर शासन किया है। जयचन्द और पृथ्वीराज ने खूब खाये ये फल। पारस्परिक फूट और वैर के कारण ही विनाश की यहाँ ताण्डव-लीला हुई है। इन्ही के कारण सिंह जैसे पराक्रमी भी दासता की शृंखला में जकड़ गये है। कथावाचक जी वहुत समय तक इसी विचार मे डूब रहे।

कथावाचक जी ने उस दिन की कथा में यही विषय लिया और उपसहार करते हुए कहा—दु ख है कि हिन्दवासी इस फूट और वैर से इतनी हीनावस्था को प्राप्त हो गये है। फिर भी इन्हे छोडना नही चाहते हैं वन्धुओ ! अब तो जागो ! और इनका परित्याग कर दो।

शिक्षा—देश, समाज, जाति और धर्म-सर्वत्र फूट और वैर के कारण ही हानि होती है। अत हमे इन दूषणो को छोड देना चाहिये।

---

(९९) वह पास हुआ बिन जाये विलायत

कहा अंग्रेज ने देशी नरेश को–
'भेजो विलायत राजकुमारा।
बन जायगा सभ्य सभी टर में,
'सुनिये तुम साहिब बैन हमारा ॥
वह पास हुआ बिन जाये विलायत
मूते खड़े हि खड़े हरबारा।
'मुनिसूर्य' कहे छुरी काँटे से खाय
कमी क्या रही अब कीजे उचारा' ॥१००॥

अग्रेजो ने भारत के अधिकाश भाग पर शासन जमा लिया था। देशी रियासतो पर भी उनकी सत्ता का सिक्का चल रहा था। अधिकाश अग्रेजो की दृष्टि मे भारत सभ्यता-सस्कृति मे पिछडा हुआ था और वे यहाँ के लोगो के हृदय पर भी इस वात की छाप अकित कर रहे थे—कर चुके थे । यो भी शासित वर्ग शासक की सभ्यता-सस्कृति से प्रभावित हुए बिना रहना नही है। शासित जाति सभ्यता मे उच्च होते हुए भी शासक जाति मे आदर पाने के लिये अपनी सभ्यता का परित्याग करके, शासक-जाति की सभ्यता को अपनाने लगती है। क्योकि शासक-जाति के लोग उन्हे हेय दृष्टि से देखते है और उनके रीति-रिवाजो की खिल्ली उडाते है।

ऐसे ही समय की बात है। अग्रेज यहाँ के शासक थे। अत वे यहाँ के लोगो को अपनी सस्कृति-सभ्यता के रग मे रगना चाहते थे और वे लोग प्रजा को अपने देश मे लेजाकर, उन्हे बाकायदा सभ्यता की शिक्षा देते थे। एक देशी नरेश से वात ही वात मे एक अग्रेज अफसर ने कहा—'आप राजकुमार को हमारे यहाँ भेजे । वहाँ उन्हे अच्छा उच्चकोटि का शिक्षण दिया जायेगा और वे सचमुच मे सभ्य जगत के चमकते हीरे बन जायेगे !' राजा ने कहा—'आपकी वात ठीक ही है। पर उसे अव विलायत जाने की आवश्यकता नही है !' अफसर ने चौंककर पूछा—'क्यो ?' राजा ने मुसकाते हुए कहा—'साहव ! वह विना विलायत गये ही सभ्य वन गया है। खड़े-खडे पेशाव करना और छुरी-काँटे से खाना उसने सीख लिया है !' अफसर ने कहा—'तो क्या हमारी सभ्यता इतनी ही है !' राजा ने ठडे स्वर मे कहा—'यह तो मै क्या जानूँ, साहव ! परन्तु मैंने अभी तक यही देखा है कि जो भी विलायत जाता है, वह और कुछ सीखकर आता है या नही, परन्तु यह सव सीखकर ही आता है । मानो, शासन करना इन्ही वातो मे समाया हुआ है।'

अफसर ठगा-सा देखता रह गया।

शिक्षा—(१) दूसरे की सभ्यता और संस्कृति से गुण ग्रहण करना चाहिये—दोष नही। परन्तु होता यह है कि व्यक्ति बाह्य बातो मे उलझकर, गुण तो ग्रहण नही कर पाता हैं। परन्तु दोषो को अपना लेता है। अत दूसरो से कुछ ग्रहण करते समय सावधान रहना चाहिये।

(२) अपनी सभ्यता का अभिमान अच्छा नही है।

(३) सत्ता कठोर श्रम से प्राप्त होती है—शासक की बाह्य बातों को अपनाने से नही।



(१००) दुष्ट शिष्य किये दुःख भारे है

वांस पर तैल चोल, अग्नि से सरल करे,
एक मूढ शिष्य देख, हृदय विचारे है।
'मेरे गुरु वायु के विकार सेती भये वांके,
सरल उपाय पायो'—हर्ष दिल धारे है॥
ठाम आय, गुरु पर तैल चोल, अग्नि पर—
रखे मूढ, करे गुरु आक्रंद अपारे है।
छुड़ावे गुरु को लोक, सबै तिरस्कार करे,
कहै 'सूर्य' दुष्ट शिष्य किये दुःख भारे हैं॥१०१॥

महन्त कृष्णदास अकेले थे। वृद्धावस्था होने आई थी। अभी तक कोई शिष्य नही हुआ था। इससे महन्तजी बडे खिन्न रहते थे। एक वार कही से भटकता हुआ एक बालक आकर, उनके प्रांगण मे वैठ गया। उसके कपडे फटे हुए थे। वह भूखा था। महन्तजी को देखकर रोने लगा। महन्तजी ने पूछा—'तुम कौन हो?' लडके ने उत्तर दिया—'भिखारी हूँ'। 'तुम्हारे माँ-बाप कहाँ है?' बालक ने आकाश की ओर संकेत करते हुए कहा-'वहाँ।' बालक ने अपना पेट दिखाया।

महन्त ने उसे कुछ खाने को दिया और फिर पूछा—'तुझे कहाँ जाना है ?' बालक बोला—'आपके पास ।' महन्त ने बडी प्रसन्नता से उसे अपना शिष्य बना लिया और उसका नाम रखा भिखारीदास । भिखारीदास बडा होने लगा और महन्तजी वृद्ध होते जा रहे थे । उनकी कमर झुक गई थी । भिखारीदास को उनका झुककर चलना अच्छा नही लगता था ।

एक बार भिखारीदास पास के गाँव से भिक्षा लेकर लौट रहा था । उसने रास्ते मे एक बात देखी । एक व्यक्ति टेढे बाँसो पर तैल लगा लगाकर और उन्हे अग्नि पर तपाकर सीधे कर रहा था । यह दृश्य देखकर भिखारीदास सोचने लगा—'अहा ! कितना चतुर है यह ! बास को सीधे बना लेता है । यह तो बहुत ही अच्छा उपाय है—सीधा और सरल । गुरुजी दवा करते-करते थक गये हैं । परन्तु वायु से टेढी बनी उनकी कमर अभी तक सीधी नही हुई है । इस उपाय से उनकी कमर जरूर सीधी हो जाएगी ।

वह महन्तजी के पास आया और कहने लगा—'गुरुजी ! आज मैं ऐसा उपाय सीखकर आया हूँ कि उससे आपकी कमर सीधी कर दूँगा ?' उसने अग्नि जलाई । गुरुजी की कमर पर तैल लगाया और गुरुजी को पकडकर अगारो पर लिटाने लगा । गुरुजी ने पूछा—'यह क्या कर रहा है ?' वह बोला—'गुरुजी ! आपकी कमर सीधी कर रहा हूँ ।' उसने जबर्दस्ती गुरुको अगारे पर लिटा दिया । गुरुजी जलने लगे । वे उठने लगे । परन्तु उसने नहीं उठने दिया । गुरुजी ने कहा—'दुष्ट ! मुझे छोड दे !' फिर भी उसने गुरुजी की बात पर ध्यान नही दिया । महन्तजी चिल्लाने लगे । लोग इकट्ठे हो गये और उन्होने उन्हे संकट से उबारा ।

उससे लोग बोले—'क्या गुरू को मार रहे थे ?' भिखारीदास ने कहा—'नही, मैं तो इनकी सेवा कर रहा था ।' और उसने सारी बात कह सुनाई । लोग बोले—'मूर्ख हो तुम । क्या सभी जगह एक ही उपाय से काम चलता है ?' वह बडा लज्जित हुआ ।

शिक्षा—(१) मूर्ख मनुष्य से सेवा करवाना अच्छा नही है।

(२ गुरु बनने की लालसा से दु ख उठाना पड़ता है।

(३) जो परमार्थ को नही समझता है, उसे शिष्य बनाना अनुचित है।

(४) विवेक के विना सेवा कुसेवा हो जाती है।



(१०१) जाकी लाठी भैंस ताकी

सुजान से दिखा लट्ठ, लेन लाग्यो डाकू भैंस,
'कैसे जाऊँ घर बिन सहारे' वो बोल्यो यों।
डाकू पूछे—'रतौंध है?' कहे वो—'हाँ' ताके हाथ
लाठी दई, फेर डाकू भैंस लई डोल्यो यों॥
ललकार्यो ताको तबै, होश उड्यो है डाकू को
'जाकी लाठी भैंस ताकी' मर्म ताने खोल्यो यों।
भग्यो डाकू भैंस छोड़, कल-बल से त्यों धर्म—
रखो 'सूर्य' शक्ति से हो मुक्ति-भाव तोल्यों यो ॥१०२॥

एक गाँव मे 'सुजान' नाम का एक व्यक्ति रहता था। वह एक वहुदुग्धा भैंस को लेकर कही से आ रहा था। रास्ते मे रात हो गई। एक डाकू ने उसका रास्ता रोक लिया। उसके हाथ मे वहुत मजबूत लाठी थी। सुजान यो हृष्ट-पुष्ट और साहसी आदमी था। परन्तु इस समय वह नि शस्त्र था। वह डाकू को देखकर कुछ डर गया। डाकू ने उससे कहा—'चलो, भैंस हमारे हवाले करो।' सुजान गिडगिड़ाकर वोला—'भले तुम भैंस ले जाओ। तुम्हारे यहाँ रहेगी यह? पर मैं घर कैसे पहुँचूँगा! भैंस के सहारे तो मै यहाँ तक चलकर आया हूँ?' डाकू ने उसे पूछा—'क्या तुम्हे रतौंधी आती है?' सुजान ने मानो धूजते हुए कहा—'हाँ! यही तो बात है।' डाकू ने देखा—सहज मे ही

बिना कुछ किये और बिना लड़े ही भैस हाथ आ रही है तो दे दूँ इसे लाठी !

उसने सुजान से पूछा—'यदि तुम्हे लाठी मिल जाय तो उसके सहारे तुम घर चले जाओगे !' सुजान ने हर्षित होकर कहा—'यही तो चाह रहा हूँ !' डाकू ने सुजान के हाथ मे लाठी दे दी । लाठी उसके हाथ मे आते ही उसने तेवर बदले । वह गर्जकर लाठी तानते हुए बोला—'खबरदार ! जो भैस के हाथ लगाया तो सिर फोड दूँगा ! देखो यह लाठी !' जब डाकू ने सुजान का साहस देखा, तब वह घबडा गया । उसने सोचा—यह तो मेरे जैसे दस-पन्दरह को पूरे कर दे ऐसा है । परन्तु फिर भी वह गुर्राता हुआ बोला—'क्या बोले हो ! मेरी ही बिल्ली और मुझसे ही म्याऊँ ! मेरी ही लाठी मुझपर तानोगे ?' सुजान हँसकर बोला—'अब यहाँ से चुपचाप चले जाओ । जब तक तुम्हारे हाथ मे लाठी थी तब तक मै भयभीत होकर यह सोचता रहा कि भैस मेरे हाथ से गई । परन्तु अब लाठी मेरे हाथ मे है । यह तो जिसकी लाठी उसकी भैस ! कुछ समझे !' डाकू भैस को वही छोडकर भाग खडा हुआ ।

शिक्षा—(१) शक्ति और साहस से ही आत्मरक्षा हो सकती है ।

(२) जैसे सुजान भैस मे लाभ उठाता था, वैसे ही हम धर्म और सघ से लाभ उठाते है । अत हमे—'कल-बल से त्यो धर्म रखो'—वैसे ही धर्म और सघ की रक्षा करना चाहिए ।

(३) 'शक्ति से ही मुक्ति' अर्थात् मुक्ति शक्ति से ही या वीर्य-पुरुषार्थ के उपयोग से ही प्राप्त हो सकती है । वीर्यवान ही मुक्त हो सकते हैं—रह सकते हैं ।



प्रशस्ति

जिन-संघ-प्रभावक गणिराज धर्मदास
तस्य शिष्य हरिदास मुनि मन भावे हैं।
तस्य वंश-पूज्यराज नन्दलाल गुरुराज
चरण-कमल-शीस 'सूर्यमुनि' नावे है।।
चन्द्र-निधि-निधि-चन्द-अब्द-बम्बई-चौमास
दृष्टान्त-शतक पूर्ण कर गुण गावे है।
पढ़ो शुभ भावे ग्रन्थ, सार ग्रही चलो पथ,
तीर्थनाथ-तीर्थ जय, यही चित्त चावे है ।।१०३।।

भगवान **महावीर देव** की शासन-परम्परा मे बासठवें युग-प्रधान पूज्य **श्री धर्मदासजी** महाराज हुए—ऐसी मान्यता है। उनके शिष्य **श्री हरिदासजी म.**, हुए। उनकी शिष्य-परम्परा क्रमश इस-प्रकार है—श्री सारोजी म.. श्री खेमराजजी म., श्री उदयराजजी म. श्री खुसालजी म श्री मयाचन्द्रजी म, श्री अमरजी म, श्री केशवजी म श्री मोखमसिहजी म, श्री हिन्दुमलजी म, श्री गिरधारीलालजी म। श्री गिरधारीलालजी म के शिष्य रत्न थे पूज्य श्री नन्दलालजी म. और आपके विनेय रत्न हैं—गुरुदेव श्री सूर्यमुनिजी म। आप अपने पिताजी महाराज श्री वच्छराजजी म के साथ दीक्षित हुए।

विक्रम सवत् १९९१ मे प्रवर्तक पूज्य श्री ताराचन्दजी म. के साथ बम्बई के कादावाडी के उपाश्रय मे गुरुदेव का चातुर्मास था। वही पर इस ग्रन्थ की रचना पूर्ण हुई।

कवित्त के चतुर्थ चरण मे—'शुभ भाव से ग्रन्थ पढने का और सारा ग्रहण करके सन्मार्ग पर चलने का' कहकर, तीर्थनाथ-तीर्थङ्कर भगवान महावीर देव और उनके तीर्थ की जय रूप अत्य मङ्गल किया है।

माघ शुक्ला २, वि सा २०३२,
बदनावर।

|| णमो आयरियस्स धम्मदासस्स मुणिंदस्स ||

उपदेश-शतक

मंगल

परमेष्ठी मंत्र (कवित्त)

परमेष्ठी महामन्त्र, नौ पद सम्पदा अष्ट,
महा श्रुत–स्कन्ध, पूर्व-सार मन भाइये।
अड़सठ अक्षर है, अडसठ तीर्थ जामे
लीन होय पाप–मल, सकल गमाइये ।।
दो है देव-पद, तीन गुरु-पद-पद पूजो
कर नमस्कार धर्म-आराधना पाइये।
आप मे अभेद ध्याओ, देव-गुरु-धर्म तीनो
मुगति की कुंजी मत्र, 'सूर्य' गुण गाइये ।।

अरिहंत के बारह गुण

१ देशना अशोक-तल, २ पच वर्ण पुष्प-वृष्टि,
३ चामर विजाय, ४ वाणी योजन-विस्तारो है।
५ सिहासन रत्नमय, ६ पूठे भा-मण्डल सोहै,
७ छत्र तीन छत्र पर, ८ भेरी–शब्द भारो है ।।
९ सौ-सौ कोस व्यथा नाहि, १० लोकालोक जाने, सब–
११ समझे सुभापा, सेवै १२ सुर-नर-नारी है।
कहत यो 'सूर्यमुनि' बारे गुणधारी गुणी,
ऐसे अरिहत ताको वन्दना हमारी है. ।।२।।

सिद्ध के आठ गुण

ज्ञान-दर्शनावरण गये १ ज्ञान–२ दर्श हुओ,
३ निराबाध सुख पाया वेदनी विदारी है।
४ क्षायिक हो मोह तज, ५ अक्षय हो आयु तज
नामकर्म क्षय से ६ अमूर्त गुण–धारी है।।
गोत्रकर्म क्षय हुआ, गुण हो ७ अगुरुलघु,
अन्तराय क्षय से ८ अनन्त बल-भारी है।
कहत यो 'सूर्यमुनि' आठ गुणधारी गुणी,
ऐसे सिद्धप्रभु ताको वन्दना हमारी है।।३।।

आचार्य के छत्तीस गुण

५ पच इन्द्री जीते, धरे १४ नवविध ब्रह्मचर्य,
क्रोध-मान-माया-लोभ १८ चारो परिहारी हैं।
दर्शन-चारित्र-ज्ञान-तप-वीर्य २३ पञ्चाचार
२८ पञ्च महाव्रत पाले, ३१ तीन गुप्ति-धारी है।।
इरिया-भाषा-एषणा-आदानादि-निक्खेवणा–
उच्चार-पासादि ३६ पच समिति सुप्यारी है।
कहत यो 'सूर्यमुनि' धारक छत्तीस गुण
ऐसे आचारज ताको वन्दना हमारी है।।४।।

उपाध्याय के पच्चीस गुण

११ ग्यारह सु अग जान, उपांग बारे बखान,
२४ चरण- २५ करण-सित्तरी के गुणधारी है।
चार मूल, चार छेद, आवश्यक सूत्र और
पठित चवदे पूर्व, आगम—आगारी हैं।।
उपदेश-वाणी-सुधा डिगता को थिर करे,
ज्ञान दृग-दाता भवि–जीव–हितकारी है।
कहत यो 'सूर्यमुनि' धारक पच्चीस गुण
ऐसे उपाध्याय ताको वन्दना हमारी है।।५।।

साधु के सत्तावीस गुण

पाले पच ५ महाव्रत, ९ कषाय निवारे चार
१४ पंच-इन्द्री जीते १७ तिहुँ योग सम धारी है।
१८कर्ण-१९ जोग-२० भाव सच्चे २१ क्षमा-२२ सुवैराग्यवन्त
२३ दर्शन-२४ चारित्र- २५ ज्ञान-सम्पन्न-भण्डारी है ।।
२६ वेदनीय-अहियासे २७ मरणान्त-कष्ट सहे
दया के आगार; दोष-भिक्षा के निवारी हैं।
कहत यों 'सूर्यमुनि' सत्तावीम गुणधारी
ऐसे मुनिराज ताको वन्दना हमारी है ।।६।।

गुरुदेव को वंदना

धर्म–उपदेश–दाता, भव्य-मोक्ष-मार्ग-दाता
समकित-रत्न-दाता, शास्त्र के दातारी है।
ज्ञान–रूप नेत्र–दाता, माथा के मुकुट सम
हिया के है हार, जप–तप के आगारी है ।।
कान के कुण्डल सम, रत्न के मजूष सम
धन्य जहाँ विचरे कि सेवे नर-नारी है।
कहत है 'सूर्यमुनि' गुण यो अनेक धारी
ऐसे गुरुराज ताको वन्दना हमारी है ।।७।।

तीर्थंकर

तीर्थंकर की माता के १४ स्वप्न (हरि गीतिका)

१ गज २ वृषभ ३ शार्दूल,४ इन्दिरा ५ वरमाल ६रवि ७ शशि मानिये।
८ इन्द्रध्वजा पुनि ९ कुम्भ १० सागर, ११ पद्म-सरवर जानिये ।।
१२ सुरयान १३ रामी रत्न की अग्नि-शिखा १४ सु–विराजती।
प्रभु गर्भ मे आवे जभी शुभ स्वप्न जननी म्हालती ।।८।।

प्रभू के दान की गिनती (कवित्त)

सोले मासा एक सोनैया को भार होय, ऐसे—
एक कोटि आठ लाख देत नित दान हैं।
सवा दो सै गाड़ा, नौ हजार मण भार रोज,
सवा पेर तक दान देत भगवान है।।
तीन सौ अठ्यासी क्रोड अस्सी लाख सोनैया हो,
'सूर्य' वारा मास-दान गिनती प्रमान है।
भव्य धरे घरे निज, निधान अखूट होय
मिले जाकी प्रभु-दान सो तो भाग्यवान है।।९।।

अरिहंत का बल (हरि गीतिका)

बारह मनुज मिल हो वृषभ,दश वृषभ बल गिनिये तुरी।
हय दोय दश इक महिप हो मिल पान से भैंसे करी।।
गज पान से हो एक सिंह, दो सेस अष्टापद लहो।
दस लाख अष्टापद मिले इक राम-बल ऐसे भनो।।१०।।
युग राम से इक हरी, हरि युग मिले चक्री गिनो।
मिल क्रोड चक्री सुर लखो, सुर क्रोड बल मघवा भनो।।
मिलते अनन्ता इन्द्र यदि लघु आगुली अरिहंत की।
नमती नही 'मुनिसूर्य' यो शक्ति अमित भगवत की।।११।।

प्रभु का आगमन सुन दान देना (कवित्त)

एक क्रोड आठ लाख, सीम सुन दान देत,
समोसरे वारा क्रोड, वारा लाख देश के।
सोनैया दे चक्रपती, चाँदी-दान वासुदेव,
दान-सख्या एक सम, इतनो विशेष के।।
देश वारा सेस, सीम एक लाख आठ सेस,
समोसरे वारा क्रोड सामान्य नरेश के।
कहै 'सूर्य' दान देत, आगम सुनत भवि,
जन्म हो सफल नाम सुनत जिनेश के।।१२।।

समवसरण (सवैया)

मणि-मण्डित आसन राजत है,
सुर-इन्द्र सदा पग-सेव गही ।
मृगइन्द्र--अजा मिलप्रेम धरी,
सुनते जिन--वैन सुभाव लही ।।
मन राग न रोप न है, जिनके,
अरि-मित्र सबै इक भाव मही ।
गुण-अंत न आवत 'सूर्य' कहे,
तुमरी छवि मोपे न जात कही ।।१३।।

धन्यवाद के योग्य (सवैया)

धन्य यहे पृथ्वी, कमला पुनि, धन्य सभी जग के नर-नारे ।
देश रु पाटन-गाम सुवत्सर, मास-सुपक्ष-सुवासर भारे ।।
धन्य घडी-पल-वार सबै सद्-भाग्य महा मिले देव उचारे ।
'सूर्य' सभी धनवाद के लायक, होय जहाँ जिनराज पधारे ।।१४।।

पैंसठिया-यंत्र-जिनस्तुति (छप्पय)

आदीश्वर-अरनाथ, नमि-अजित जिन श्री पारस ।
नेमी--शान्ति--सुविधि--अनंत--अभिनंदन वारस ।।
मुनिसुव्रत--श्रेयास, विमल जिन धर्म--सुपद्म ।
श्री मल्लि--वासुपूज्य, कुंथु--शीतल सुख--सद्म ।।
सुपार्श्व-संभव-चन्द्र जिन, सुमति-वीर-गुण गाइये ।
संघ चतुर पणवीसवें, पैंसठ यंत्र सुध्याइये ।।१५।।

कुंथु वीर जिन ऋषभ, चन्द्रप्रभ धर्म ध्याऊँ ।
श्री पार्श्व-सुमति-सुविधि-अनन्त-शान्ती-गुण गाऊँ ।।
अभिनन्दन प्रभु-पद्म-विमल मुनिसुव्रत देवा ।
नेम--सुशीतल--वासुपूज्य--मल्ली--नमि--सेवा ।।
संभव-श्रेयास-अरपति-प्रभो ! पाठक-पणवीस-गुण मुदा ।
अजित-सुविधि पैंसठ यंत्र से 'सूर्य' सुमर सुखकर सदा ।।१६।।

रिठ नेमी सम्भव-सुविधि-धर्म-शान्ति जिन देवा ।
अनंत-सुव्रत-नमि-अजित, शशि नाभेय अखेवा ।।
सुपार्श्व-विमल श्रीमल्लि, धनुष तन है पणवीसा ।
अर-वीर-सुमति-पद्म वासुपूज्य हैं जगदीशा ।।
शीतल–सिज्जंस–कुंथु जिन, पारस अभिनंदन विभो ।
पैंसठ यत्र चौवीस जिन, 'सूर्य' ! सुमर सुखकर प्रभो ।।१७।।

धर्म-चन्द्र जिन ऋषभ, वीर-कुंथु प्रभु शान्ति ।
अनंत-सुपार्श्व सुमति, पार्श्व-वपु शोभित कान्ति ।।
नेमि–मुनिसुव्रत विमल, पद्म–अभिनंदन वदो ।
सम्भव-नमि जिन मल्लि, वासुपूज्य तिहुँ जग-चंदो ।।
शीतल-सुविधी-अजित जिन, भावना पच्चीस भाइये ।
अर-श्रेयांस चौवीस जिन, पैसठ यत्र युत ध्याइये ।।१८।।

तीर्थंकार के वर्ण (हरि गीतिका)

श्री वासुपूज्य सु पद्मप्रभ तन रक्त वर्ण सु जानिये ।
शशि-पुष्पदन्त सु श्वेत तनयुत् अतुल काति वखानिये ।।
प्रभु नेम-मुनिसुव्रत असित श्री पार्श्व-मल्ली नील है ।
जिन शेष षोडश कनक तन भजिये सदा शिव-लील है ।।१९।।

वीर प्रभु के दस स्वप्न (कवित्त)

पिशाच पछाड्यो धुर, तासे जीते मोह कर्म,
दूजे श्वेत कोकिला से शुक्ल ध्यान ध्यायो है ।
विचित्र सुपखी देख्यो, देशना विविध दीनी,
चौथे दोय रत्नमाला, धर्म दो वतायो है ।।
श्वेत गाय टोला देखे, तासे थापे तीर्थ चार,
पद्मसर कज छायो, सुर सेवा सार्यो है ।
स्वभुजा समुद्र तरे, ससार-समुद्र तरे,
सूर्योदय देख्यो ज्ञान, केवल उपायो है ।।२०।।

नर-क्षेत्र आता विट्यो, तासे जग-यश फैल्यो,
मेरु-नग चूलिका पे सिंहासन ठायो है।
समवसरण में यों विराजे दसवें स्वप्न,
ऐसे दस स्वप्न ही का फल यों उपायो है॥
बारा वर्ष तेरे पक्ष बीते, छेली रात, चौथे—
पेर, निद को उडाते स्वप्न यों लखायो है।
भगवती में शतक सोलवें उद्देशे छट्ठे
'सूर्यमुनि' तिहाँ स्वप्न-भाव दरशायो है॥२१॥

वीर के तेरह अभिग्रह (सवैया)

१ नृप राज-सुता कँवरी, २ तप-अट्ठम,
३ दासि बने ४ बिकती सुबजारी।
५ सिर-मुण्डित ६ व्याकुल ७ सूप धरी,
८ पग-बेड़ी परी ९ करमें कड़ी डारी॥
१० सिर-काछव बांध ११ पगे मधि देहरी
१२ भावन भावत नैन १३ में वारी।
'मुनि सूर्य' कहे पट् मासिक, बोल—
त्रयोदश वीर अभिग्रह धारी॥२२॥

जैन दर्शन (अनेकान्त) [हरि०]

मिलती नदी सब सिन्धु में तब, भाव नदियों का गया।
पर भाव नदियों में उदधि का, ना कहीं पाया गया॥
यों अन्य दर्शन पृथक् हैं, सब भाव तुममें आ गया।
पर अन्य दर्शन में प्रभो! तव भाव ना देखा गया॥२३॥

आप्त - आगम (सवैया)

आप्त–परूपित आगम–वैन
पराभव हो परके नहि द्वारा ।
अर्थ-प्रमाण से बाधित हो नहि,
सर्व -हितावह-तत्त्व-विचारा ॥
वाद-इकान्त-मिथ्या-मग-खंडन,
जीव-अजीव न एक उचारा ।
'सूर्य' कहे यह आगम–लक्षण,
सुज्ञ सुने अघ-पुञ्ज-विडारा ॥२४॥

ज्ञेय-स्वरूप

जीव का स्वरूप

द्रव्य हु एक असग यथा, पर—
भाव से मुक्त स्व-आतम जानो ।
क्षेत्र–असख्य–प्रदेश–प्रमाण—
रहे निज आतममयी अवगानो ॥
काल हु से अजरामर शाश्वत
है स्व-प्रजा परिणाम पिछानो ।
भाव से शुद्ध-विकल्प विना यह
चेतन 'सूर्य' सुज्ञान महानो ॥२५॥

जीवों की संख्या (कवित्त)

बालाग्र व्योम मे श्रेणि असख्य ताका प्रतर
प्रतर मे असख्य निगोद गोला मात है ।
एक-एक गोला माहि असख्य निगोद तन
एक शरीर में जीव अनंता समात है ॥

असंख्य प्रदेश एक जीव मे है 'सूर्य' कर्म—
वर्गणा अनती एक प्रदेश मे पात है।
एक शरीर के जीव समै-समै सहरे,—
अनंत काल चक्र मे न जीव अंत आत है ॥२६॥

ढाई द्वीप के बाहर दस बोल नहीं

अढी द्वीप के वाहिर दस बोल पावे नाहि,
१ काल चक्र २ गाज ३ बीज ४ वर्षा हु न थावे है।
५ बादर अगनी, ६ नदी-नाल रु ७ पहाड़ नही
८ सोना और रूपा तणी आगर न पावे है ॥
९ कोई पण मनुष्य को वास तिहाँ होत नाहि,
१० चन्द्र और सूर्य के न मंडल दिखावे है।
कहत है 'सूर्यमुनि' जिनवाणी—अनुसार,
ज्ञानी खीचकर सार, ऐसो फरमावे है ॥२७॥

अर्ध पुद्गल परावर्तन और पडवाई समदृष्टि का प्रमाण

जैसे चउद राजु को आकाश-प्रदेश तैसे,
अनन्त राजु के यो प्रदेश भेला करिये।
आकाश-प्रदेश ताके समय-समय हरे,
अनन्त सर्पणी-उत्सर्पणी काल लहिये ॥
ऐसे सव आकाग-प्रदेश खाली होय याको,
अर्ध–पुद्गल–परावर्तन काल कहिये।
इतने अनन्त ;राजु–प्रदेश समान जीव,
'सूर्यमुनि' पडवाई समदृष्टि गहिये ॥२८॥

(दोहा)

सत्य वचन प्रिय मृदु कहे, कठिन नहि कोय।
कनक-दान से भी अधिक, कीमत उसकी होय ॥

दस आश्चर्य (कवित्त)

१ उपसर्ग वीर लह्यो, धुर २ वाणी खाली गई,
३ गर्भ हर्यो, निज रूप ४ सूर्य-शशि आये हैं।
५ चमरेन्द्र गये चढ पहले स्वर्लोक माँय,
वीर समै अच्छेरा यो पच प्रकटाये है ।।
६ युग वासुदेव मिले, ७ मल्लि त्रिय वेद पाये,
८ युगल से कुलोत्पत्ति, ९ असाधु पुजाये हैं।
१० एक समै शत अठ, सीझे ऊँचे तन वाले,
दस यों अच्छेरा 'सूर्य' प्रभुने वताये है ।।२९।।

भवान्त सूचक चौदह स्वप्न

१ गज आदि पंक्तिचढे, अब्धि पूर्व-पश्चिमात—
जेती २ दामणी समेटे, ३ रज्जु काट डारे है।
४ उकेरे कृष्णादि सूत, ५ स्वर्ण आदि ढग चढ़े,
६ तृण-पत्र आदि राशि बिखेरे उछारे है ।।
७ शर स्तभादि उखाड़े, ८ क्षीरादि के कुंभ तोके,
९ पद्म सर मे प्रवेशे, लहे १० अब्धि-पारे है।
११ रत्नमय भवन मे प्रवेशे, १२ विमान चढ़े,
स्वप्न देख जागे 'सूर्य' भव नही धारे है ।।

(दोहा)

लोह आदि के ढ़ग चढ़े, दे मद्यादि घट फोड़।
स्वप्न लखे, दूजे भवे, भव-भमना दे छोड़ ।।३०।।

मनुष्य की दशाएँ (छप्पय)

प्रथम दशा है बाल, रमत क्रीडा है दूजी।
तृतिय मंद विषयांध, रहे चौथे वल झूंझी ।।
पंचम प्रज्ञावंत, छठे इन्द्रिय–बलहीना।
रोग सातवे होय, आठवे अप्रिय दीना ।।

नवमे मुख मूँघे रहे दसवे सोवत पर वशा ।
'सूर्य' कहे यो पुरुप की, प्रभु कही है दस दशा ।।३१।।
(मूँघे=गूँगे)

अठारह भार वनस्पति (कवित्त)

तीन क्रोड उपर एक्यासी लाख बारा सेस,
एक सो सीतर मण याको भार कहिये ।
पुष्प चार, फल आठ, वेली षट् अठार यो,
कंटक-सुगंध छे-छे, गंध बिन लहिये ।।
चार कटु, दोयतिक्त, तीन मिष्ठ तीन मधु,
एक क्षार, एक विष, कपाय दो गहिये ।
अविप दो भार यों अठार भार वनस्पति,
सर्वजाति-पत्र-भार 'सूर्य' यो समझिये ।।३२।।

साधु-धर्म

दस कारण से दीक्षा

होय १ स्वछद रु २ द्वेष वशे
३ अति दैन्य वशे, निशि ४ स्वप्न निहारे ।
५ वैन मुनी अरु ६ जाति संभार के
होय ७ महागद देह—विकारे ।।
पाय ९ अनादर, वोध दिये ९ सुर,
१० अंगज प्रेम वशे सु विचारे ।
'सूर्य' कह्यो जिन—आगम मे,
दस कारण से नर संयम धारे ।।३३।।
(५ उपदेश सुनकर, ६ पूर्वभव का स्मरण करके (जाति स्मरण से)

आलोचना सुनने वाले में दस गुण

१ शुद्ध हो आचार-वत, रु २ प्रायश्चित्त-जानकार,
३ पच-व्यवहार-ज्ञाता, ४ लज्जा के निवारी है।
५ शुद्धि–करन–समर्थ, ६ आलोचक–शक्ति–जान,
७ अन्य को न कहे दोष, गीतारथ भारी है।।
दोषों के बतावे दोष, ऐसे हैं ८ अपाय–दर्शी
९ दृढधर्मी १० प्रियधर्मी, महा उपकारी है।
सुने है जो आलोयणा, तामें पावे दस बोल,
'सूर्य' धन्य–धन्य जिनधर्म बलिहारी है।।३४।।

आलोचना करने वाले के दस गुण

१ शुद्ध जाति से सम्पन्न, २ कुलवंत–३ ज्ञानवंत,
४ विनय से हो सम्पन्न, दृढ ५ श्रद्धा-धारी हैं।
शुद्ध हो आचार-रुचि ६ चारित्र से हो सम्पन्न,
सहिश्णुता के धारक, ७ क्षमा के आगारी है।।
८ इन्द्रिय-दमनहार, करे ९ माया–परिहार,
१० आलोय के पश्चाताप, जरा न विचारी हैं।
दस गुणधारी जेह, मुनि अति श्रेष्ठ होय,
आलोयणा लेवे तेह, 'सूर्य' यों उचारी है।।३५।।

आलोचना के दस दोष

१ धूजत आलोवे दोष, २ दण्ड-अनुमान करे,
३ कहे देखे-देखे दोष अनदेखें टाले है।
४ छोटे-छोटे दोष कहे, बड़े का न देवे भेद,
५ या कहे बादर दोष, सूक्ष्म न निहाले है।।
६ मंद-मंद स्वर, ७ जोर-जोर से या बोले दोप
८ अनेक जनो के पास दोप यो सभाले है।
९ अगीतार्थ–१० दोपसेवी पास आलोचना करे
'सूर्य' कहे दस बोल अविनीत झाले है।।३६।।

बारह संभोग

१ वस्त्र-पात्र लेत-देत, २ पढन-पढावन हेत,
३ अन्न-पान ४ वंदना रु, ५ आज्ञा-व्यवहारी है।
६ कार्य सहु करे और, आये को सन्मान देत,
८ परस्पर आवश्यक, ९ वैयावृत्य भारी है॥
१० रहे एक ही स्थान, ११ आसान-आमंत्रण देत,
१२ ज्ञान-गोष्ठी करे सदा, शान्ति मनधारी है।
मुनियो में परस्पर, 'सूर्यमुनि' कहे ऐसे
संभोग ये दुवादस सूत्र में उचारी है॥३७॥

गोचरी के बारह कुल

१ उग्रकुस परधान, २ भोगकुल पुरोहित,
३ राजन्य राजादि और ४ क्षत्रिय कहाइये।
५ इक्ष्वाकु है आदि कुल, ६ हरिवश कृष्णकुल,
७ एसिय गोपाल वैश्य ८ वणिकादि पाइये॥
९ गंडाग उद्घोषक, १० कोट्टाग सुथार कुल,
११ ग्रामरक्ष १२ वोक्कसालि माली आदि गाइये।
वारा कुल और ऐसे अदुगुंछनिक कुल,
गोचरी समण, करे 'सूर्य' मन लाइये॥३८॥

आठ अवगुणधारी एकल विहारी साधु

आठ अवगुण धारी, एकल विहारी होय
प्रथम सो क्रोधव्रत, मान-मद छायो है।
चौथे रस-इन्द्रिय के लोलपी विवश महा,
कपटी-धूरत-छली मन लोभ भायो है॥
ज्ञान को गरव छट्ठे, होय जाके रोम-रोम
वुद्धि-मति-हीन विपरीत मत धार्यो है।
धरे आर्त-रौद्रध्यान, आठवे कठोर उर
'सूर्य' एते अकेले मे, औगुन दिखायो है॥३९॥

आठ गुणधारी एकल विहारी साधु

आठ गुणधारी मुनि, एकल-विहारी बने,
दृढ समकित व्रत, सत्य सो उचारे है।
बहुश्रुत होय दक्ष, औसर चतुर जान
किंचित् न लोभ करे, सदाचार पारे है॥
करे नही कभी क्लेश, समवृत्ति धारक हो
धैर्यवंत होय, बल-वीर्यवत भारे है।
आठ गुण 'सूर्यमुनि' तीजा अंग माही कथे,
ऐते गुणधारी सो तो धन्य अणगारे है॥४०॥

श्रावक धर्म

पञ्चाभिगम्य (धर्म सभा के नियम, (सवैया))

जगनाथ को वन्दन जाय तबै, नृप पच अभीगम पारत है।
१ असि २ चामर ३ छत्र ४ सुवाहन, त्यागत सीस ५ मुकुट निवारत है॥
१ मुख-यत्न करे इक वस्त्र हि से, २ तज सावज ३ निर्वद धारत है।
४ लख वदत, ५ठौड रखे मन, 'सूर्य' यो श्रावक पच विचारत है।४१।

(११) श्रावक दस बातों की चिन्ता करे (छप्पय)

१ मुनि-दर्शन, २ धर्मकथा न सुने, ३ मुनि आय अशुद्ध हो भोज घरे।
४ मुनि देख उठे नहि, ५ भक्ति बने नहि, ६ सघ की सेव ७ न नेम धरे।
८ मुनि छोड़ चले, ९न बने धर्म-चिन्तन, १०निन्दन से नहि दोस हरे।
'मुनिसूर्य' कहै सुध श्रावक यो, दस ठौर निरन्तर सोच करे॥४२॥

श्राविकाधर्म के इक्कीस गुण

१ क्षुद्र नहि २ रूप श्रेष्ठ, ३सोम महा ४ सत्यवादी,
५ पाप से डरत नित, ६ गुण की है ग्राहिका।
७ सरल है ८ सुचि काय, ९ स्नेह-युक्त १० लज्जावत,
११ समभावी १२शुभ दृष्टि, १३धर्म की है नायिका॥

१४ धर्मकथे १५ दीर्घ दृष्टि, १६ सूत्र अर्थ-भेद लहे,
१७ परहित करे नित, १८ प्रकट प्रभाविका।
१९ विनेवती २० गुण-ज्ञाता, २१ लब्ध लखी 'सूर्य' कहे,
एकवीस गुण-धारी साची होत श्राविका ॥४३॥

श्रावक के दस गुण

१ नवतत्व-ज्ञाता होय, २ डिगे ना डिगाये सुर,
३ शका जिनवाणी मे न, ४साध्य सुर धारे ना।
५ ससार के काज सबै मन अनरथ जाने,
६ हाड-मिजी मे रमे जिनधर्म विसारे ना ॥
७ मास में पौषध पट् ८स्फटिक-विशुद्ध-उर,
९ करे परतीत सबै असत्य उचारे ना।
१० मुनि को असन-पान एषणिक शुद्ध देत
कहै 'सूर्य' दस गुण श्रावक विसारे ना ॥४४॥

सामान्य नीति

समय मत चूको

अवसर पे विशल्या, लखन से स्पर्श कियो,
रावण मरण पायो, समै बलवान है।
कंस-वध कियो कृष्ण, हनुमान जस पायो,
सुग्रीव को काम सार्यो, राम गुणवान है ॥
जीवत न पावे नीर, मुँआ वाद देय खीर,
औसर पे उपकार करे सो महान है।
समै चूके सब चूके, लाभ होय समै पाय,
'सूर्य' कहे सब ही मे, समय प्रधान है ॥४५॥

बुद्धि मलिन हो आपत्ति में

बिन कारण क्लेश हुवे छिन में,
अति द्वेष जगे पुनि दंपति मे।
दुःख-दोहग पावत जाय जहाँ,
भय-तस्कर पावत संपति मे ।।
जब हो विपदा तब प्राय सभी,
सुधि भूलत भर्म हुवे मति मे।
'मुनि सूर्य' कहे नहि सूझ परे,
सब बुद्धि मलीन हो आपत्ति मे ।।४६।।

सपूत

जंबुक कोटि मिले कह होवत,
सो न मतंग हने मतवारो।
गर्दभ-सैन्य मिले नर कायर,
देख भगे रन मे हथियारो ।।
तारे असख्य मिले 'मुनिसूर्य' यो
चद विना न हरे अँधियारो।
ऐसे हि पुत्र सपूत विना,
कवहू न करे कुल मे उजियारो ।।४७।।

पिता से विशिष्ट पुत्र

अर्जुन ने करण को, मारा था तो अभिमन्यु,
भेद चक्रव्यूह घुसे नही जरा डरे थे।
भूप दशरथ थे ही गुणवान किन्तु तासे—
पुत्र रामचन्द्र गुणो मे आगे ही वढ़े थे ।।
दुष्यन्त सुरेन्द्र को भी देता था मदद, तासे—
वीर वाल भरत ने सिंह-दन्त गिने थे।
मात-पिता के गुणो का, सन्तान विकास करे
'सूर्य' पुत्र पिता से यो शूर-वीर वने थे ।।४८।।

लाज बिना नर

जिनके न हिये कछु लाज जरा,
हित भान नही, निज को पर हो ।
नहि मानत वैन कभी गुरु का,
अपपान रु मान वरावर हो ।।
नहि भक्ति हु भाव दया दिल मे,
जस, 'सूर्य' कहे नहि संग चहो ।
रहि लाज विना नर के मुख पे,
तुछ मूछ हु पूँछ समान कहो ।।४९।।

पानी की महिमा

पानी विना मुगताफल कंकर,
यों हि तुखार यथा खर है ।
विन साधन साधु, श्रद्धा विन श्राद्ध,
त्रिया विन शील हु कूकरि है ।।
हाथि को मेष समान लखो
विन इज्जत सेठ हु किंकर है ।
'सूर्य' कहे सत या विधि से,
विन पानी हु को विरथा नर है ।।५०।।

इक्कीस जनों का विश्वास नहीं करना

१ वालक २वानर ३ मत्तकरी ४ जल
५ निंदक ६ क्रोधित ७ द्रोहि ८ वली जे ।
९ स्वान १० नखी ११ विपयी १२तिय १३ धूरत
१४ सोकण १५ भूप १६शृंगी नहि धीजे ।।
१७ शस्त्र १८ नदी १८ सिंह २० काग रु २१आग
सवै इकवीस हि वोल गुणीजे ।
'सूर्य' कहे नर सुज्ञ ! सुनो, कव
भूल नही विश्वास ज कीजे ।।५१।।

पत्नी के सात कौल (सवैया)

१ कापट-दंभ तजो मुझसे, २ भर जीवन प्रीत अखंड निभाओ ।
३ गुप्त रखो मत वात, ४गुन्हे विन सीख न, ५गुप्त सुसीख सुनाओ ।।
६ प्यार तजो पर की तिय से, ७ सुख मे दुःख में नित संग रहाओ ।
'सूर्य' कहे यह सात सुकौल प्रमान करो तब कंथ कहाओ ।।५२।।

पति के सात कौल

१ अल्प हि में गुजरान करो, २दुःख-दर्द मे भाग, ३ सुधर्म निभाओ ।
४ भूषन शील शृंगार सजो, ५ पर सम्पत्ति देखत धैर्य रखाओ ।।
६ कायम मेरी जवां पे रहो, ७ तन से मन से नित साथ्य दिलाओ ।
'सूर्य' कहे यह सात सुकौल प्रमान करो तव पत्नी कहाओ ।।५३।।

नैन के तीर

'तलवार की धार, अणी बरछी,
अरु तीर के घाव लगे सुशरीरा ।
'मुनिसूर्य' कहे नहि सेज जिहाँ,
भग जावत कायर, पावत पीरा ।।
घबरावत हो मुझ हाँक सुनी,
नित दास समान रहो मुझ तीरा ।'
तव नार कहे—'तुम कैसे लडो,
मुझ नैन के तीर से होत अधीरा ।।५४।।

स्त्री (कवित्त)

नैन ही मे लाज नही, यांते नैन काले करें,
वैन ही मे भान नही ताते मुख ढांकती ।
थिर नही हाथ-पग, याते बेडी-बँध डाले,
नाक-कान छेदे, वुरी आदत है भाखती ।।

वात न समाय ताते पेट दिन-रात ढाँके,
कसे मजबूत छाती बाँधकर राखती ।
कहे 'सूर्य' दण्ड देय तो न काबू रहे नार
जो न दण्ड देय ताको कहाँ जाय भागती ॥५५॥

अबला (सवैया)

लघु मूषक देख भगे डर पाय,
व मत्त गयद हनै चपला ।
जल औघ अथाह तरे, वन भीम फिरे
मृगइन्द्र हने सबला ॥
तपसी-मुनि-वीर-हिये दृग-बाण,
लगाय करे वश धूर्त-कला ।
'मुनिसूर्य' कहे कवि भूल गये
किन कारण नार कहे अबला ॥५६॥

गणिका नव कारण से राक्षसी (सवैया)

१सब बाल कुमार रहे जग के, २ मर जाय सबै सधवा वर नारी ।
३उपदेशक साधु मरे जग से, ४ जर जाय सुज्ञान की पुस्तक सारी ॥
५ युव के गुरु-मात-पिता मर जाय, बने सब ही निज-छद-विहारी ।
६ अति वश बढे हमरा यदि ये लग जाय स्व हाथ सबै सुकुमारी ।५७।

७ धनवान बने शठ हीनमती, तिन मित्र मिलो मति मद अयानो ।
८ नर ज्ञान-विहीन बने सब ही, तिन अक्षर काले हो कीट समानो ॥
९गणिका न चहै तिय शीलवती, 'मुनिसूर्य' कहै वह पापिनी मानो—
मन भाव धरे नित दुष्टण नौ विधि, पातर प्रत्यक्ष राक्षसी जानो ।५८।

तेरह छिद्र से देव छलते है

१ सूकत २ सोवत ३ काम वमे अरु
लेय ४ उवासी पड़े ५ गश खाई ।

६ भीति धरे, बिन ७ वस्त्र वने व
खुले सिर ८ केस ९ नदी मध जाई ॥
१० देह अशुचि हँसे ११ विन भान
१२ खुला रख मस्तक १३ लौट लगाई ।
तेरह छिद्र लखे जब देव,
छले तव आकर 'सूर्य' जताई ॥५९॥

गर्भ के अठारह दोष

१ सोवत २ रोवत ३ स्नान रु ४ मर्दन,
५ ले नख ६ चालत ७ हाँस किये ।
८ बैन सुने, ९ प्रतिबैन कहे, पुनि
१० ऊठत ११ बैठत १२ खाय १३ पिये ॥
भोजन १४ मिष्ट १५ कषाय १६ कटू अति
१७ खार १८ खटास कु नाहि छिये ।
'सूर्य' यही तिय—गर्भ के दूषन
टाल अठारह धार हिये ॥६०॥
[अति सोना, अति रोना आदि गर्भ के दूषण है ।]

१ रात-दिन सोवन से, ऊँघण बालक होय,
२ रोवे तासे अध, ३ अति स्नाने अनाचारी है ।
४ अजन से चक्षु-चीप, ५ तैल लगे कुष्ट रोग,
६ नख लिया भूंडा होत, चपल हो ७ चारी है ॥
८ अति हँसने से होठ-जीभ-दाँत कृष्ण होत,
बैन अति ९ सुने-१० बोले से होय वाचाली है ।
११ उठ-बैठ १२ करे तासे, चलना असुभ होय,
१३ बाल हो चिन्तावंत करे अति आहारी है ॥६१॥

१४ अम्ल अहार किये रक्तपित्त,
१५ कटूक किये शुक्र नष्ट दुखारी ।
१६ मिष्ट करे तव मेद वधे तन,
१७ खारे सेभोगत देह-विकारी ।।
१८ भोज्य कपायल से न वधे वल,
गर्भ के दोप अठारह टारी ।
गर्भ-दया कर स्त्री सुख पावत,
'सूर्य' कहे यह वात विचारी ।।६२।।

नव कारण से रोगोत्पत्ति (सवैया)

१अति आसन और करे २अति भोजन, ३नीद लिये निशि में-दिन में ।
४अति जागत और ५ विशेप चले, ६अति भोग हु आश रहे मन मे ।।
७ नित भोजन सो प्रतिकूल करे, ८ मल ९मूत्र की बाध-निरोधन मे ।
यह तीसरे अग में 'सूर्य' कहे, नव कारण रोग वढे तन में ।।६३।।

सोलह महारोग (हरिगीतिका)

है १ श्वास २खासी ३ ज्वर ४ हरस ५ कुखशूल ६ मस्तक गद महा ।
७खुजली८जलोदर ९कोढ१०चख११श्रुत-वेदना १२क्षय पुनि १३दहा ।
१४ अरूची १५ भगदर वा १६ अजीरण रोग आदिक है घने ।
ये रोग पोडश देह मे उत्पन्न-व्यय छिन मे वने ।।६४।।

कुल रोग

है रोम साडा तीन कोटी, देह मे पसरे भरे ।
है रोम एकेके रमे तन, रोग पूणा दो धरे ।।
सत्र पच कोटो रोग का आगार अस्थिर जान लो ।
अति बाह्य मजुल दीखती दुर्गन्ध अन्दर मान लो ।।६५।।

तम्माखू-निषेध (सवैया)

मखियाँ भिन-भिन्न करे मुख पे, पुनि आलस मे निशि-वासर ऊँघे ।
निज वस्त्र-मकान खराब करे, अरु छीक हि छीक रहे, मुख मूँघे ।।
सब देख अरुचि करे नर अन्य, तमाखु लखो पर पे वह ढूँघे ।
'मुनिसूर्य' कहे इनमे कहा आनन्द नित्य सडासड नाशिका सूँघे ।६५।

द्रव्य में सात सीर

१ भूमि धर्यो धन भूमि रहे, पुनि २ आग हि छार करे छिन मे ।
३ नीर बहावत, ४ देव गहे, अरु ५ चोर हरे निशिमे-दिन मे ।।
६ भाग कुटुम्ब धरे धनमें-नित ७ राज हु चाह धरे मन में ।
'मुनिसूर्य' कहे जग या विधि से रहे सात हु सीर सबै धन में ।।६६।।

कपटी-लक्षण

मुख पकज के सम भासत है, बहु प्रेम से, बाथ भरे लपटी ।
कहे सीतल चन्दन ज्यों मृदु बैन, रखे छल अन्तर में दपटी ।।
मन भाव हलाहल कातर-से, रहे बाज जु तीतर पे झपटी ।
निशि-वासर 'सूर्य' रहे पर-वञ्चक, ते नर को कहिये कपटी ।।६७।।

विदेशी वस्तुएँ (कवित्त)

पगडी के बदले मे, दूमदार टोपी लही,
अगरखा छोड कोट चिरफटा धारते ।
धोती स्थान पतलून, बूट लिये जूती छोड,
पडित को मिस्टर-ही कहके पुकारते ।।
रथ जगे टमटम, वैद्य को कहे डाक्टर,
औषधी को मेडीशन- कहके उचारते ।
जहाँ देखो तहाँ सब 'सूर्य' हो विदेशी बने,
याते निजी हाथ ही से, गयो अधिकार ते ।।६८।।

धर्म-नीति

नरभव की दुर्लभता (सवैया)

सुर-भोग-संयोग मिले अति, भामिनी
वा अधिकार मिले सबको ।
धन कोटि–असंख्य–उदार,–सुभौन—
पुरंदर से पद माधव को ।।
श्रुति–वेद–पुरान वखान करे,
मघवादिक इच्छत मनु-छव को ।
'मुनिसूर्य' यो सत्य जताय कहे—
मिलनो दुर्लभ भव मानव को ।।६९।।

बाईस बोल पुण्य से मिलते हैं

शुभ ठाम-सुगाँव-सुजात-सुतात—
सुमात–सुभ्रात–बडे कुल आवे ।
वर देश–सुभेष–सुक्षेत्र–सुदेव—
सुधर्म–गुरु शुभ पात्र मिलावे ।।
शुभ वैन–सुमान–सुदान–सुजान—
सुबुद्धि–सुरूप–त्रिया–बल ठावे ।
'मुनिसूर्य' किये बिन पुण्य, कहा
नर बावीस बोल सुजोग हि पावे ।।७०।।

नश्वर यौवन

हलदी जरदो व समुद्र-तरंग रु
विद्युत–तेज, कचो मटको ।
चल कुंजर कान है, बादल छाँह व,
बिचित रेट हु को खटको ।।

थित औस की बूँद, व इन्द्रधनू लख
पंडुर पल्लव ज्यों वट को ।
नर ! यो लख 'सूर्य' न गर्व करो,
दिन चार हि जोवन को लटको ।।७१।।

ज्ञानी का ज्ञान (कवित्त)

ज्ञानी को अक्षर एक, अनन्त पर्याय तामे,
एक पर्याय के गमा अनन्त हि कीजिये ।
एक गमा के भाग असंख्य होय, तामे एक—
भाग के अनन्त खण्ड, खण्ड एक लीजिये ।।
खण्ड के असख्य भाग, ताके एक भाग माही
चार ज्ञान, पूर्व सब, समाये पतीजिये ।
'सूर्यमुनि' देख अव, कितनो है ज्ञान तेरो,
कहाँ सिन्धु, कहाँ बिंदु ? मानन धरीजिये ।।७२।।

देखे सो माने (इन्द्रिय-प्रत्यक्ष की सीमा)

गाँवड़े को सुरलोक, झूँपडी विमान माने,
घेस को अमृत जाने, ऊँधो मन आने है ।
धतूर को कल्पवृक्ष, खर माने गजराज,
नाली-जल गगजल, वक हंस माने है ।।
निज भेप इन्द्र सम, चरवोटी दाख जाने,
चणा को चिरौंजी, कूप-मण्डूक समाने है ।
कहे 'सूर्यमुनि' मूर्ख छोटे गाँव-वास वालो,
जेतो देख्यो तेतो माने, तेतो ही वखाने है ।।७३।।

वक्ता के चौदह गुण

१ मोला वोल जान होय, २ आगम-विस्तार-वत,
३ वानी मे मिठास, वोले ४ समय विचारी है ।
५ सत्यवंत ६ श्रोताओ के सगय हरन हारे,
७ शास्त्रवेत्ता ८ अर्थ जाने सवारी-विस्तारी है ।।

९ तीखे अपशब्द तजे, १०-वाणी से रीझावे सभा,
११ श्रोता रस-स्वाद पावे, १२ सतोपादि धारी है ।
१३ प्रश्न-अर्थवन्त पुनि, १४ निर-अभिमानी रहे,
'सूर्यमुनि' चतुर्दश वक्ता-गुण भारी है ॥७४॥

श्रोता के चौदह गुण

१ भक्ति वन्त २ प्रियभाषी, ३ अमानी सु-सूत्ररुचि,
४ सुने एक चित्त, ५ शक्ति धारणादि भारी है ।
६ समय पे प्रश्न करे, ७ समझे विस्तार अर्थ,
८ निरालस्य धर्मकार्य, निद्रा ९ परिहारी है ॥
१० तात्विक हो बुद्धिवत, ११ धर्म-पर रुचि होय,
१२ अनुकम्पा-प्रेम-दया, १३ दान के दातारी है ।
१४ विकथा-विवाद-निंदा-कदाग्रह त्याग देत
चतुर्दश 'सूर्यमुनि' श्रोता-गुणधारी है ॥७५॥

पशु जानो (सवैया)

शुभ धर्म न नेम क्रिया न दया,
व्रत-सयम-दान न शील न ध्यानो ।
गुण-ज्ञान-मया न क्षमा-समता,
उपकार के भाव जरा न पिछानो ॥
न हिताहित-भान जरा निज को
शठ मानत कंचन-काच समानो ।
जस 'सूर्य' कहे नर दीखत है
पर सिंग न पूछ न को पशु जानो ॥७६॥

गर्ज सरे होत बिराने

मात व तात-सुता-भगनी-सुत
नार-कुटुम्ब-सुमित्र बखाने ।
हाव-सुभाव करे विधि से, मृदु
बैन कहे अपनो कर जाने ॥

पूछ जहाँ तक है उनकी तब
तें सु कमाय लच्छी घर आने ।
स्वारथ स्नेह यो 'सूर्य' दिखावत
गर्ज सरे सब होत बिराने ।।७७।।

स्वार्थ

गणिका धन को, चर भूपति को
तिय कथ मनावत प्रेम जनावे ।
नर कामि हु नार, पिता सुत को,
जख-भैरव-भूत-कुदेव मनावे ।।
अति भूख हु प्यास सहे दु ख पूरण
स्वार्थ-वशे सब प्रेम दिखावे ।
'मुनिसूर्य' कहे विरला जन कौ,
विन स्वारथ केवल धर्म दिपावे ।।७८।।

दोहा चतुष्क

चातक पिये न पृथ्वि-जल, कपोत पत्थर खाय ।
क्या उनको ज्ञानी कभी, व्रतधारी बतलाय ।।१।।
मच्छा–कच्छ–दादुर सदा, रहे गंग-जल माय ।
क्या उनको ज्ञानी कभी, योगी कह बतलाय ।।२।।
तृण-जल-पल्लव खाय के, रहे सदा वन माय ।
जबुक-अहि-मृग-मूषिका, क्या तापस कहलाय ।।३।।
याचक-सुत अरु पुत्रिका, गणिका-नृप- महिमान ।
चोर-ढोर इनको नही, पर की पीड-पिछान ।।४।।७९ से ८२

शुद्ध भाव कौन पाता है? (सवैया)

तरु-मूल गये घुस के महि मे,
निकले न उखाडत-यत्न किया ।
जिनके रहे बाहिर मूल उसे,
सुख से नव–स्थानक रोप दिया ।।

पर-स्त्री (सवैया)

जितने पर-कामिनी-पाँव भरे,
तितने हु बने वह ब्रह्म हत्यारो ।
परतक्ष पुरान जताय कहे,
समझे नहि दुष्ट महामद वारो ॥
चिपकावत अंग संतप्त करी
पुतली जब नर्क मे हो दुखियारो ।
अति दुर्गति-कारण 'सूर्य' कहे,
इन कारण कामिनी संग निवारो ॥९०॥

काम-अतृप्ति (कवित्त)

सौधर्मेन्द्र काम सुख भोगे दो सागर तक,
देवी केती चवे ताको गिनती विचारिये ।
देवी दो कोडाकोडि, पिच्यासो लाख एकोत्तर—
हजार चार-सो अट्ठावीस क्रोड धारिये ॥
सत्तावन लाख पुनि चवदे हजार दो से—
छियासी, उपर पाव पल्य सु उचारिये ।
आठ अग्र देवी, एक सोले सेस रूप करे,
तो भी 'सूर्य' तृप्ति नही; भोग को निवारिये ।९१।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती (कामभोग) का दुःख (कवित्त)

ब्रह्मदत्त चक्रपति, सात सौ वरष तक,
काम-भोग भोगा तासे; नरक मे गयो है ।
एक क्रोड तरपन लाख वहोतर सेस,
वर्ष सात सो की घडी, एतो मान लयो है ॥
दो से चवदा करोड, सतसठ लाख, साठ—
सेस तीन सो त्रिताली पल्य-मान भयो है ।
एक-एक घडी पर एता पल्य दुःख लह्यो,
'सूर्यमुनि' मुज्ञ सुन पाप-पंक हर्यो है ॥९२॥

तेरी क्या गिनती ? (सवैया)

नृप बत्तिस सेस सुसेव करे !
षट खण्ड मे आण अखण्ड धरी ।
निधि नौ अरु रत्न महा चवदे,
सुर सेस तिके नित पाँव परी ।।
लख एक सुवाणु हजार त्रिया,
लख लाजत है सुर की अमरी ।
'मुनिसूर्य' इसी रिध छोड चले,
अब क्या गिनती कहिये तुमरी ।।९३।।

निशि-भोजन में पाप (कवित्त)

छन्यू भव जीव-वध करे एतो पाप एक
सरोवर शोषण मे लगे नर-नार को ।
एक सो ने आठ भव तक सरोवर शोषे,
एतो पाप लगे एक दव के विचार को ।।
शत-भव-दव-पाप एक कुव्यापार किये,
शत चुम्मालीस भव करे कुव्यापार को ।
एतो एक कुकर्म से, शत चुम्मालीस भव—
एतो पाप लगे एक आल देनेवार को ।।९४।।

एक सो एकावन भव तक जो आल देय
एतो पाप लगे एक सेवे पर-नार को ।
पर नारी सेवे नर निण्याणवे भव तक
एता पाप होय खाये निशि मे आहार को ।।
ग्रन्थ 'रत्न संचय' मे प्रमाण वहाँ से लियो
याको तत्व बहुश्रुत- केवली-आधार को ।
कहे 'सूर्यमुनि' महादोष, निशि भोजन मे,
मुझ त्याग कर अल्प करत ससार को ।।९५।।

जिनके घट छाय मिथ्यात रह्यो,
समझे कबहू न कठोर हिया।
'मुनिसूर्य' सुकोमल भाव जिके,
समझे झट सम्यक भाव लिया ॥८३॥

परलोक का सुधार

परिपूर्ण महा दुख से लछमी,
यदि प्राप्त भई तो कहा फल पाये।
कर युद्ध अनेक हने नर को,
अरि के सिर पे यदि पाव लगाये॥
निज मित्र कुटुम्ब सबै जनको,
यदि आदर दे धन खूब लुटाये।
'मुनिसूर्य' कहे परलोक-सुधार किये
नहि तो सब यों हि गमाये ॥८४॥

स्वर्ण और सत्य (हरिगीतिका)

हे सत्य-शोधक ! सत्य का मुख, कनक ढक्कन से ढँका।
यदि प्राप्त करना है उसे तो, फेंक दो ढक्कन ढँका॥
जो कनक-ढक्कन चाहिये तो, सत्य का हो त्यागना।
दो बात बनती साथ मे क्या, त्यागना औ माँगना ॥८५॥

भाव बिना नहि भक्ति (सवैया)

कब ऊपर पे कज, लीपण छार पे,
बाँझ कभी नहि पुत्र जने है।
रण मे जिम कायर, ज्ञान बिना गुरु,
कापटच जा नहि प्रेम छने है॥
बिन नेम हु क्षेम, मया बिन मात,
न सूर्य बिना तम-तोम हने है।
बिन स्वारथ काज लख्यो 'मुनिसूर्य'
यों भाव बिना नहि भक्ति बने है ॥८६॥

तेरी क्या गिनती ? (सवैया)

नृप बत्तिस सेंस सुसेव करे !
षट खण्ड मे आण अखण्ड धरी ।
निधि नौ अरु रत्न महा चवदे,
सुर सेस तिके नित पाँव परी ॥
लख एक सुब्राणु हजार त्रिया,
लख लाजत है सुर की अमरी ।
'मुनिसूर्य' इसी रिध छोड़ चले,
अब क्या गिनती कहिये तुमरी ॥९३॥

निशि-भोजन में पाप (कवित्त)

छन्यू भव जीव-वध करे एतो पाप एक
सरोवर शोषण मे लगे नर-नार को ।
एक सो ने आठ भव तक सरोवर शोषे,
एतो पाप लगे एक दव के विचार को ।
शत-भव-दव-पाप एक कुव्यापार किये,
शत चुम्मालीस भव करे कुव्यापार को ।
एतो एक कुकर्म से, शत चुम्मालीस भव—
एतो पाप लगे एक आल देनेवार को ॥९४॥

एक सो एकावन भव तक जो आल देय
एतो पाप लगे एक सेवे पर-नार को ।
पर नारी सेवे नर निण्याणवे भव तक
एता पाप होय खाये निशि मे आहार को ॥
ग्रन्थ 'रत्न सचय' मे प्रमाण वहाँ से लियो
यांको तत्व बहुश्रुत- केवली-आधार को ।
कहे 'सूर्यमुनि' महादोष, निशि भोजन मे,
सुज्ञ त्याग कर अल्प करत-संसार को ॥९५॥

पर-स्त्री (सवैया)

जितने पर-कामिनी-पाँव भरे,
तितने हु बने वह ब्रह्म हत्यारो ।
परतक्ष पुरान जताय कहे,
समझे नहि दुष्ट महामद वारो ॥
चिपकावत अग सतप्त करी
पुतली जब नर्क मे हो दुखियारो ।
अति दुर्गति-कारण 'सूर्य' कहे,
इन कारण कामिनी सग निवारो ॥९०॥

काम-अतृप्ति (कवित्त)

सौधर्मेन्द्र काम सुख- भोगे दो सागर तक,
देवी केती चवे ताकी गिनती विचारिये ।
देवी दो कोडाकोडि, पिच्यासो लाख एकोत्तर—
हजार चार-सो अट्ठावीस क्रोड धारिये ॥
सत्तावन लाख पुनि चवदे- हजार दो से—
छियासी, उपर पाव पल्य सु उचारिये ।
आठ अग्र देवी, एक सोले सेस रूप करे,
तो भी 'सूर्य' तृप्ति नही, भोग को निवारिये ।९१।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती (कामभोग) का दुःख (कवित्त)

ब्रह्मदत्त चक्रपति, सात सौ वरप तक,
काम-भोग भोगा तासे, नरक मे गयो है ।
एक क्रोड तरपन लाख वहोतर सेस,
वर्ष सात सो की घडी, एतो मान लयो है ॥
दो से चवदा करोड, सत्तसठ लाख, साठ—
सेस तीन सो त्रिताली पल्य-मान भयो है ।
एक-एक घडी पर एता पल्य दु ख लह्यो,
'सूर्यमुनि' सुज्ञ सुन पाप-पक हर्यो है ॥९२॥

मद के स्थान

सामत के मौन माहि, सम्पन्न की दृष्टि माँहि,
धनिक के भृकुटी या मुख में विकार है।
बिजारी के चाल माहि, पडित के जीभ माँहि,
रूपवान के दांत रु केस मे सुमार है ॥
वैद्य के है होठ पर, जोगी के है ग्रीवा पर,
सुभटो के स्कध, वणिकों के उर धार है।
कारीगर हाथ माँहि, हाथी गडस्थल देखो,
मद-स्थान एती ठौर 'सूर्य' यो विचार है ॥१००॥

दुष्ट के छल-छन्द (सवैया)

बाहिर-भीतर दाव लखे अरु,
दृष्टि हलाहल नाग सचे हैं।
ऊपर रग-विरग भले पर,
अन्तर सो वक वृत्ति जँचे है ॥
बोलत बोल हितावह बाहिर
मारन को दिन-रात पचे हैं।
'सूर्य' कहे सत या विधि से नर-
दुष्ट अनेक उपाय रचे है ॥१०१॥

एक-एक पर द्वेष

मच्छर देख भखे झट दादुर,
दादुर को अहि भक्षण धायो।
वासव-मोर, मयूर-बिलाव,
विलाव लखी अति श्वान घुरायो ॥
श्वान पे वाघ रु वाघ पे केहरी,
सिंह पे व्याध ले वाण लगायो।
'सूर्य' यो वैर सबै जग मे, जिन—
वैर तज्यो वह वीर कहायो ॥१०२॥

नरक में दस वेदना

१ शीत रु २ उष्ण ३ क्षुधा अति पावत,
दाहत ४ प्यास शरीर मझारी।
५ खाज खुजावत वेदन होवत,
हो ६ परतन्त्र रु ७ रोग अपारी ।।
हो ८ भय-पीडित नित्य, ९ जरा वश
जर्जर, १० शोक भरा मन भारी।
'सूर्य' कहै दस वेदन नर्क मे,
यों समझो ! डरियो नर-नारी ! ।९६।

गुणी-द्वेष

जीर्ण वस्त्र धरे तामे कहे नया वस्त्र काज
क्रिया को कपट कहे, पर को ठगाने है।
अभिग्रह दंभ कहे, क्षमा करे पूजा हित,
इन्द्री दमे ताको कह बक-सा वखाने है ।।
तप करे ताको कहे वाह्य आडम्बर काज,
मौन धरे ताको कहे—वोलना न जाने है।
गुणियों के गुण माही, भेपधारी दोष देवे,
'सूर्य' ऐसे निगुणी से, भोले भरमाने है ।।९७।।

पाप नहीं छिपता (सवैया)

कोटि प्रपंच करो मन मे, नहि छूपत आग रखे कर मे।
होवत वाहिर आय-सबै, जिनकी जिह पोल घरी भर मे ।।
देख अरे ! सव ठौर हि 'सूर्य' रही मृत्तिका घर हो घर मे।
जानत है अपनी-अपनी, सबके दुरगध भरी उर मे ।।९८।।

जल मे थल मे वन मे रन मे, घुसिये जहँ जाय न सूर्य उगे है।
घट-फूटत पाप भरे छिन मे, यदि जाय घुसो जहँ आग धगे है ।।
शत कोटि-प्रयत्न करे विधि से, फिर भी निज पाप-घटा उमँगे है।
'मुनिसूर्य' कहे जग-सत्य कहावत, पाप की आव पताल पुगे है ।९९।

दया विन संत कहा, मुख विन दंत कहा,
जप विन मंत्र कहा, सूर्य सत्य मानवो ।
दान विन दानी कहा, ज्ञान विन ज्ञानी कहा,
धर्म विन ध्यानी कहा. ढोंग पहिचानवो ।१०६।

दस महापापी

१ विसवासघाती और, २ कृतघनी होत मूढ,
३ कूडी साख भरे, ४ धर्म हिंसा मे मनावे है ।
५ बतावे नर औरन को राह खोटी दुष्टओ
६ पर गुण-लोपी होय, ७ ओगुणी सरावे है ।।
८ खुद ही दुष्कृत करे, डाल देत औरन पे,
९ गुरु-द्रोही होय, १० क्रिया त्याग को भगावे है ।
'सूर्यमुनि' कहे और पापी जग मध्य कहे
दस कर्म करे वे महापापी कहाव है ।।१०७।।

दस बातें घटाने से घटती हैं और बढ़ने से····

(चौपाई)

१ क्लेश रु २ हास्य ३ सोच ४ आहारा,
५ मैथुन ६ खाज ७ सोग ८ भय भारा ।
९ निद्रा १० त्रसना ये दस धारा,
घटत-त्रधत ये चाह-विचारा ।।१०८।।

प्रकीर्णक

मान मत करो मीत ! (कवित्त)

शतपती करे मान, तासे बडो सेसपती,
तासे लखपति पास बहुत हजार है ।
लखपति सेती ऊचो भयो कोटिपति जान,
ताको मान-भंग करे, भूपति अपार है ।।
राजा से है शहंशाह, एक एक से यो बढे,

शठता

कार्य करो शठ का तब भी,
उपकार हि पे अपकार पिछाने ।
होय भले अरि-मित्र तभी, पर—
दुष्ट हु दुष्टपनो उर आने ।।
दुष्ट-स्वभाव मिटे नहि 'सूर्य'
करे उपचार सुकोटि सयाने ।
क्या नहि काटत कापड कातर,
नूतन हो अथवा हि पुराने ।।१०३।।

निंदक का उपकार मानो (कवित्त)

निज-निंदा झूठ भी हो, सुनो चुपचाप, कर—
फिर चित्त शान्ति यो विचार मन करिये ।
झूँझ कर उठिये न—'क्योंकि वह निंदा करे,
तामे कोई लाभ होगा' औगुन संभारिये ।।
निजी कमजोरी कोई मिलेगी जरूर तब
उपकार निंदकों का जान दोप हरिये ।
एक-एक दोष देख, चुन-चुन दूर करो,
'सूर्यमुनि' गुण ढूँढ अमल मे धरिये ।।१०५।।

निंदक उपकारी है (वीर छंद)

धोबी कपड़ा धोकर देवे, विना मूल्य से तुम्हे कभी ।
राजी या बेराजी होते, मन मे सोचो आप अभी ।।
ऐसे निन्दक जिह्वा द्वारा निन्दा कर हम पाप हरे ।
उसपे खुश हम क्यो ना होते, विना मूल्य से काम करे ।१०५।

धर्म विना ध्यान ढोंग

नीति विन राज कहा, स्वार्थ विन काज कहा,
शील विन लाज कहा, अफल बखानवो ।
चंद विन रात कहा, मया विन मात कहा,
थंभ विन छात कहा, अधर प्रमाणवो ।।

तन माहे रोग, अनजान होय नशाबाज
जल रु नागिन ज्वाला अगनी अपार है।
'सूर्यमुनि' कहे-सुनो-! इन अष्टादश ठौर
विश्वास न करे सग, चातुर विचार है ॥११२॥

धनवृद्धि में सात दुर्गुण (सवैया)

द्रव्य वधे तब दुर्गुण आवत, माया गुमान अधिक वधाई।
तृष्णा अती; मन निर्दय होवत, बैन कठोर जु तीर सहाई ॥
प्राण विनाश करे कई जीव का, भीति बहू मन होत सदाई।
सप्त ये दुर्गुण 'सूर्य' तजे धनि, लेखे करे व्यय, धन्य कहाई ॥११३॥

आठ खड्डे

पेट की खाड बुरे न बुरावत, तृष्णा की खाड वधे हद पारी।
अग्नि की खाड ने मृत्यु की खाड, समुद्र की खाड रही अति भारी ॥
राज-भडार व मोक्ष की खाड, गृही-घर-खाड महा दुखकारी।
ये अठ खाड कही 'मुनिसूर्य', भरे न भराई कभी नर सारी ॥११४॥

पाप का परिवार

पाप को वाप कह्यो अति लोभ, रु पाप को मात हिंसा-रुचि मानी।
पुत्र हु स्वार्थ, सुता तिसना, भगिनो तिसकी है कुवुद्धि पिछानी ॥
भारजा तेहनी रीस कही, तिसका बड भ्रात असत्य सुहानी।
पाप को मूल हु क्रोध कह्यो, 'मुनिसूर्य'-यो पाप कुटुम्ब कहानी ।११५।

धर्म का परिवार

धर्म को वाप कह्यो सदज्ञान, रु धर्म की मात दया हितकारी।
पुत्र हु धर्म को तोष कह्यो, रु सुता वर है समता दिलधारी ॥
भारजा है सुमति, भगिनी समता, शुभ भ्रात सुसत्य विचारी।
धर्म को मूल क्षमा हि कही, 'मुनिसूर्य' यो धर्म कुटुम्ब जहारी ।११६।

करे जो गुमान कोई, वडो ते गमार है।
कहे 'सूर्यमुनि' मान से यो अपमान होय,
मान मत करो मीत, ज्ञानी की पुकार है ।। १०९

झूठ से हानि

लज्जा जाए तन हू से, प्रीति विनाशित होय,
बुध पण अवुध हो विवेक न होवे है।
धन और कुटुम्ब की सिरी से अलग होय.
सतोष न होवे दिल, ज्ञान नर खोवे है ।।
दिल मांहि होत नाहि, दया लवलेश ताके,
शुभगति जात ना, न मोक्षपद पावे है।
झूठ कोउ वोले तासे दस यह नाश होत,
कहे 'सूर्यमुनि' झूठे, आवरु गमावे है। ।।११०।।

अठारह को दीक्षा नहीं दे

आयु अठ वर्ष मांय, उपरात साठ वर्ष,
नपुन्सक डरपोक, और मूर्ख नर है।
रोग ग्रस्त व तस्कर, राज-अपराधी होय,
देव तथा गुरु के न आज्ञा-अनुसर है ।।
कर्जदार इन्द्री हीन, मात-पिता-आज्ञा विन
अयोग्य रु लोकनिंद्य, आलस-अपर है।
व्यसनी रू कोढी जान, अष्टादश व्यक्ति इन्है,
'सूर्य' कहे देवे नही दीक्षा मुनिवर है ।।१११।।

अठारह विश्वास के योग्य नहीं

मूर्खनर और भर-यौवन युवति-युवा,
जुवारी रु वदमाश, चोरी करनार है।
दया-हीन, रंडीवाज, भडवा-लवाड अरू
दिल मे दुश्मनीदार, होय कर्जदार है।

अवसर मत चूको

औसर माँहिज धर्म बने फिर, ते नहि कारज है बनवानो ।
औसर मे शुभ दान दियो नर ! तेहिज लेखे लग्यो गिणवानो ।।
श्रेष्ठ युवावय कार्य करो फिर, वृद्धपने नहि कार्य थवानो ।
औसर मोती बन्या 'मुनिसूर्य' चुको मत औसर तो सुख पानो ।।११७।।

ब्रम्हचर्य की रक्षा (दोहा)

तनु-पट, तावुल, सेज मृदु, मरदन अंजन-स्नान ।
　　गध, गीत व्रत ब्रह्म का, दूषण आठ पिछान ।।११८।।
दर्श, स्पर्श, भाषण कथा, इकत ध्यान रु सग ।
　　क्रीडा तज ब्रह्मव्रत यो, मैथुन के वसु अंग ।।११९।।

पंचों का वल (दोहा)

तन-धन और कुटुम्व-वल, देह-निरोगी, मान ।
　　राज वचन पुनि वुद्धि वल, सात पच-वल जान ।।१२०।।

प्रशस्ति

श्री धर्मदास गणके आचार्यवर श्री नद—
　　चरण-अरविद मे 'सूर्य' सिर नाया है ।
भिन्न-भिन्न काल मध्य, बनाये छुटक पद्य,
　　ताको गही एक ठौर, ग्रन्थ ये बनाया है ।।
उपदेश है प्रधान यामे, ताते ग्रन्थ-नाग,
　　'श्री उपदेश-शतक' शुभ भावे ठाया है ।
ज्ञेय जान-हेय तज, उपादेय गहो वीर !
　　सार्थक तो मानू श्रम, जयि जिनराया है ।।१२१।।

ENGLISH SECTION